भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी जी की 2600 वीं जन्म जयन्ती
के पुनीत अवसर पर निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला की नवीन प्रस्तुति

श्री रामचन्द्र 'मुमुक्षु, विरचित-

पुण्यास्रव कथाकोश

भाग-1

निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति
दुपहिया की दुकान
खुलने का समय 10 से 1 बजे तक
मो0 9219997181

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

संस्करण : प्रथम - सन् 2002
I.S.B.N. No. : 81-878280-64

पुण्यास्रव कथाकोश-1
श्री रामचन्द्र 'मुमुक्षु' विरचित

पावन आशीष : राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्द जी महाराज

सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

सहयोगी :
ऐलक श्री 105 विमुक्त सागर जी
क्षुल्लक श्री 105 विशंक सागर जी

प्रकाशक :
निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

मुद्रक :
अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस,
होस्पीट्ल रोड, आगरा (उ.प्र.)
✆ 360195, 260938

@ *सर्वाधिकार सुरक्षित :* प्रकाशकाधीन

मूल्य : स्वाध्याय

शास्त्र प्राप्ति स्थान :

- 1. चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीट्ल रोड, आगरा (उ0प्र0)
- 2. श्री दि0 जैन लाल मंदिर, चाँदनी चौक, नई दिल्ली
- 3. अ0 भा0 सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति शाखा हटा, दमोह (म0प्र0)
- 4. धर्म जाग्रति संगठन व महावीर संगठन, फिरोजाबाद (उ0प्र0)
- 5. वास्ट जैन फाउन्डेशन, 59/2 बिरहाना रोड, कानपुर (उ0प्र0)

सत्यमेव जयते

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-110004,

President's Secretariat,
Rashtrapati Bhavan,
New Delhi-110004.

विशेष कार्य अधिकारी
OFFICER ON SPECIAL DUTY

सं : 8 एम.एच/2001

दिनांक : 08 जनवरी, 2002

प्रिय श्री जैन जी,

भारत के राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन् जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि भगवान महावीर स्वामी की 2600वीं जयंती के अवसर पर पूर्व दिगम्बर जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत व उपाध्याय श्री निर्णय सागर जी महाराज द्वारा सम्पादित एवं रचित 26 धार्मिक ग्रंथों का प्रकाशन आरम्भ किया जा रहा है।

राष्ट्रपति जी इन प्रकाशनों की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करते हैं।

सादर,

आपका,

(प्रेम प्रकाश कौशिक)

श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन,
मंत्री,
श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर,
एन-10, ग्रीन पार्क एक्स.,
नई दिल्ली-110016

पुण्यार्जक श्रावक

महावीर प्रसाद राजेन्द्र कुमार जैन (रंग वाले)
ए-24 ईस्ट कृष्णा नगर, दिल्ली-32
✆ 2213479
(1000 प्रति)

चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा
(200 प्रति)

卐 卐 卐

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं-

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं ॥17 ॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई

भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्याख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना हैं ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर

सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (3.12.2000)

❁❁❁

भगवान महावीर स्वामी और उनके सिद्धान्त

भगवान महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें/अंतिम तीर्थंकर थे, किंतु जैन ऐतहासिक परम्परानुसार वे जैन धर्म के न तो आदि प्रवर्तक थे और न ही सदा के लिए अंतिम तीर्थंकर। जैन धर्म की स्थापना किसी व्यक्ति विशेष के माध्यम से नहीं हुई क्योंकि यह जैन धर्म 'वस्तु के स्वभाव को ही धर्म कहता है'। संसार में विद्यमान समस्त पदार्थ अनादि निधन हैं यह सृष्टि भी अनादि-निधन है अतः पदार्थों का कभी अभाव नहीं होता। यथा जल का स्वभाव शीतलता व अग्नि का स्वभाव उष्णता है। ये स्वभाव अनादि-निधन हैं। इन्द्रिय व कर्म विजेता जिनधर्म प्रवर्तक जिनेन्द्र भगवान व तीर्थंकर अनादि काल से होते आ रहे हैं और अनंत काल तक होते रहेंगे। तीर्थंकर महापुरुषों द्वारा उपदिष्ट धर्म में अपने अपने युग के अनुसार विशेषताएँ भी रहती हैं और उनके मौलिक स्वरूप में तालमेल भी बना रहता है।

वर्तमान युग में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव हुए, जिनका वर्णन न केवल जैन पुराणों में अनिवार्यतः आता है, अपितु भारत के प्राचीन ग्रंथों ऋग्वेद आदि में भी बाहुल्यतः मिलता है। यथा-ऋग्वेद के 10 वें पर्व की 102 व 10 वीं ऋचा में, इसी पर्व की 136, 166, 233 ऋचाओं में; इसके अतिरिक्त भाग 0 पुराण 5, 6 में व विष्णु पुराण के 3, 18 में भी वृषभनाथ के केशी, वातरसना, ऋषभनाथ आदि नाम ध्यान देने योग्य हैं।

उन वृषभदेव से लेकर महावीर भगवान पर्यंत 24 तीर्थंकरों के चरित्र का विधिवत् वर्णन जैन पुराणों में है।

धार्मिक, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक, आगमिक दृष्टियों से उनमें एक रूपता तथा एक आत्मा की व्याप्ति प्रकट करने के लिए महावीर स्वामी के पूर्व जन्म की परम्परा भगवान वृषभदेव से जुड़ी हुई है।

पुरुरवा भील से मारीचि तक

पुरुरवा भील जिसने जंगल में शिकार करते समय 'सागरसेन' मुनिराज के दर्शन करने मात्र से कौए के मांस का त्याग किया था। इस नियम का उसने विषम परिस्थितियों में भी पालन किया। वही पुरुरवा भील मृत्यु के उपरांत सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वहां से प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती (जिसके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा) का पुत्र मारीचि कुमार हुआ। 'भरत चक्रवर्ती के नाम से इस देश का नाम भारत पड़ा' यह कथन वैदिक पुराणों में भी एक मत से स्वीकार किया गया है यथा-

भागवत पुराण	5, 4, 9, 11, 2
विष्णु पुराण	2, 1, 31,
वायु पुराण	33,52
अग्नि पुराण	107,11,12
ब्रह्माण्ड पुराण	14,5,62

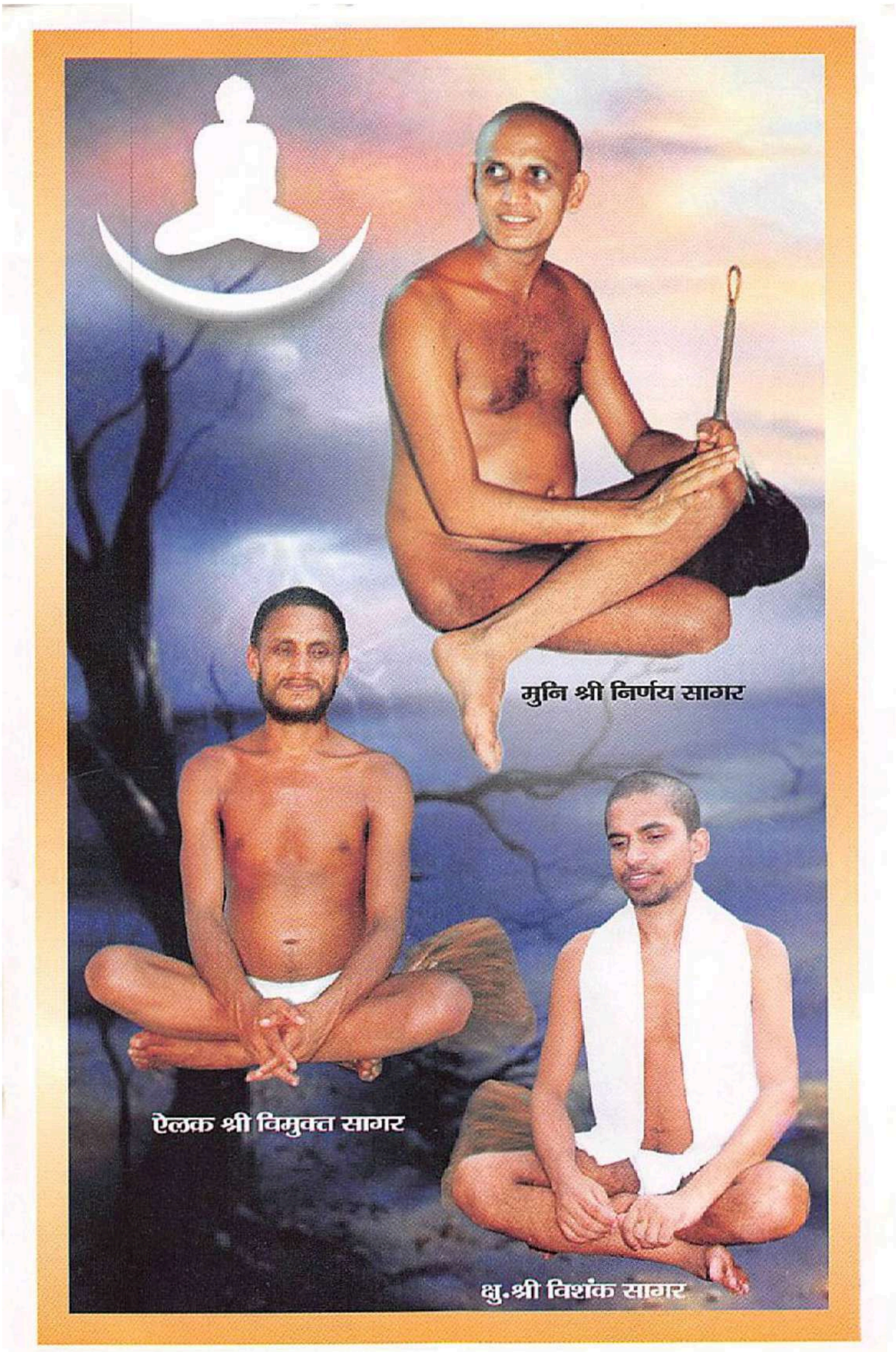
मुनि श्री निर्णय सागर
ऐलक श्री विमुक्त सागर
क्षु.श्री विशंक सागर

भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी के 2600 वें
जन्म कल्याणक महोत्सव एवं अहिंसा वर्ष
के पुनीत अवसर पर

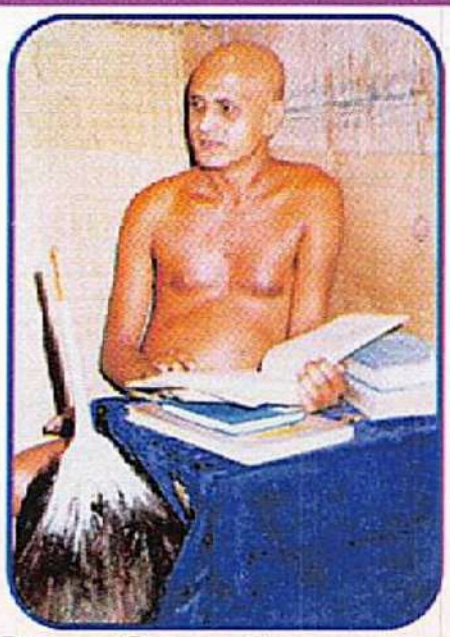

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

जिनागम के अनुपलब्ध ग्रंथों
की अद्भुत खोज एवं प्रकाशन
प्रथमानुयोग के ग्रंथों की विशेष श्रंखला

मुनि श्री निर्णय सागर जी द्वारा रचित एवं संपादित साहित्य की एक झलक

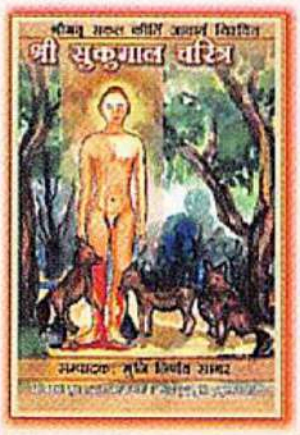

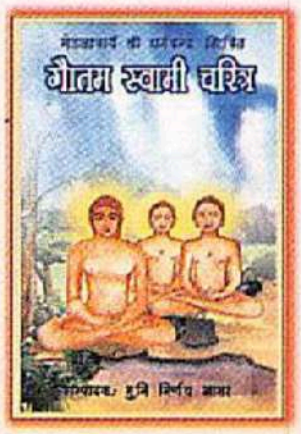

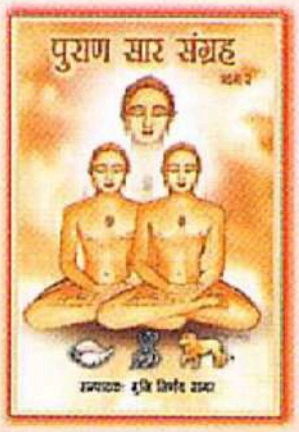

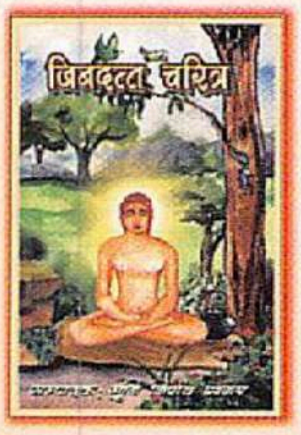

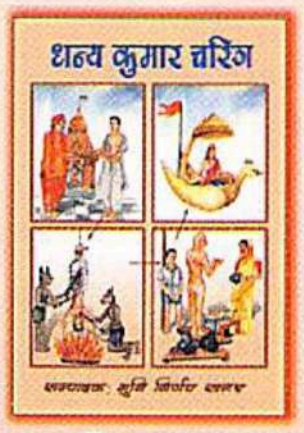

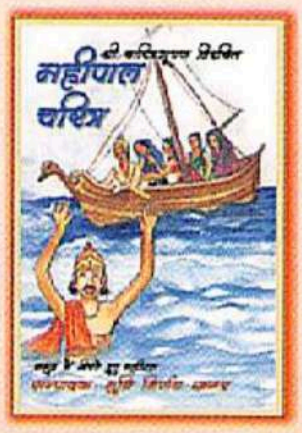

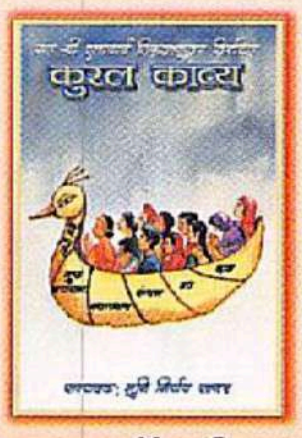

प्राप्ति स्थानः- चन्द्रा कापी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा

लिंग पुराण	1,47,23
स्कन्द कुमार खण्ड	37,57
मार्केण्डय पुराण	50, 41

इत्यादि पुराणों आदि में उपरोक्त कथन का स्पष्टतः उल्लेख है।

मारीचि से सिंह पर्याय तक

मारीचि ने वृषभदेव के चरणों में जिनदीक्षा अंगीकार कर ली, किंतु वह आदि तीर्थंकर द्वारा निर्दिष्ट कठोर मुनिव्रतों का पालन नहीं कर सका अतः वह मुनि पद से भ्रष्ट हो गया मात्र अल्प काल ही मुनि रहा। इस पद से भ्रष्ट होने के बावजूद भी उसमें धर्म का बीजारोपण तो हो ही चुका था अतएव वह परिव्राजक साधु बन गया। भगवान वृषभदेव से अपने बारे में 'यह तीर्थंकर होगा' यह सुनकर अहंकार से जिनमत को छोड़कर 363 मिथ्यामतों की स्थापना करने वाला हुआ। दुर्धर कुतप करने से एवं अज्ञानतापूर्वक चारित्र का परिपालन करने से वह देव हुआ। पुनः अनेक बार देव, मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी पर्याय में मारीचि ने भ्रमण किया। असंख्यात् भवों को धारण कर कुछ कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम काल तक उसने परिभ्रमण किया।

अन्यत्र यह लिखा है कि सौधर्म स्वर्ग से आकर अग्निसह ब्राह्मण हुआ। पुनः स्वर्ग गया। वहां से च्युत होकर अग्निमित्र परिव्राजक बना। पश्चात् माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से च्युत हो भारद्वाज ब्राह्मण हुआ। पुनः परिव्राजक बन कर माहेन्द्र स्वर्ग गया वहां से निकलकर उसने तिर्यञ्च गति में व अधोगति में परिभ्रमण किया पुनः मारीचि का जीव सागरोपम काल के लिये इतर निगोद गया इसके अनन्तर उसने इन भवों को धारण किया-

1000 (एक हजार)	आक के वृक्ष के भव
80,000 (अस्सी हजार)	सीप के भव
20,000 (बीस हजार)	नीम के भव
90,000 (नब्बे हजार)	केलि के भव
3,000 (तीन हजार)	चन्दन के भव
5,00,00,000 (पांच करोड़)	कनेर के भव
60,000 (साठ हजार)	वेश्या के भव
5,00,00,000 (पांच करोड़)	शिकारी के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	हाथी के भव
60,00,00,000 (साठ करोड़)	गधा के भव
30,00,00,000 (तीस करोड़)	श्वान के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	नारी के भव
8,00,00,000 (आठ करोड़)	घोड़ा के भव
20,00,00,000 (बीस करोड़)	बिल्ली के भव

80,00,000 (अस्सी लाख)	देव पद के भव
60,00,000 (साठ लाख)	नपुंसक के भव
90,00,000 (नब्बे लाख)	धोबी के भव
60,00,000 (साठ लाख)	अकाल मरण,गर्भपात के भव
50,000 (पचास हजार)	राजा के भव

अनेक भव सुपात्र को दान देने से भोगभूमि के व कुपात्र को दान देने से कुभोग भूमि के प्राप्त किये।

तदनन्तर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड के मगध देश के राजगृह नगर में वेद पारंगत शांडिल्य ब्राह्मण की पाराशरी ब्राह्मणी से 'स्थावर' नामक पुत्र हुआ। पुनः वेद पारंगत होकर परिव्राजक बन माहेन्द्र स्वर्ग में सात सागर की आयु का धारक देव हुआ। वहां से चयकर इसी राजगृह नगर में विश्वभूति नामक राजा की जैनी नामक रानी से विश्वनंदी नामक पुत्र हुआ। इसी विश्वभूति राजा का भाई विशाखभूति था। एक दिन अपने विश्वभूति राजा विरक्त हो अपने छोटे भाई को राज्य पद व अपने पुत्र को युवराज पद देकर जैनेश्वरी दीक्षा लेकर कठिन तप करने लगा।

किसी दिन विश्वनंदी युवराज के मनोहर नामक बगीचे को देखकर चाचा के पुत्र विशाखनंदी ने अपने पिता से उसकी याचना की। विशाखभूति राजा ने भी मायाचारी से विश्वनंदी को शत्रुओं पर आक्रमण के लिए भेजकर वह उद्यान अपने पुत्र के लिए दे दिया। विश्वनंदी को इस बात का पता लगाते ही उसने बापिस आकर विशाखनन्दी को पराजित कर दिया और उसको भयभीत देख विरक्त होकर उसको उद्यान सौंप कर आप स्वयं दैगम्बरी दीक्षा लेकर तप करने लगा।

घोर तपश्चरण करते हुए अत्यन्त कृश शरीरधारी विश्वनंदी मुनिराज एक दिन मथुरा नगरी में आहार के लिए आये। व्यसनों से भ्रष्ट यह विशाखनन्दी उस समय किसी राजा का दूत बनकर वहां आया हुआ था और एक वेश्या के भवन की छत पर बैठा मुनि को देख रहा था। दैवयोग से वहां एक गाय ने मुनिराज को धक्का देकर गिरा दिया। उन्हें गिरता देख क्रोधित हुआ विशाखनंदी बोला कि 'तुम्हारा पराक्रम हमें मारने को पत्थर का खम्भा तोड़ते समय देखा गया था वह आज कहां गया? इस प्रकार खोटे वाक्यों को सुनकर मुनिराज के मन में भी क्रोध आ गया और बोले कि इस हंसी का फल तुझे अवश्य मिलेगा। और अंत में निदान सहित सन्यास से मरण कर मुनिराज महाशुक्र स्वर्ग में देव हुए और विशाखभूति राजा (चाचा) का जीव भी वहां पर तप पूर्वक मरण करके देव हुआ। चिरकाल तक सुख भोगकर वे दोनों वहां से च्युत होकर सुरम्य देश के पौदनपुर नगर में प्रजापति महाराज की जयावती रानी से विशाखभूति का जीव 'विजय' नामक बलभद्र पदवी धारक पुत्र हुआ और उन्हीं की दूसरी मृगावती रानी से विश्वनंदी का जीव नारायण पद धारक त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ एवं विशाखंनदी का जीव चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण कर विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के उलकापुर नगर में मयूरग्रीव विद्याधर की नीलाञ्जना रानी

से अश्वग्रीव का नाम प्रतिनारायण पद का धारक पुत्र हुआ। पूर्व जन्म के संस्कार से त्रिपृष्ठ नारायण ने अश्वग्रीव प्रतिनारायण को मारकर चक्र रत्न प्राप्त किया। चिरकाल तक राज्य सुख को भोगकर अंत में भोगासक्ति से मरकर सांतवें नरक को प्राप्त किया। वहां के दुखों को सागरों पर्यंत सहकर उसी भरत क्षेत्र की गंगा नदी के तट के समीपवर्ती वन में सिंहगिरि पर्वत पर सिंह हुआ, वहां भी तीव्र पाप से पुनः प्रथम नरक को प्राप्त किया। वहां एक सागर तक दुख भोग कर जम्बूद्वीप में सिंहकूट की पूर्व दिशा में हिमवन पर्वत के शिखर पर सिंह हो गया।

सिंह का उत्थान

किसी समय यह सिंह किसी हरिण को पकड़ कर खा रहा था। उसी समय अतिशय दयालु 'अजितंजय' नामक चारण मुनि अमितगुण नामक चारणमुनि के साथ आकाश में जा रहे थे। उन्होंने उस सिंह को देखा, देखते ही वे तीर्थंकर के वचनों का स्मरण कर दयावश आकाशमार्ग से उतरकर उस सिंह के पास पहुंचे और शिलातल पर बैठकर उच्च स्वर से सम्बोधन कर धर्ममय वचन कहने लगे। उन्होंने कहा कि हे मृगराज! तूने पहले त्रिपृष्ठ नारायण के भव में इन्द्रियों में आसक्त होकर मरकर नरक पर्याय प्राप्त की। वहां के दुख भोगकर वहां से निकलकर सिंह पर्याय पाकर क्रूरकर्मी होकर पुनः नरक गया अब वहां से निकलकर पुनरपि सिंह पर्याय को प्राप्त हुआ है। अरे मृगराज !

अब इस भव से तू दशवें भव में अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर के मुख से सुना है। हे बुद्धिमान! अब तू आज से संसार रूपी अटवी में गिराने वाले मिथ्यामार्ग से विरत हो और आत्मा का हित करने वाले मार्ग में रमण कर।

इस प्रकार उस सिंह ने मुनिराज के वचन हृदय में धारण किये तथा उन दोनों मुनिराजों की भक्ति के भार से नम्र होकर बार-बार प्रदक्षिणाएं दीं बार-बार प्रणाम किया। शुभ निमित्त के मिल जाने से शीघ्र ही तत्व श्रद्धान धारण किया और मन स्थिर कर श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

इस प्रकार संयमासंयम के व्रतों का पालन करते हुए सिंह अन्त में सन्यास धारण करके एकाग्रचित्त से मरा अंत में सौधर्म स्वर्ग में सिंहकेतु नामक देव हुआ। वहां दो सागर तक सुखों को भोग कर वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की मंगलावती देश के विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के कनकमाला नगर के राजा कनकपुंख विद्याधर और कनकमाला रानी के गर्भ से कनकोज्ज्वल नामक पुत्र हुआ। किसी समय मंदर पर्वत पर 'प्रियमित्र' मुनिराज से दीक्षा लेकर अंत में समाधि से मरणकर सांतवे स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर इसी अयोध्या नगरी के राजा वज्रसेन की शीलवती रानी से हरिषेण नामका पुत्र हुआ। पुनः राज्य भार को छोड़कर श्रुतसागर मुनि से दीक्षा लेकर आयु के अंत में महाशुक्र स्वर्ग में देव हुआ। वहां से च्युत होकर धातकीखंड के पूर्व विदेह की पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणी नगरी के राजा सुमित्र और उनकी मनोरमा रानी से प्रियमित्र पुत्र हुआ। इस प्रियमित्र ने चक्रेवर्ती के वैभव को प्राप्त किया था।

अनन्तर क्षेमंकर तीर्थंकर से दीक्षा लेकर आयु के अंत में सहस्रार स्वर्ग में देव सुख का अनुभव कर जम्बूद्वीप के छत्रपुर नगर में नन्दिवर्धन महाराजा की वीरवती महारानी से नन्द नामक पुत्र हुआ। यहां पर भी अभिलक्षित राज्य सुख को भोग कर प्रोष्ठिल नाम के गुरु के पास दीक्षा लेकर उग्र तपश्चरण करते हुए ग्यारह अंगों का ज्ञान प्राप्त कर लिया और दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का चितंवन कर तीर्थंकर नमकर्म का बंध किया। आयु के अंत में सब प्रकार की आराधनाओं को प्राप्त कर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में श्रेष्ठ इन्द्र हुआ।

जब इस इन्द्र की आयु 6 महीने शेष थी तब इस भरत क्षेत्र के विदेह नामक देश सम्बन्धी कुण्डलपुर नगर के राजा सिद्धार्थ के भवन के आंगन में इन्द्र की आज्ञा से कुबेर के द्वारा की गयी प्रतिदिन साढ़े दश करोड़ या चौदह करोड़ रत्नों की मोटी धारा बरसने लगी।

श्री शुभमिती आषाढ़ शुक्ला षष्ठी, शुक्रवार 17 जून ईसवी सन् से 599 वर्ष पूर्व की रात्रि के पिछले प्रहर में सिद्धार्थ महाराज की रानी प्रियकारिणी ने सोलह स्वप्न देखे एवं प्रभात में अपने पतिदेव से उन स्वप्नों का फल सुनकर सन्तोष प्राप्त किया। अनन्तर देवों ने आकर भगवान का गर्भ कल्याणक उत्सव मनाते हुए माता-पिता की विधिवत् पूजा की। अर्थात् माता त्रिशला के गर्भ में अच्युतेन्द्र का जीव आ गया।

जन्म कल्याणक

नव मास व्यतीत होने पर चैत्र सुदी 13 सोमवार 27 मार्च ईसवी सन् से 598 वर्ष पूर्व माँ त्रिशला ने तीर्थंकर बालक को जन्म दिया। उनके जन्म से तीनों लोको में क्षण भर के लिए शांति की लहर छा गई। उनके जन्म से सर्वत्र सुख शांति, धर्म, लक्ष्मी, यश आदि की वृद्धि हुई थी। इसलिये उनका नाम वर्धमान रखा गया। सौधर्म इन्द्र ने मेरु पर्वत की पांडुक शिला पर असंख्यात देव समूह के साथ उन भगवान बालक का अभिषेक किया।

संजयंत व विजयंत नामक मुनिराजों का संशय उनको देखने मात्र से दूर हो गयाथा। अतः उन्होंने उनको 'सन्मति' कहकर सम्बोधित किया। बाल्यावस्था में ही संगम देव द्वारा ली गई परीक्षा में वे सफल हुए। संगम देव इनकी शक्ति व निर्भयता देखकर दंग रह गया, उसने नम्रीभूत होकर उनकी 'महावीर' नाम से स्तुति की।

भगवान महावीर पांचवे बालयति तीर्थंकर थे। इनके पूर्व वासुपूज्य भगवान, मल्लिनाथ भगवान, नेमिनाथ भगवान, पार्श्वनाथ भी बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर थे। इन्होंने स्वेच्छा से शादी नहीं रचायी। सकल विषय वासनाओं को जीतकर तीस वर्ष की वय में इन्होंने मंगसिर वदी 10 सोमवार 20 दिसम्बर सन् ईसवी सन् से 569 वर्ष पूर्व में दिगम्बर जिन दीक्षा ग्रहण की।

बारस वर्ष की कठोरतम मौन व्रत एवं संयम साधना व आत्म ध्यान के फल स्वरूप जृम्भिका ग्राम के समीप, ऋजुकूला नदी के किनारे मनोहर नामक वन में भगवान महावीर स्वामी को वैशाख सुदी 10 रविवार 26 अप्रैल ईसवी सन् से 537 वर्ष पूर्व को चार घातिया कर्मों को

क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त किया। योग्य श्रोता/ गणधर के अभाव में भगवान की दिव्यध्वनि 66 दिन तक नहीं खिरी। अर्थात् धर्मोपदेश नहीं हुआ। महावीर स्वामी का प्रथम धर्मोपदेश श्रावण कृष्णा 1, वीर शासन जयंती 1-1-1 को अथवा ईसवी सन् से 557 वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ था।

30 वर्ष तक भगवान महावीर स्वामी ने केवली अवस्था में अनेकों देशों में विहार कर धर्म का उपदेश भव्य जीवों को दिया। उनके समवशरण में असंख्यात देव देवियां, लाखों मनुष्यों/श्रावकों व लाखों श्राविकाएं, हजारों दिगम्बर मुनि व हजारों साध्वीयां/आर्यिका माताएं थीं। प्राणी मात्र को कल्याण का उपदेश देने वाले भगवान महावीर स्वामी ने लगभग 72 वर्ष की उम्र में शेष चार अघातिया कर्मों को भी क्षय करके कार्तिक वदी 14 की रात्रि के अंतिम पहर या कार्तिक वदी अमावस्या के प्रातः काल मंगलवार 15 अक्टूबर ईसवी सन् से 527 वर्ष पूर्व को मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित/प्रचारित सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम ज्ञेय सिद्धान्त, द्वितीय आचरणीय सिद्धान्त।

I. ज्ञेय सिद्धान्त

अर्थात् जानने योग्य सिद्धान्त। वस्तु तत्व को यथार्थ रूप से समझने के लिए जिनमत के रहस्य मयी सूत्रों को आत्मसात करने के लिए, आत्मा को परमात्मा बनाने की कला सीखने के लिए, विश्व के प्रत्येक प्राणी की मनोभावना व वाच्य सिद्धांतो को समझने के लिए भगवान महावीर स्वामी के ज्ञेय सिद्धान्तों को जानना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। उन ज्ञेय सिद्धान्तों को मुख्य रूप से दो भागों में बांटा जा सकता है-प्रथम अनेकान्तात्मक सिद्धान्त या अनेकान्तवाद, द्वितीय स्याद्वाद।

1. अनेकान्तवाद

प्रत्येक द्रव्य में अनन्त धर्म विद्यमान हैं या प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण, स्वभाव या लक्षण पाये जाते हैं। अनेकान्त का शब्दिक अर्थ है-अनेक है अंत जिसके, अर्थात् जिसमें अनन्त धर्म हैं। अनेकान्तात्मक दृष्टि से वस्तु तत्व को जानने वाला वाद ही अनेकान्त वाद है। यथा-राम एक होते हुए भी अनन्त धर्मा हैं, उनमें पितृत्व, पुत्रत्व, भ्रातृत्व, पतित्व, पौत्रत्व, प्रपौत्रत्व, पितामहत्व, प्रपितामहत्व, मानवता, जीवन्त, भव्यत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व, अनेकत्व, भेदत्व, अभेदत्व इत्यादि धर्म हैं। इन परस्पर विरोधी सर्व धर्मों को बिना विरोध के जो ग्रहण करता है वही अनेकान्त वाद है।

2. स्याद्वाद

श्री महावीर प्रभु का वस्तु तत्व को जानने वाला दूसरा प्रमुख सिद्धान्त है-स्याद्वाद। यह शब्द दो शब्दों के मेल से बना है-पहला शब्द है-स्याद व दूसरा शब्द है-वाद। इनमें 'स्याद' का

अर्थ कथञ्चित् है तथा 'वाद' शब्द का अर्थ कथन, वचन, वक्तव्य है। स्याद्वाद का अर्थ हुआ कि कथञ्चित् किसी बात को स्वीकार करना। द्रव्य में विद्यमान अनंत धर्मों का कथन एक साथ संभव नहीं है तथा वे धर्म परस्पर विरोधी भी हो सकते हैं। इन विरोधी धर्मों को भी जो कथंचित् (किसी अपेक्षा से यह भी सत्य है) सत्य कहता है वही है स्याद्वाद। स्याद्वाद समस्त विवादों को निबटाने व वस्तु तत्व का यथार्थ बोध कराने वाला अनुपम हेतु है।

II. भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित आचरणीय सिद्धान्त-

आचरण ही किसी धर्म की अंतर्चेतना हो सकती है, बिना आचरण के धर्म मुर्दा शरीर के बराबर है मुख्य रूप से भगवान महावीर स्वामी द्वारा उद्घोषित पांच सिद्धान्त सूत्र हैं। इनमें भी आत्म कल्याण व शांति का रहस्य छिपा हुआ है।

1. अंहिसा व्रत

मन, वचन, काय से किसी जीव को कष्ट नहीं पहुंचाना, न कष्ट देने हेतु किसी को प्रेरित करना, किसी हिंसा करने वाले की अनुमोदना न करना अहिंसा का स्थूल स्वरूप है। यथार्थता में तो किसी जीव के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी भी पर पदार्थ के प्रति हिंसा के परिणाम भी न होना अथवा किसी पदार्थ के प्रति राग द्वेष का नहीं होना, अपनी आत्मा में लीन रहना ही परम अहिंसा है। इस अंहिसा की ही पूर्णता के लिए शेष चार सिद्धान्त रक्षा कवच की तरह हैं। यह अंहिसा ही जगज्जननी है, प्राणी मात्र का प्राणों से प्रिय धर्म है, यह आत्म-स्वभाव है, लक्षण है, धर्म है ,नियति है, चरम साध्य लक्ष्य है।

2. सत्य व्रत

मन, वचन, काय से सम्पूर्ण असत्य का त्याग करना, न वचन से असत्य बोलना, न शरीर से असद् चेष्टा करना और न ही मन में असद् विचार करना। असत्य के लिए प्रेरित करना तथा असत्यवादी असत्यार्थी असत्यासक्त की प्रशंसा नहीं करना, उसकी क्रिया की अनुमोदना नहीं करना, उसकी चेष्टाओं से सहमत नहीं होना ही सत्य व्रत है। पर भावों का सर्वथा त्याग कर निजात्मा में लीनता ही निश्चय से सत्य व्रत है।

3. अचौर्य व्रत

किसी की भूली हुई, पड़ी हुई, गिरी हुई, वस्तु को उस स्वामी की अनुमति के बिना ग्रहण करना या ग्रहण करने का भाव करना भी चोरी है, यह चोरी का स्थूल लक्षण है। सूक्ष्म रूप से; दूसरे के विचार, आशय, ज्ञान, यश, सुख, शांति छीनता भी चोरी है। जिस वस्तु का अधिकारी किसी और को होना चाहिए यदि आप उसके अधिकारी अवैध रूप से बन गये है तो वह भी चोरी है। निश्चयापेक्षा से तो पर पदार्थों का ग्रहण, आत्मा लीनता का अभाव चोरी है। स्वात्म लीनता ही निश्चय से अचौर्य व्रत है।

4. ब्रह्मचर्य व्रत

अपनी ब्रह्म स्वरूप आत्मा में लीन होना, किसी भी स्त्री के साथ काम सेवन, या इन्द्रिय विषय में प्रवृत्ति नहीं करना ही ब्रह्मचर्य व्रत है। यह व्यवहार ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। स्त्री मात्र के साथ मैथुन का मन, वचन, काय से त्याग करना ब्रह्मचर्य व्रत है।

5. अपरिग्रह व्रत

चेतन व अचेतन के भेद से परिग्रह के दो भेद हैं। इसके भी अंतरंग व बहिरंग के भेद से दो भेद हैं। उनके क्रमशः 14 व 10 भेद है। समस्त परिग्रह का मन वचन, काय से त्याग करना अपरिग्रह व्रत है। मन, वचन, काय से, कृत कारित अनुमोदना से समस्त वाह्य पदार्थों का त्याग करना, अपनी आत्मा में ही लीन हो जाना निश्चय से अपरिग्रह व्रत है। व्यवहार अपेक्षा से सकल वाह्य परिग्रह का, यथा शक्य अंतरंग परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह व्रत है।

इन पांचों व्रतों का पालन श्रावक एक देश करता है क्योंकि वह गृहस्थ है, उसके व्रत देश व्रत या अणुव्रत कहे जाते हैं तथा साधक को इन व्रतों का सकल देश या सम्पूर्णतया पालन करना चाहिए इन व्रतों के बिना आत्म-कल्याण असंभव ही है। इन पांच व्रतों का पालन करने से हजारों नियमों व संविधान के पालन की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं में सभी नियम, कानून, विधान व संविधान का पालन हो जाता है।

★★★★★★

आद्य वक्तव्य.....

–उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

इस अखिल विश्व में विद्यमान गतिशील समस्त प्राणी केवल दो ही मार्गों के पथिक हैं, क्योंकि इन दो मार्गों के अतिरिक्त तीसरा कोई मार्ग ही नहीं है। जिसमें प्रथम मार्ग है प्रवृत्ति प्रधान मार्ग और दूसरा मार्ग है निवृत्ति प्रधान मार्ग।

प्रथम मार्ग जो प्रवृत्ति प्रधान है वह संसार में परिभ्रमण कराता है, कदाचित् मोक्ष मार्ग में सहयोगी हो जाता है। जबकि दूसरा मार्ग जो कि निवृत्ति प्रधान मार्ग है, वह नियम से मोक्ष का कारण है। यह निवृत्ति प्रधान मार्ग रागद्वेष से रहित, निश्चय रत्नत्रय धारी सकल संयमी जनों के ही शुद्धोपयोग की दशा में ही होता है। शुभोपयोग की दशा में तो सकल संयमी श्रमण भी प्रवृत्ति मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। जो प्रवृत्ति प्रधान मार्ग है, उसके दो भेद हैं–प्रथम रागद्वेष से मुक्त अशुभोपयोगमय प्रवृत्ति और दूसरा धर्मानुराग युक्त शुभोपयोगमय प्रवृत्ति।

अशुभोपयोगमय प्रवृत्ति नियम से भववर्द्धक है, दुःखान्वित है प्रचुर मात्रा में पापास्रव कराने का कारण है, सम्यक्त्व का घातक है, बोधि व समाधि का प्रणाशक है, दुर्गतियों का उद्घाटक है, भव कूप में पतित करने वाला है। सम्यग्ज्ञान, सम्यक्वैराग्य, सम्यक् संयम व आत्मीय गुणों का विध्वसंक है। अशुभोपयोग कभी भी मोक्ष, मोक्षमार्ग या उसकी साधनभूत सामग्री में भी सहायक नहीं बनता। अतः अशुभोपयोगमय प्रवृत्ति निकृष्ट पापों की जनक होने से आत्म कल्याणेच्छुकों को सर्वथा ही हेय है।

जो द्वितीय मार्ग धर्मानुरागमय शुभोपयोगमय प्रवृत्ति का मार्ग है। वह भी यदि निदान और आकांक्षा से युक्त होता है तब यह भी प्रचुर मात्रा में इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति हेतु भोगोपभोग की सामग्री उपलब्ध कराता है। तथा उसी में आसक्ति पैदा करने वाला होने से मोक्ष का कारण नहीं कहा जा सकता। अपितु तृतीय भव में नरकादि दुर्गति का ही हेतु बन जाता है।

जो धर्मानुरागमय या शुभोपयोग युक्त (पंचपरमेष्ठी की उपासना, भक्ति, अर्चना, पूजा, वंदना अथवा सच्चेदेव, शास्त्र व गुरुओं के प्रति श्रद्धा समर्पण व पूजा भक्ति का मार्ग, ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन, उपवास, पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तियों का पालना, स्वाध्याय, ध्यान–चिन्तन–मनन एवं उत्तम क्षमादि दश धर्मों का पालन करने रूप जो मार्ग है व प्रवृत्ति परक प्रधान होते हुए भी निश्चय से मोक्ष का मार्ग है। व्यवहारिक धर्म/रत्नत्रय भी निश्चय से मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार/सराग रत्नत्रय भी सर्वदा प्रवृत्ति मार्ग में गतिशील श्रमणों को

भी ग्राह्य है। श्रावकों के जीवन में मात्र एक प्रवृत्ति मार्ग ही होता है। श्रावक निवृत्ति मार्ग का पथिक गृहस्थी में रहते हुए कभी नहीं बन सकता। सातिशय पुण्यासव का हेतु भी नियम से परम्परा से मोक्ष का ही कारण है।

प्रस्तुत ग्रंथ आध्यात्म योगी, परम तपस्वी पूज्य श्री केशवनन्दी मुनिराज के शुभाशीष का ही प्रतिफल है, इस ग्रंथ को संस्कृत भाषा में लिपिबद्ध किया है **श्री रामचन्द्र मुमुक्षु जी** ने। संभव है ये भी संसार, शरीर व भोगों से विरक्त आगम वेत्ता मुनि अथवा संवेगी उत्कृष्ट श्रावक रहे हों। यद्यपि **'मुमुक्षु'** शब्द का प्रयोग श्रमण के लिये ही किया जाता है। रामचन्द्र जी श्रमण थे या श्रावक, उनके लिये मुमुक्षु शब्द का प्रयोग विचारणीय है।

प्रस्तुत ग्रंथ **पुण्यास्रव कथा कोश** में छह अधिकारों के माध्यम से पुण्यास्रव के छह कारणों का ही वर्णन है। 1. जिनेन्द्र पूजन, 2. णमोकार मंत्र का माहात्म्य, 3. श्रुतोपयोग/स्वाध्याय करने का फल, 4. शीलव्रत का फल, 5. उपवास करने का फल, 6. दान का फल।

इन छह अधिकारों में (क्रमशः 8+8+8+8+9+16) 57 कथायें लिपिबद्ध हैं जिन जिन भव्य जीवों ने उक्त पुण्य कार्यों से पुण्यासव करके अपने जीवन को महान बनाया/आत्म कल्याण को प्राप्त किया उनकी कथायें ही इसमें वर्णित हैं।

उक्त छह कार्य सातिशय पुण्यास्रव के हेतु तो हैं ही साथ ही पाप/अशुभ योग्य का संवर, पूर्वबद्ध कर्मों की उदीरणा, संक्रमण अथवा अपकर्षण करने में भी कारण हैं। इतना ही नहीं अपितु इन शुभ कार्यों से पाप कर्मों की निर्जरा भी होती है।

1. जिनेन्द्र पूजन–संसारी प्राणी को भवोदधि से पार करने वाली यह एक अनुपम नौका है, कर्म प्रक्षालन में समर्थ साबुन है, भव कूप से निकालने वाली सुदृढ़ रज्जू है, यह शिव सुख का कारण है, इसके समान स्वर्ग व अपवर्ग का प्रदाता दूसरा कोई उपाय नहीं है। पूजन में कहा है–

यह भव समुद्र अपार तारण के निमित्त सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम पावन जयारय भक्ति वर नौका सही ॥दे.शा.गु.प.

यह संसार अपार महासागर जिन स्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति नौका जग नामी ॥वि.बी.ती.पू.

और भी कहा है–

जिन पूजा तैं सब होय, जिन पूजा सम अवर न कोय।
जिन पूजा तैं स्वर्ग विमान, अनुक्रम तैं पावैं निर्वाण॥

जिन पूजा के समान पुण्य का कोई दूसरा मार्ग नहीं है, कहा भी है–

जिन पूजा सम पुण्य न दूजा कथित तत्व आगम वरनी।
कोटि कार्य छोड़ि के मोकूँ जिनवर की पूजा करनी॥

जो जिनेन्द्र भगवान की पूजा करते हैं, वे इन्द्र के समान कहे जाते हैं, तथा उनकी पूजा के फल से उन्हें त्रैलोकपूज्यता/परमात्म पद की प्राप्ति भी नियम से होती है। कहा भी है—

जो नर पूजा करत हैं, सो नर इन्द्र समान।
मनुज मजूरी देत है क्यों न देय भगवान॥

जिनेन्द्र भगवान की भक्ति के सम्बन्ध में कलिकाल सर्वज्ञ आ. भगवन् वीरसेन स्वामी कहते हैं—

विघ्नाः प्रणश्यंति भयं न जातु, न दुष्ट देवाः परिलंघयंति।
अर्थान् यथेष्टांश्च सदा लभन्ते, जिनोत्तमानां परिकीर्तिनेन॥

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान की भक्ति करने से विघ्नों का नाश होता है, किसी प्रकार का भय नहीं रहता, एवं यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है। आचार्य भगवान कुन्द-कुन्द स्वामी जी ने जिनेन्द्र भक्ति को कर्म निर्जरा का कारण बताते हुए कहा है—

भत्तीए जिणवराणं खीयदि जं पुत्व संचियं कम्मं।
आइरयि पसाएण, विज्जा मंताय सिज्झंति॥मूलाचार

जिनवरों की भक्ति करने से पूर्व संचित कर्मों का क्षय होता है, एवं आचार्यों के प्रसाद से विद्या व मंत्रों की सिद्धि होती है। पंच परमेष्ठी की भक्ति को प्रायः कर सभी दिगम्बर जैनाचार्यों ने सातिशय पुण्यास्रव व परम्परा से मोक्ष का हेतु कहा है।

पुण्यास्रव कथा कोश के प्रथम अधिकार में कुसुमावती-पुष्पलता, प्रीतिंकर ब्राह्मण, मेंढक, धनदत्त ग्वाला, बंधुमती, प्रभावती, श्रेणिक, वज्रदंत चक्रवर्ती व ब्राह्मण पुत्र की कथायें हैं। इस कथाष्टक में जिन पूजा के माहात्म्य को प्रकाशित किया है।

2. णमोकार माहात्म्य—द्वितीय अधिकार में महामंत्र की महिमा के सम्बन्धी कथायें वर्णित हैं, यह पंच नमस्कार मंत्र द्वादशांग का सार है, जीवमार्ग का उद्धारक है, सर्व पापों को नष्ट कर सम्पूर्ण सुखों को देने वाला है यह विश्व के सभी मंगलों में प्रथम मंगल है। जिनागम में कहा भी है—

एसो पंच णमोयारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं॥

आ. भगवन शुभचन्द्र स्वामी जी ने ज्ञानार्णव ग्रंथ में कहा है—

कृत्वा पाप सहस्राणि, हन्त्वा जन्तु शतानि च।
अमुं मंत्रं समाराध्य, तिर्यञ्चोऽपि दिवंगताः॥ज्ञानार्णव

इस मंत्र की आराधना से हजारों पापों को करके व सैकड़ों प्राणियों का हनन करने वाले तिर्यंच भी देव गति को प्राप्त हुए। जीवन के अंतिम क्षणों में भी यदि किसी जीव ने इस मंत्र का श्रवण, ध्यान, चिंतन मनन किया है, वह भी देवत्व को प्राप्त हुआ। णमोकार मंत्र की महिमा के बारे में जिनागम में सहस्रों दृष्टांत व कथानक आज भी विद्यमान हैं। णमोकार महामंत्र समस्त मंत्रों का जन्म दाता है, इसमें चौरासी लाख मंत्रों का समावेश है। यह मंत्र मूलमंत्र, मंत्र राज, अपराजित मंत्र, अनादि-निधन मंत्र, सर्व कर्म निर्मूलन मंत्र, संकट मोचक मंत्र, सर्व विघ्नहर मंत्र, महामंत्र, पंच नमस्कार मंत्र एवं परमेष्ठी मंत्र आदि नामों से जाना जाता है।

इस महामंत्र की महिमा दर्शाने के लिये रामचन्द्र जी ने द्वितीय अध्याय में निम्नलिखित आठ कथायें कहीं हैं। इस महामंत्र के श्रवण से बैल, बन्दर, विजय श्री, बकरा, रसकूप में पड़ा मनुष्य, दृढ़सूर्य चोर, सुभग नामक ग्वाला, नाग-नागिनी व हथिनी आदि जीव देवत्व को प्राप्त कर पुनः परम्परा से मोक्ष को प्राप्त हुए अथवा होवेंगे।

3. **श्रुतोपयोग फल**—इस अध्याय में श्रुतोपयोग/स्वाध्याय के फल के बारे में कथाओं के माध्यम से बताते हुए स्वाध्याय की प्रेरणा दी गई है। स्वाध्याय मन को एकाग्र करने का, अशुभ परिणामों को शुभ में बदलने का, वैराग्य भाव व संयम साधना की वृद्धि का एवं सातिशय पुण्यास्रव का भी कारण है। स्वाध्याय से सम्यक्त्व में दृढ़ता, ज्ञान में वृद्धि/परिपक्वता एवं संयम में निर्मलता भी आती है। यह रत्नत्रय संवर व निर्जरा का साक्षात् एवं मोक्ष का हेतु है। स्वाध्याय से किंचित कर्म निर्जरा भी होती है, इसलिये स्वाध्याय को परम तप कहा है। किन्तु यह परम तप की संज्ञा दिगम्बर संत के चिन्तन या अनुप्रेक्षात्मक स्वाध्याय के लिये ही है, किसी गृहस्थ या श्रावक के वाचनादि स्वाध्याय को नहीं। इसका कारण भी यह है कि परम तप तपस्वी के ही होता है, विराधक या आरम्भ परिग्रह में आकण्ठ डूबे प्रमादी गृहस्थ के नहीं।

आ. भगवन् श्री सकल कीर्ति महाराज ने कहा भी है—

ज्ञानाभ्यास परो जीवः त्रिगुप्तेन्द्रिय संवरः।
भवेदेकाग्र चित्तस्य स्वाध्यायः परमं तपः ॥सु. रत्ना.

ज्ञानाभ्यास से युक्त श्रमण जब तीन गुप्तियों का पालन व पंचेन्द्रियों का निग्रह करते हैं, तब उनका मन एकाग्र होता है, उन्हीं के वह स्वाध्याय परम तप कहा जाता है, उस समय संवर व निर्जरा दोनों ही होते हैं।

आ. भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी जी ने कहा भी है—

"णवि अत्थि णवि य होहदि, सज्झाय समं तपो कम्मं।" 10/80 मू.

स्वाध्याय तप के समान दूसरा कोई कार्य न है और न होगा।

आ. भगवन् नरेन्द्र सेन जी ने भी सिद्धांत सार दीपक में कहा है–

सर्वेभ्यो यद् व्रतं स्वाध्यायः परमं तपः।
यतः सर्व व्रतानां हि स्वाध्यायो मूलमादितः ॥20॥11॥ सि.सा.दी.

समस्त व्रतों का मूल व्रत स्वाध्याय ही है, यह परम तप है एवं सम्पूर्ण

और भी कहा है–

स्वाध्यायाज्जायते ज्ञानं, ज्ञानात्तत्वार्थ सग्रहः।
तत्वार्थ संग्रहादेव श्रद्धानं तत्व गोचरम् ॥21॥11॥ सि.सा.दी.

स्वाध्याय से ज्ञान प्रकट होता है, ज्ञान से जीवादि तत्वों का संग्रह होता है, और उससे तत्व विषयक श्रद्धान होता है।

प्रशस्ताध्यवसायाय स्वाध्यायोवृद्धिकारणम्।
तेनेह प्राणिनां निन्द्यं संचित कर्म नश्यति ॥23॥11॥ सि.सा.दी.

स्वाध्याय प्रशस्त परिणामों की वृद्धि में कारण है, उन प्रशस्त परिणामों से प्राणियों का निदंनीय संचित कर्म क्षय को प्राप्त हो जाता है।

स्वाध्याययेव समं किंचिन्न कर्म क्षपण क्षमम्।
यस्य संयोग मात्रेण नरो मुच्येत् कर्मणा ॥25॥11॥ सि.सा.दी.

स्वाध्याय के समान कर्म निर्जरा के लिये अन्य कोई साधन नहीं है, जिसके संयोग मात्र से मनुष्य कर्म से मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

प्रस्तुत ग्रंथ के तृतीय अधिकार में स्वाध्याय के फल को दर्शाने वाली हरिण (अनंत बल/बलि मुनि), हंस (भामण्डल), यमराज (केवली यम मुनि), सूर्यमित्र (केवली), चाण्डाल पुत्री (सुकुमाल मुनि) चाण्डाल पुत्र (भीम केवली) सोमदेव चाण्डाल (देव) सहदेवी–व्याघ्री (देव) की ये आठ कथायें वर्णित हैं।

4. ब्रह्मचर्य/शीलव्रत फल–प्रस्तुत अधिकार में ब्रह्मचर्य व्रत के महत्व को दर्शाने वाली आठ कथायें हैं। ब्रह्मचर्य चेतना का भोग है, आत्मा का परम विशुद्ध परिणाम है, समस्त व्रतों का राजा है, त्रिलोक पूज्यता का जनक है, शारीरिक वाचनिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का कोश है, मोक्ष महल की नींव है, संयम का प्राण है, निजात्मानुभूति का साधन है, आत्मा में रमण करने की विधि है, इस व्रत में जीवन में वही महत्व है जो महत्व शून्यों के मध्य अंकों का होता है। किसी कवि ने कहा भी है–

घने बिन्दु जहँ दीजिये, अंक एक नहिं होय।
वैसे हि निष्फल जानिए, शील बिना सब कोय॥

इस शीलफल नामक अधिकार में जयकुमार- सुलोचना, सेठ कुबेर प्रिय, सती सीता, प्रभावती, वज्रकर्ण, नीलीबाई, एवं चाण्डाल की ब्रह्मचर्य सम्बन्धी आठ कथायें हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से ही इन भव्य जीवों ने देवों द्वारा पूजा को, देवत्व तथा परम्परा से मोक्ष को प्राप्त किया/करेंगे।

वर्तमान समय में युवा पीढ़ी को धर्म में संलग्न करने हेतु तथा कुसंगति से बचाने में उक्त कथायें डूबते को तिनके के सहारे के समान कार्यकारी हैं।

5. उपवास का फल–प्रस्तुत ग्रंथ के पंचम अधिकार में उपवास करने के फल को दर्शाया गया है। उपवास शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वस्थता का एक साधन है, इससे आत्मा की स्वाभाविक शक्ति जागृत होती है। इससे परिणामों में निर्मलता तो आती ही है साथ ही यह सातिशय पुण्यास्रव, पाप कर्मों के संवर व उदीरणा में भी हेतु है। उपवास करने से प्रचुर मात्रा में पाप कर्मों का पुण्य में संक्रमण व निर्जरा भी होती है। तीन लोक में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो उपवास/तप के द्वारा प्राप्त न की जा सके। तप ही मोक्ष का साक्षात् हेतु है। उपवास करने से मनोविकारों का शमन व क्षेपण भी होता है, मन की स्वाध्याय व ध्यान में एकाग्रता भी होती है। मन की एकाग्रता से लौकिक व लोकोत्तर ऋद्धि-सिद्धियाँ स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं।

विषय-कषाय, आरम्भ परिग्रहादि सर्व सावद्य का त्याग करते हुए चार प्रकार (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) के आहार का त्याग करना व उक्त समय (1 6 पहर तक) को ज्ञान, ध्यान, तप, व संयम साधना अथवा जिनाराधना या पंच परमेष्ठी भक्ति में संलग्न रहकर व्यतीत करना ही यथार्थ उपवास है। अथवा उपवास अर्थ है बाह्य पदार्थों से ममत्वादि भाव छोड़कर निजात्मा के समीप में वास करना। मात्र आहार छोड़कर विषय, कषाय आरम्भ परिग्रहादि में संलग्न रहना उपवास नहीं वह तो मात्र लंघन ही कहा जायेगा।

इस अधिकार में वैश्य पुत्र-नागकुमार, पूतिगंधा-भविष्यदत्त, अतिशय दुर्गंध कुमार-अशोक, नंदिमित्र-चन्द्रगुप्त, बंधुयशा-जामवती-देव, ललित घट व चाण्डालादि की कथायें हैं। जिन्होंने उपवास के फल से उत्तम देवावस्था अथवा मोक्ष को प्राप्त किया। यह उपवास नामक सत्कर्म या तप प्रत्येक श्रावक व श्रमण को अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य ही करना चाहिए।

6. दान का फल–दान का अर्थ है देना या त्याग करना अथवा स्व-परोपकार के निमित्त अपने न्यायोपार्जित धन का सत् कार्यों में खर्च करना। अथवा सत्पात्रों के लिये नवधा भक्ति पूर्वक स्व-परकल्याणक के निमित्त से या धर्म प्रभावना के लिये अपने द्रव्य का त्याग करना दान कहलाता है। त्याग में पर कल्याण की एवं नवधा भक्ति की आवश्यकता नहीं किन्तु दान में स्व-पर कल्याण दोनों ही अपेक्षित हैं।

दान वही उत्तम कहा जा सकता है जो उत्तम रीति से उत्तम पात्रों को उत्तम दाता द्वारा दिया जाता है। दान में दी गई वस्तु की कीमत अधिक होने मात्र से दान में विशेषता नहीं आती, किन्तु दाता, पात्र, देय वस्तु, दान की विधि व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की विशेषता से दान में विशेषता आती है।

श्रावक गृहस्थावस्था में अहर्निश गृहकार्य करते हुए निरन्तर पापास्रव में ही संलग्न रहता है, उस पापार्जन रूपी रक्त के दाग को धोने में दान रूपी निर्मल जल ही समर्थ है। उत्तम पात्रों को परमोत्तम भावना से दिया गया एक कवल (ग्रास) का दान या उसकी अनुमोदना भी उत्तम भोग भूमि या स्वर्ग को प्रदान करने में समर्थ है। उस दान क्रिया की पूर्ति अन्य किसी पुण्य कार्य में संभव नहीं है।

जिनागम में मुख्य रूप से आहार दान, औषधि दान, शास्त्र दान, वसतिका या उपकरण दान ये चार भेद कहे हैं। यद्यपि चारों दानों का अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है फिर भी आहार दान को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। कथंचित् आहार दान में चारों दानों का समावेश भी सम्भावित है, इसलिये आहार दान के समान अन्य कोई दान न तो है, न था, न हो सकेगा। आहार देने वाला चारों दान भी दे सकता है/ देता है।

(आहार दान के सम्बन्ध में विशेष कथन सम्पादक द्वारा लिखित— "आहार दान" एवं "दान के अचिन्त्य प्रभाव" नामक कृतियों से जानें।)

आहार दान की महत्ता के सम्बन्ध में आ. भगवन् तिरुवल्लुवर स्वामी ने तिरुक्कुरुल (कुरलकाव्य) में कहा भी है—

सद्यः प्रीतिकरं दानं, महाऽतंक विनाशकम्।
अन्न तोय समं दानं, न भूतो न भविष्यति॥ आ. तिरुवल्लुवर

तत्काल में दाता व पात्र में प्रीति का कारण, क्षुधा रूपी महाऽतंक का विनाशक आहार व जल के दान के समान न कोई दान था, न है, न होगा।

इस दान को देने से आ. भगवन् कुन्द-कुन्द स्वामी जी के अनुसार तीर्थंकर पद, चक्रवर्ती पद, महामण्डलेश्वर पद, मंडलेश्वर पद, राजाधिराज के पद, इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र व अहमिन्द्र का पद भी प्राप्त होता है। दान भी संसार के सम्पूर्ण सुखों को व भोगोपभोग की उत्कृष्ट सर्व सामग्री को प्रदान करने वाला है तथा यह दान परम्परा से मोक्ष का भी कारण है। बिना दान के कभी भी उत्तम भोग, उत्तम ऐश्वर्य-वैभव, क्षायिक ज्ञान, निर्भयता, निरोगता व अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति नहीं होती। चार प्रकार का दान मानो चतुर्गति रूप संसार को नष्ट कर अनंत चतुष्टय को प्रकट करने में समर्थ कारण है।

इस अधिकार में श्रीषेण (शांतिनाथ भगवान्), राजा वज्रजंघ-ऋषभदेव, आहार दान के अनुमोदक बंदर, नेवला, व्याघ्र, शूकर, सेनापति, मंत्री, पुरोहित, व नगर सेठ (जो क्रमशः वीर, सुवीर, अच्युत, अनंत, भरत, वृषभसेन, बाहुबली व अनन्तवीर्य केवली हुए) की कथायें वर्णित हैं। आगे श्रीमती-राजा श्रेयांस, कबूतर-जयकुमार कबूतरी-सुलोचना, शक्ति सेन-कुबेर कान्त केवली, सुकेतु सेठ, आरम्भक ब्राह्मण- सगर चक्रवर्ती, दो मूर्ख ब्राह्मण, नल नील राजकुमार, दो

ब्राह्मण पुत्र–लवणांगद, मदनांकुश, राजा–धारण–राजादशरथ, भामण्डल, यक्षदेवी, विनय श्री, नंदादेवी, विनय देवी (जो कि श्रीकृष्ण की पटरानियाँ हुई) की कथायें, अकृतपुण्य–धन्यकुमार, अग्निला ब्राह्मणी–अम्बिका देवी एवं शुभंकर–प्रभंकर की कथायें लिपिबद्ध हैं।

पुण्यास्रव कथा कोश अत्यंत सरल भाषा में रचा गया प्रथमानुयोग का एक अनुपम ग्रंथ है। प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थियों के लिये यह तो अमृतोपमा है ही साथ ही सामान्य स्वाध्यायार्थी, नित्य स्वाध्यायी एवं विद्वत्वर्ग के लिये भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। ये पुण्यास्रव कथा कोश की कथायें पुण्य की जनक तो हैं ही साथ ही पुण्य कार्यों को प्रेरणा भी देने वाली हैं। जो कोई भी भद्र परिणामी, मंद कषायी या प्रथम परिणाम वाला भव्य जीव धर्मानुराग व श्रद्धा पूर्वक इस ग्रंथ को आद्योपांत पढ़ता है, वह कालान्तर में सातिशय पुण्य फलों का भोक्ता एवं मुक्ति रमा का कंत होता है।

प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी ग्रंथ के वृहदाकार को देखकर पढ़ने का साहस खो बैठते हैं, अतः वे भयभीत न हो इसलिये इस ग्रंथ का मात्र हिन्दी भावानुवाद ही दो भागों में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी ऐ. श्री विमुक्त सागर जी, क्षु. श्री विशंक सागर जी को सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद, प्रकाशक–निर्ग्रंथ ग्रंथमाला एवं मुद्रक श्री अनिल कुमार चन्द्रा कापी हाउस, आगरा स्वकीय न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने वाली सुधी श्रावकों को प्रूफ रीडिंग (संशोधन) में सहायक एवं प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से सहयोगी उन समस्त महानुभावों को भी वात्सल्य पूर्वक धर्मवृद्धि आशीर्वाद जो नाम की चाहना से दूर हैं किन्तु जिनवाणी की सेवा में निरन्तर संलग्न रहते हैं। उनके द्वारा की गई जिनवाणी की सेवा उन्हें क्षायिक ज्ञान की प्राप्ति में सहायक हो। अस्तु।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझे छद्मस्थ के द्वारा जो भी त्रुटि रह गई हों तो निश्चय रत्नत्रयधारी, सकल संयमी विज्ञ श्रमण उन्हें संशोधित करते हुए मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें, तथा उन त्रुटियों के सम्बन्ध में संकेत देने का कष्ट करें।

सुधी पाठकगणों को भी हंसवत् गुण ग्राही दृष्टि बनाकर, आत्मकल्याण को लक्ष्य में रखते हुए विनयाचार पूर्वक ग्रंथ का आद्योपांत स्वाध्याय करना चाहिए।

"अलमति विस्तरेण"

चैत्रवदी 13 बुधवार
वी.वि.सं. 2528
श्री दि0 जैन मन्दिर
गुड़गाँव, हरियाणा

जिनचरणानुचरः, संयमानुरक्तः,
कश्चिदल्पज्ञः श्रमणः
10/02/2002 गुड़गाँव (हरियाणा)

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	कथा का नाम	पृष्ठांक
	1. पूजाफल	
1.	कुसुमावती–पुष्पलता कथा	1
2.	महाराक्षस विद्याधर कथा	3
3.	श्रेष्ठि–नागदत्तचर मण्डूक कथा	4
4.	पुरोहित पुत्री प्रभावती कथा	5
5.	भूषण वैश्य कथा	15
6.	धनदत्तगोपाल कथा	20
7.	वज्रदन्त चक्रवर्ती कथा	28
8.	श्रेणिक राजा कथा	29
	2. पंच नमस्कार पद फल	
9.	वृषभचर सुग्रीव कथा	60
10.	मर्कटचर सुप्रतिष्ठित मुनि कथा	61
11.	विन्ध्यकीर्ति पुत्री विजयश्री कथा	63
12–13.	वाग्वलिचर अज व रसदग्धवणिक् कथा	64
14.	सर्प–सर्पिणीचर धरणेन्द्र–पद्मावती कथा	73
15.	भूतपूर्व हस्तिनी सीता कथा	79
16.	दृढ़सूर्य चोर कथा	81
17.	सुभग गोपालचर सुदर्शन सेठ कथा	83
	3. श्रुतोपयोग–फल	
18.	भूतपूर्व हरिण–वालिमुनि कथा	94
19.	भूतपूर्व हंस–प्रभामण्डल कथा	97
20.	यममुनि कंथा	102
21–22.	सूर्यमित्र द्विज व चाण्डालपुत्री कथा	105
23.	विद्युद्वेग चोर (भीमकेवली) कथा	126
24.	नन्दीश्वर देव (भूतपूर्व चाण्डाल) कथा	130
25.	सहदेवीचर व्याघ्री कथा	133

॥ ॐ नमो वीतरागाय ॥

श्री-रामचन्द्र-मुमुक्षु-विरचितं

पुण्यास्रव कथाकोशम्

पूजाफलम्

वस्तु के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करने वाले श्री वीर जिनेन्द्र को नमस्कार करके मैं पुण्यास्रव नामक इस कथास्वरूप ग्रन्थ को कहता हूँ।

1. कुसुमावती-पुष्पलता कथा

पुष्पोपजीवितनुजे वरबोधहीने जाते प्रिये प्रथमनाकपतेर्गुणाढ्ये।
श्रीजैनगेहकुतपं भुवि पूजयन्त्यौ नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥1॥

वह इस प्रकार से है, काव्य पुष्पों से आजीविका करने वाले (माली) की दो लड़कियाँ सम्यग्ज्ञान से रहित हो करके भी श्री जिनमन्दिर की देहरी की पूजा करने के कारण प्रथम स्वर्ग के इन्द्र की गुणों से विभूषित बल्लभाएँ हुईं। इसीलिए मैं जिनेन्द्र प्रभु की निरन्तर पूजा करता हूँ।।1 ।।

1. **इस वृत्त काव्य की कथा-** जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में वत्सकावती देश के भीतर स्थित आर्यखण्ड में सुसीमा नाम की नगरी है। उसका अधिपति वरदत्त नाम का सकल चक्रवर्ती (छहों खण्डों का स्वामी) राजा था। किसी एक दिन ऋषिनिवेदक (ऋषि के आगमन की सूचना देने वाला) ने उससे प्रार्थना की कि हे देव! इस नगर के बाह्य भाग में गन्धमादन पर्वत है उसके ऊपर श्री शिवघोष तीर्थंकर का समवसरण स्थित है। इस शुभ समाचार को सुनकर उस वरदत्त चक्रवर्ती ने परिवार के साथ वहाँ जाकर जिनदेव की पूजा की। तत्पश्चात् वह गणधर आदि की वंदना करके अपने कोठे में बैठ गया। उसी समय वहाँ प्रधान देवों ने दो देवियों को लाकर सौधर्म इन्द्र से यह कहते हुए कि हे देव! ये आपकी देवियाँ हैं, उन्हें उसके लिए समर्पित कर दिया। यह देखकर चक्रवर्ती ने तीर्थंकर प्रभु से पूछा कि इन्हें पीछे क्यों लाया गया हैं। इसके उत्तर में तीर्थंकर ने कहा कि वे इसी समय उत्पन्न हुई हैं। वे किस पुण्य के फल से उत्पन्न हुई हैं, यदि यह जानना चाहते हो तो मैं उसी को कहता हूँ, सुनो। इसी नगर में कुसुमावती और पुष्पलता नामकी की दो मालाकारिणी (माली की कन्यायें) थीं जो एक ही माता से उत्पन्न हुई थीं। वे पुष्पकरण्डक वन से पुष्पों को ग्रहण करके घर आते समय मार्ग में स्थित जिनभवन की देहरी की एक एक पुष्प से प्रतिदिन पूजा किया करती थीं। आज उस वन में पहुँचने पर उन्हें सर्प ने काट लिया था, इससे मरण को प्राप्त होकर वे ये देवियाँ उत्पन्न हुई हैं। इस वृत्तान्त को सुनकर समस्त भव्य जन जिन पूजा में तत्पर हो गये।।1 ।।

2. महाराक्षस विद्याधर-कथा

सम्यक्त्वबोधचरणैः खलु वर्जितो ना स्वर्गादिसौख्यमनुभूय वियच्चरेशः।
पूजानुमोदजनिताद् भवति स्म पुण्यान्नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥2॥

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से रहित प्रीतिंकर पूजा के अनुमोदन से उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से स्वर्गादि के सुख को भोगकर विद्याधर राजा हुआ है। इसलिये मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ।।2।।

2. इस वृत्त काव्य की कथा इस प्रकार है- लंका नगरी के भीतर राक्षस कुल में उत्पन्न हुआ एक महाराक्षस नामक विद्याधरों का राजा था। वह मनोहर उद्यान में जलक्रीड़ा के लिये गया था। वहाँ उसने सरोवर में स्थित कमल के भीतर मरे हुए एक भ्रमर को देखा। इससे उसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने वहाँ विराजमान किन्हीं मुनिराज को देखकर पूछा- हे मुनीन्द्र! मेरे पुण्य के अतिशय का कारण कहिये। मुनि ने उसके पुण्यातिशय का कारण इस प्रकार कहा- इसी भरत क्षेत्र के भीतर सुरम्य देश में स्थित एक पौदन नाम का नगर है। उसका स्वामी कनकरथ था। उसने जिनपूजा करायी थी। वहाँ प्रीतिंकर नाम से प्रसिद्ध भद्र मिथ्यादृष्टि तुम देशान्तर से आकर स्थित थे। उस पूजा की अनुमोदना करने से उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से तुम आयु के अन्त में मरकर यक्ष उत्पन्न हुए थे। इस पर्याय में तुमने पुण्डरीकिणी नगरी के भीतर मुनिसमूह के ऊपर वनाग्नि से उत्पन्न हुए उपसर्ग को दूर किया था। इससे तुम आयु के अन्त में शरीर को छोड़कर पुष्कलावती देश के भीतर स्थित विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर निवास करने वाले विद्याधर राजा तडिल्लंघ के मुदित नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। उसकी (तुम्हारी) माता का नाम श्रीप्रभा था। उस पर्याय में तुमने कुमार अवस्था में ही दीक्षा ले ली थी। तत्पश्चात् तप करते हुए तुमने अमरविक्रम नामक विद्याधर नरेश की विभूति को देखकर निदान किया था- उसको प्राप्त करने की इच्छा की थी। इससे तुम समाधि पूर्वक मरण को प्राप्त होकर प्रथम तो सनत्कुमार कल्प में देव उत्पन्न हुए थे और फिर वहाँ से च्युत

होकर तुम (महाराक्षस विद्याधर) हुए हो। इस पूर्व वृतान्त को सुनकर महाराक्षस अपने अमर राक्षस और भानुराक्षस पुत्रों को राज्य देकर मुनि हो गया एवं मुक्ति को प्राप्त हुआ।।2।।

3. श्रेष्ठि-नागदत्तचर मण्डूक-कथा

भेको विवेकविकलोऽप्यजनिष्ट नाके दन्तैर्गृहीतकमलो जिनपूजनाय।
गच्छन् सभां गजहतो जिनसन्मतेः स नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥3॥

विवेक (विशेष ज्ञान) से रहित जो मेंढक जिनपूजा के अभिप्राय से दाँतों के मध्य में कमल पुष्प को दबाकर सन्मति (वर्धमान) जिनेन्द्र की समवसरण सभा को जाता हुआ मार्ग में हाथी के पैर के नीचे दबकर मर गया था वह स्वर्ग में देव उत्पन्न हुआ था। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ।।3।।

3. इसकी कथा इस प्रकार है इसी आर्यखण्ड में मगध देश के भीतर राजगृह नाम का नगर है। किसी समय उसका शासक श्रेणिक (बिम्बसार) था। एक दिन ऋषि निवेदक ने आकर राजा श्रेणिक से निवेदन किया कि हे देव! विपुलाचल पर्वत के ऊपर वर्धमान स्वामी का समवसरण स्थित है। इस बात को सुनकर श्रेणिक ने वहाँ जाकर आनन्द से जिन भगवान की पूजा की और तत्पश्चात् वह गणधरादि मुनियों की वन्दना करके अपने कोठे में बैठ गया। वह वहाँ बैठकर धर्मश्रवण कर ही रहा था इतने में एक देव लोक को आश्चर्यान्वित करने वाली विभूति के साथ समवसरण में आकर उपस्थित हुआ। उसकी ध्वजा और मुकुट में मेंढक का चिन्ह था। उसको देखकर श्रेणिक के हृदय में बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गणधर से पूछा कि हे भगवन्! यह देव पीछे क्यों आया है? और वह किस पुण्य के फल से देव हुआ है? गणधर बोले- इसी राजगृह नगर में एक नागदत्त नाम का सेठ था। उसकी पत्नी का नाम भवदत्ता था। वह सेठ अपनी आयु के अन्त में आर्त्त ध्यान के साथ मरकर अपने ही भवन के पश्चिम भाग में स्थित बावड़ी में मेंढक उत्पन्न हुआ था। उसे वहाँ अपनी पत्नी को देखकर

जातिस्मरण हो गया। वह जब तक उसके समीप में आता था तब तक वह भागकर घर के भीतर चली जाती थी। वह शब्द करते हुए उस बावड़ी के भीतर स्थित होकर उक्त प्रकार से जब-जब भवदत्ता को देखता तब-तब उसके निकट आता था। परन्तु वह डरकर भाग जाती थी। भवदत्ता ने एक समय उपस्थित हुए सुव्रत नामक अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा कि हे प्रभो! वह मेंढक कौन है?- मुनिराज ने कहा कि वह नागदत्त सेठ है। यह सुनकर वह उसे अपने घर ले गई। वहाँ उसने उसे उसके योग्य आदर-सत्कार के साथ रक्खा। तुमने जो श्री महावीर जिनेन्द्र की वन्दना के लिये आनन्द भेरी करायी थी उसके शब्द को सुनकर और उससे जिनेन्द्र देव के आगमन को जानकर वह मेंढक दाँतों से कमलपुष्प को लेकर यहाँ आ रहा था। वह मार्ग में तुम्हारे हाथी के पैर के नीचे दबकर मरण को प्राप्त होता हुआ यह देव हुआ है। इस वृत्तान्त को सुनकर यह विचार करना चाहिए कि जब पूजा की अनुमोदना से मेंढक भी देव हो गया तब भला मनुष्य क्या न होगा? वह तो सुनिश्चित ही (निश्चय ही या नियम से) मुक्ति को प्राप्त कर सकता है।।3।।

4. पुरोहितपुत्री प्रभावती-कथा

विप्रस्य देहजचरापि सुरो बभूव पुष्पाञ्जलेर्विधिमवाप्य ततोऽपि चक्री।
मुक्तश्च दिव्यतपसो विधिमाविधाय नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि ॥4॥

पुष्पांजलि की विधि को प्राप्त करके-पुष्पांजलि व्रत का परिपालन करके-भूतपूर्व ब्राह्मण की पुत्री पहिले देव हुई, फिर चक्रवर्ती हुई, और तत्पश्चात् दिव्य तप का अनुष्ठान करके मुक्ति को भी प्राप्त हुई। इसलिये मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ।।4।।

4. इसकी कथा- जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में स्थित सीता नदी के तट पर मंगलावती देश के अन्तर्गत रत्नसंचयपुर नामक नगर है। उसके राजा का नाम वज्रसेन और उसकी पत्नी का नाम जयावती था। वह एक समय महल के ऊपर छत पर सखीजनों के साथ दिव्य आसन

पर बैठी हुई दिशा का अवलोकन कर रही थी। इतने में कुछ सुकुमार बालक पढ़ करके जिनालय से बाहर निकले। उनको देखकर वह 'मुझे कब पुत्र होगा? इस प्रकार चिन्तातुर होती हुई दुःख से आँसुओं को बहाने लगी। किसी सखी ने इस बात की सूचना देते हुए राजा से निवेदन किया कि हे देव! रानी जयावती रूदन कर रही है। इस बात को सुनकर राजा अन्तःपुर में गया। उसने वहाँ अर्द्धासन पर बैठते हुए देवी को रूदन करती हुई देखकर अपने दुपट्टे से उसके अश्रुप्रवाह को पोंछा और दुःख के कारण को पूछा। परन्तु उसने कुछ नहीं कहा। तब किसी सखी ने कहा कि रानी दूसरों के पुत्रों को देखकर दुखी हो गई है। रानी पुत्र की अभिलाषा करती है, यह सुनकर राजा ने उससे कहा कि हे देवि! आओ जिनपूजा के लिये चलें। इस प्रकार वह दुःख को भुलाने के लिये उसे जिनालय में ले गया। वहाँ राजा ने जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की और फिर ज्ञानसागर मुमुक्षु की वन्दना करके धर्मश्रवण करने के पश्चात् उसने उनसे पूछा कि इस देवी के पुत्र होगा या नहीं? मुनिराज बोले- इसके छह खण्डों का स्वामी (चक्रवर्ती) चरमशरीरी पुत्र होगा। इससे संतुष्ट होकर वे दोनों पति-पत्नी घर वापिस गये। तत्पश्चात् कुछ ही दिनों में उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका रत्नशेखर नाम रखकर माता और पिता सुखपूर्वक स्थित हुए। वह क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर जब सात वर्ष का हो गया तब उसे पढ़ने के लिये जिनालय में जैन उपाध्याय के पास भेजा गया। वह थोड़े ही दिनों में समस्त शास्त्र विद्याओं में प्रवीण हो गया। अब वह जवान हो गया था। एक दिन वह वसन्तोत्सव में जलक्रीड़ा करने के लिये वन में गया। जलक्रीड़ा के पश्चात् वह मणिमय मण्डप में स्थित अनुपम सिंहासन पर बैठकर जब वेश्या के नृत्य को देख रहा था तब कोई विद्याधर आकाश मार्ग से जाता हुआ उसके ऊपर विमान के आने पर वहाँ नीचे उतरा। वे दोनों एक दूसरे को देखकर परस्पर में स्नेह को प्राप्त हुए। तब समुचित सम्भाषण के बाद दोनों एक आसन पर बैठ गये। पश्चात् रत्नशेखर ने पूछा- तुम कौन हो? और किस कारण से यहाँ आये हो, तुमको देखकर मुझे प्रीति उत्पन्न हो रही है। विद्याधर बोला सुनो- हे मित्र! इसी विजयार्ध पर्वत के ऊपर दक्षिण श्रेणि में सुरकण्डपुर नामक नगर है। उसका स्वामी

जयधर्म है। उसकी पत्नी का नाम विनयावती है। इन दोनों का मैं "मेघवाहन" नाम का पुत्र हूँ जो समस्त विद्याओं का स्वामी है। मेरे पिता मुझे राज्य देकर दीक्षित हो चुके है। मैं स्वेच्छा से विहार करता हुआ जा रहा था कि तुम्हें देखा। इस प्रकार कहकर विद्याधर ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? रत्नशेखर बोला- मैं इस रत्नसंचयपुर के अधिश्वर वज्रसेन का रत्नशेखर नामक पुत्र हूँ। मेरी माता का नाम जयावती है। इस प्रकार कहने पर उन दोनों में मित्रता हो गई। तत्पश्चात् रत्नशेखर ने कहा कि मैं मेरु पर्वत के ऊपर स्थित जिनालयों के दर्शन करना चाहता हूँ। इस पर मेघवाहन ने कहा कि तो फिर विमान में बैठो और चलो शीघ्र ही वहाँ चलें। उसने कहा कि मैं अपने द्वारा सिद्ध की गई विद्या के बल से वहाँ जाना चाहता हूँ। तब विद्याधर ने उसे मंत्र दिया और कहा कि इसका जाप करो। तत्पश्चात् वह सेवक-समूह को छोड़कर और उसी मंत्र की उत्तम साधना करके जब तक उसका जाप करता है तब तक पाँच सौ विद्याओं ने उपस्थित होकर यह कहा कि हमें आज्ञा दीजिये। तब वे दोनों दिव्य विमान में बैठकर गये और अढ़ाई द्वीपों के भीतर स्थित जिनालयों की पूजा करके अपने देश में स्थित विजयार्द्ध पर्वत वासी सिद्धकूट के ऊपर आ गये।

वहाँ जिन भगवान् की पूजा करके वे उसके मण्डप में बैठे ही थे कि इतने में वहाँ विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणि में स्थित रथनूपुर के राजा विद्युद्वेग और रानी सुखकारिणी की पुत्री मदनमंजूषा अपनी विलासिनियों (सखियों) के साथ जिनदर्शन के लिये आई। वह उसको देखकर अतिशय विह्वल (कामपीड़ित) हो गई। उस वृत्तान्त को सुनकर उसका पिता वहाँ आया और मित्र के साथ उसे (रत्नशेखर को) अपने घर पर ले गया। उसने वहाँ रहने वाले समस्त विद्याधर कुमारों के भय से उसका स्वयंवर किया। मदनमंजूषा ने रत्नशेखर के गले में माला डाल दी। तब सब विद्याधर क्रुद्ध होते हुए अपने मन्त्रियों के वचन का उल्लंघन करके युद्ध के लिये तत्पर हो गये। फिर भी उन लोगों ने मंत्रियों के कहने से सन्धि के निमित्त रत्नशेखर के पास अजित नामक दूत को भेज दिया। उसने जाकर रत्नशेखर से निवेदन किया कि हे राजन्! धूमशेखर आदि विद्याधर राजाओं ने मुझे आपके पास भेजा है। वे सब

ही आपसे स्नेहपूर्वक कहते हैं कि विद्याधर कन्या को हमें देकर रत्नशेखर सुखपूर्वक रहे। इसलिये आप उन्हें कन्या को दे दें। इस बात को सुनकर मेघवाहन के मुखकी ओर देखते हुए रत्नशेखर ने उससे कहा कि इस दुर्बुद्धि से तुम्हारे स्वामियों के शिर धड़ों में रहने वाले नहीं हैं। जाओ और उनसे रणाङ्गण में स्थित होने के लिये कह दो। इस प्रकार कहकर रत्नशेखर ने दूत को वापिस कर दिया। दूत से वे इस सबको सुन करके युद्ध भूमि में उपस्थित हो गये। उनको युद्ध भूमि में स्थित देखकर रत्नशेखर और मेघवाहन विद्या के बल से चतुरंग सेना को निर्मित करके विद्युद्वेग के साथ युद्धभूमि में आ डटे। विद्याधरों ने भृत्यवर्ग को (सेना को) युद्ध के लिये आज्ञा दी। तब रत्नशेखर ने भी अपने भृत्यवर्ग को युद्ध करने की आज्ञा दी। तब यथायोग्य दोनों ओर का भृत्यसमूह युद्ध करने लगा। इस प्रकार बहुत काल के बीतने पर विद्याधरों की सेना (पदाति) नष्ट हो गई तथा अश्वारोही व रथारोही सुभट भी नष्ट हो गये। अपनी सेना को नष्ट होते देखकर क्रोध को प्राप्त हुए मुख्य समस्त विद्याधरों ने रत्नशेखर को वेष्टित कर (चारों ओर से घेर) लिया। तब उसने अपने हाथ में स्थित धनुष से मुख्य बाणों को छोड़कर बहुत से विद्याधरों को प्राणरहित कर दिया। इससे उन विद्याधरों ने रत्नशेखर के ऊपर अनेक विद्याबाण छोड़े। उनको प्रतिपक्षभूत विद्याबाणों से जीतकर रत्नशेखर बोला कि तुम लोग अब भी मेरी सेवा करके सुखपूर्वक रह सकते हो। तब वे विद्याधर उत्तम वस्तुओं को भेंट करके रत्नशेखर की शरण में जा पहुँचे। तत्पश्चात् वह जगत् को आश्चर्यान्वित करने वाली विभूति को लेकर सबके साथ नगर में प्रविष्ट हुआ। उसने शुभ मुहूर्त में मदनमंजूषा के साथ विवाह कर लिया। फिर कुछ दिन वहाँ रहकर उसे अपने माता-पिता के दर्शन की उत्कण्ठा हुई। तब वह विद्याधर राजाओं, ससुर, पत्नी और मित्र के साथ विमान में बैठकर आकाश को व्याप्त करता हुआ अपने पुर में आ गया। उसके आगमन को जानकर पिता परिवार के साथ सन्मुख आया और उसको देखकर सुखी हुआ। रत्नशेखर ने पुर में प्रवेश करके माता को प्रणाम किया। तत्पश्चात् साथ

1. मंत्रवादक - विभिन्न प्रकार की विद्याओं को सिद्ध करने की विधि से युक्त मंत्रों का शास्त्र था, किन्तु वर्तमान में इस नाम का शास्त्र अनुपलब्ध है।

में आये हुए विद्याधरों का अतिथिसत्कार करके उसने कुछ दिनों में उन्हें वापिस कर दिया। इस प्रकार वह सुख से स्थित होकर काल को बिताने लगा।

एक समय उसने मेघवाहन और मदनमंजूषा के साथ मेरु पर्वत के ऊपर जाकर वहाँ के जिनालयों की पूजा की। पश्चात् वह किसी एक जिनालाय में बैठा ही था कि इतने में आकाश से अमितगति और जितारि नामक दो चारण ऋषि अवतीर्ण हुए। उनकी वन्दना करके उसने धर्मश्रवण किया और फिर उनसे अपने पुण्यातिशय तथा मेघवाहन व मदनमंजूषाविषयक मोह के कारण को कहने की प्रार्थना की। मुनिराज ने उसका निरूपण इस प्रकार से किया- इसी भरत क्षेत्र के भीतर आर्यखण्ड में स्थित मृणाल नगरी में श्री सम्भवनाथ तीर्थंकर तीर्थकाल में जितारि नामक राजा हुआ है। उसकी पत्नी का नाम कनकमाला था। इस राजा के श्रुतकीर्ति नाम का पुरोहित था जिसके बन्धुमती नाम की ब्राह्मणी (पत्नी) और प्रभावती नाम की पुत्री थी। वह पुरोहित पुत्री और राजपुत्री दोनों ही एक जैन पण्डिता के समीप में पढ़ी थीं। एक दिन वह पुरोहित बन्धुमती के साथ क्रीड़ा करने के लिये अपने निवास स्थान के क्रीड़ा भवन में गया था। वहाँ वह क्रीड़ा के अन्त में सो गई थी। पुरोहित घूमने के लिये बाहर निकल गया था। बन्धुमती के शरीर में स्थित सुगन्धि के कारण वहाँ एक सर्प आया और उसने उसे काट लिया। इससे वह मर गई। जब पुरोहित वापिस आया तो उसने उसे बुलाया, परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। इससे वह दुखी होकर अतिशय शोकसंतप्त हुआ। वह अविवेक से मृत शरीर को संस्कार के लिये भी नहीं देता था। ऐसी अवस्था में जब वह निद्रा के अधीन हुआ तब कहीं बन्धुमती के मृत शरीर का दाहसंस्कार किया गया। फिर भी उसने शोक को नहीं छोड़ा। तब उसकी पुत्री प्रभावती उसे मुनि के समीप में ले गई। मुनि के द्वारा समझाने पर वह दिगम्बर (मुनि) हो गया। परन्तु "मंत्रवादक'" के पढ़ने से वह चारित्र के परिपालन में अस्थिर हो गया। वह विद्याओं को सिद्ध करने के लिये मंत्र जाप में पुष्पादि को देने के निमित्त पुत्री को पर्वत की गुफा में ले आया। उसके द्वारा दिये गये पुष्पादि से वह मंत्रों का जप करने लगा। इस प्रकार से उसे अनेक

विद्याएँ सिद्ध हो गई थीं। उसने विद्या के बल से एक नगर तथा स्त्री आदि को बनाया। वहाँ रहकर वह भोगों को भोगने लगा। जब पुत्री ने उसे समझाने का प्रयत्न किया तब वह बोला कि हे पुत्री! तू मुझे समझाने का प्रयत्न मत कर। फिर भी वह रुकती नहीं है- समझाती ही है। तब उसने उसे विद्या के द्वारा गहन वन में छुड़वा दिया। वह वहाँ धर्म-भावना के साथ स्थित रही। फिर उसने अवलोकिनी विद्या को भेजा। उसने वहाँ जाकर उससे कहा कि हे प्रभावती! जहाँ तुझे अच्छा प्रतीत होता हो वहाँ मैं तुझे ले चलती हूँ। प्रभावती ने कहा कि कैलाश पर्वत पर ले चल। विद्या उसे कैलाश पर्वत पर ले गई और वहाँ स्थापित करके वापिस चली गई। उसने वहाँ सब जिनालयों की पूजा और स्तुति की। तत्पश्चात् वह एक जिनालय में बैठी थी कि इतने में वहाँ देवी पद्मावती आई। उक्त देवी जिनेन्द्र की वन्दना करके जैसे ही वहाँ से निकली वैसे ही कन्या को देखकर पूछती है कि तुम कौन हो? वह जब तक अपने वृतान्त को कहती है तब तक अनेक देव वहाँ आ पहुँचे। उनको देखकर कन्या ने यक्षी से पूछा कि हे देवी! ये देव किस लिए आये हैं? यक्षी ने कहा कि आज भाद्रपद शुक्ला पंचमी का दिन है। इसमें पुष्पांज्जलि व्रत का विधान है। उसे करने के लिए ये देव यहाँ आये हैं। कन्या ने कहा- तो उस व्रत का स्वरूप मेरे लिए बतलाइए। यक्षी ने कहा- बतलाती हूँ, सुनो। हे कन्ये! भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशिर, पुष्य, माघ, फाल्गुन और चैत्र इन मासों के मध्य में किसी भी मास की शुक्ल पंचमी के दिन उपवासपूर्वक पूर्वाह्न काल से प्रारम्भ करके प्रत्येक प्रहर में चौबीस तीर्थंकरों आदि के अभिषेक व पूजा को करके चौबीस तंदुल पुंजों को जिनेन्द्रों के आगे करके तथा बारह पुंजों को यक्षिदेवी के आगे करके प्रदक्षिणा करते हुए तीर्थंकरों के नामनिर्देशक पूर्वक पुष्पांजलि का क्षेपण करें। वह किस तरह से करे, इसका स्पष्टीकरण करते हैं-

जो श्री वृषभनाथ जिनेन्द्र इन्द्रों से पूजित, तेजस्वी (या अतिशय बलशाली) और संसार (भव दुःखों) के विनाशक हैं उनकी मैं कनक (चम्पा या पलाश) व केतकी के फूलों से पूजा करता हूँ।।1।। मैं लोक के समस्त भव्य जीवों को सुख देने वाले एवं संसार के दुखों के नाशक

श्री अजित नाथ जिनेन्द्र की विदित चम्पक पुष्पों से पूजा करता हूँ।।2।। मैं यहाँ केवलज्ञान से संयुक्त होकर संसार के दुःखों को नष्ट करने वाले उन श्री सम्भवनाथ जिनेन्द्र की सुगन्धित सिन्दुधारक (श्वेतपुष्प) पुष्पों से पूजा करता हूँ।।3।। जो श्री अभिनन्दन जिनेन्द्र उत्तमोत्तम गुणों के समूह से सहित तथा संसार के दुःखों के नाशक हैं, उनकी मैं बकुलपुष्पों की माला से पूजा करता हूँ।।4।। जो सुमति जिनेन्द्र चातुर्वर्ण्य संघ (अथवा गणधरों) के अधिपति होकर संसार के नाशक हैं उनकी मैं उत्कृष्ट सुरभि वृक्ष के फूलों से पूजा करता हूँ।।5।। कमल के समान कान्तिवाले जो श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र तीन लोक के प्रिय एवं संसार के दुःखों के नाशक हैं, उनकी मैं उत्तम श्वेत कमलों के द्वारा पूजा करता हूँ।।6।। जो श्री सुपार्श्व नामक जिनेन्द्र लोक में घातिया कर्मों से रहित होकर संसार के दुःखों के नाशक हैं, उनकी मैं पाटल पुष्पों से बहुत पूजा करता हूँ।।7।। मैं मुक्ति सुख को प्रदान करने वाले, उत्कृष्ट श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की सुगन्धित नाग चम्पक पुष्पों से पूजा करता हूँ। वे जिनेन्द्र संसार के दुःखों के नाशक हैं।।8।। मैं समस्त सुख को उत्पन्न करने वाले उत्तम कमलपुष्पों की मालाओं से संसार के दुःखों के नाशक श्री सुविधि (पुष्पदन्त) जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ।।9।। मैं बहुत से भौरों के संचार से संयुक्त ऐसे विकसित नील कमलों के द्वारा संसार के दुःखों के नाशक श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ।।10।। मैं देवों के चित्त को आनन्दित करने वाले राजा विष्णु के पुत्र श्री श्रेयांस जिनेन्द्र की कुमुद पुष्पों से पूजा करता हूँ। वे भगवान् संसार के दुःखों के नाशक हैं।।11।। जो वासुपूज्य जिनेन्द्र लाल कमल के समान कान्तिवाले और संसार के दुःखों के नाशक हैं उन उत्तमोत्तम गुणों से संयुक्त श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की मैं उत्तम कुन्दपुष्पों से पूजा करता हूँ।।12।। जो श्री विमलनाथ जिनेन्द्र निर्मल सुख से सहित और संसार के दुःखों के नाशक हैं उनकी मैं उत्तम मेरुपुष्पों से पूजा करता हूँ।।13।। जो देवादिकों से स्तुत अनन्त जिनेन्द्र उत्तम चारित्र से विभूषित एवं संसार के दुःखों के नाशक हैं, उनकी मैं चम्पक और कमल पुष्पों से पूजा करता हूँ।।14।। जो जिनेन्द्र 'धर्म' इस नाम से जाने गये हैं (प्रसिद्ध हैं), समस्त वस्तुओं के जानकार (सर्वज्ञ) और संसार के दुःखों के नाशक हैं उनकी मैं नवीन

कदम्ब वृक्ष के फूलों से पूजा करता हूँ।।15।। जिनकी कीर्ति लोक में विस्तृत है तथा जो संसार के दुःखों के नाशक हैं उन उत्कृष्ट श्री शान्तिनाथ नामक जिनेन्द्र की विचकिल पुष्पों से पूजा करता हूँ।।16।। मैं लोक में संसार दुःख के नाशक श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्र की अतिशय पुण्य को करने वाले तिलक पुष्पों से पूजा करता हूँ।।17।। जो श्री अरनाथ जिनेन्द्र काम से रहित, समस्त भव्य जीवों से वंदित एवं संसार के दुःखों के नाशक हैं उनकी मैं कुरवक और केतकी पुष्पों से पूजा करता हूँ।।18।। जो श्री मल्लिनाथ नामक जिनेन्द्र यहाँ तीन लोक के स्वामियों के- इन्द्र, धरणेन्द्र एवं चक्रवर्तियों के- अधिपति हैं उनकी मैं कुब्ज पुष्पों से पूजा करता हूँ।।19।। जो श्रीमुनि सुव्रत जिनेन्द्र गुणों के भण्डार होकर यम, नियम व उत्तम व्रतों से सहित तथा संसार दुःखों के का नाश करने वाले हैं उनकी मैं सुन्दर मुचकुन्द पुष्पों से पूजा करता हूँ।।20।। जो उत्तम नाम वाले नमि जिनेन्द्र संसाररूप समुद्र से पार होने के लिए नाव के समान होकर उक्त संसार के दुःखों का नाश करने वाले हैं उन श्री नमि प्रभु जिनेन्द्र की मैं निर्मल कुन्द पुष्पों के द्वारा पूजा करता हूँ।।21।। मैं कमलपुष्पों के द्वारा उन श्री नेमिनाथ जिनेन्द्र की पूजा करता हूँ जो कि चन्द्र की किरणों के समूह के समान निर्मल कीर्ति के देने वाले, पवित्र और संसार के दुःखों के नाशक हैं।।22।। जो उत्कृष्ट श्री पार्श्वनाथ नामक जिनेन्द्र हरितवर्ण शरीर के धारक तथा संसार के दुःखों के नाशक हैं उनकी मैं उत्तम कर्णवीर पुष्पों के द्वारा पूजा करता हूँ।।23।। जो सर्व श्री वर्धमान जिनेन्द्र देवों के द्वारा अभ्युदय को प्राप्त तथा संसार के दुःखों के नाशक हैं उनकी मैं स्तवक पुष्पों से पूजा करता हूँ।।24।। इस प्रकार मैं उत्तम मोक्ष को प्राप्त करने के लिए समस्त दोषसमूह से रहित जिनेन्द्र देव की पवित्र मन, वचन और काय से सब पूष्पों के समूह से निरन्तर पूजा करता हूँ।।25।।

इस प्रकार पाँच दिन तक रात्रि में भी जागरणपूर्वक ही करके दूसरे दिन दो प्रहर तक उसी प्रकार से प्रवृत्त करके पारणा के समय चौबीस मुनियों की व्यवस्था करे, यदि चौबीस मुनि प्राप्त न हों तो पाँच मुनियों की अथवा एक मुनि की व्यवस्था कर तथा दो पवित्र सधवा स्त्रियों को भोजन वस्त्रादि देकर एक-एक मातुलिंग फल देवे। इस प्रकार

चार दिन पुष्पांजलि को करके नवमी के दिन उपवास करते हुए उसी प्रकार से अभिषेकादिपूर्वक अन्तिम अंजलि को करे। उक्त प्रकार से यदि पुष्पों को न प्राप्त कर सके तो पाँच प्रकारों से पुष्पांजलि को करे। इस प्रकार तीन वर्षों में उद्यापन करते समय चौबीस जिनप्रतिमाओं को प्रतिष्ठा कराकर जिनालयों के लिए देवे, ऋषियों के लिए पुस्तकादि को देवे; चतुर्वर्ण संघ के लिए शक्ति के अनुसार भोजन आदि को देवे; तथा पटह, झालर, कलश आरार्तिक, धूपदहन, चंदोवा, ध्वजा और चामर आदि को मंदिर में देवें। इस व्रत के फ़ल से स्वर्गादि का सुख प्राप्त होता है। यदि उद्यापनादि विषयक शक्ति न हो तो पाँच वर्ष तक पुष्पांजलि के संकल्प से सुवर्ण के समान वर्णवाले तन्दुलों का क्षेपण करे और उसके फल को प्राप्त करे।

इस प्रकार यक्षी के कहने पर कन्या ने कहा मैं इस विधि को ग्रहण करती हूँ। तब उस यक्षी ने कहा कि ग्रहण कर और मनुष्यों के मध्य में उसे प्रकाशित कर। तत्पश्चात् देवी पद्मावती के साथ उसने पाँच दिनतक वैसा ही किया। पश्चात् देवों के चले जाने पर पद्मावती ने लाकर उसे (प्रभावती को) मृणालपुर में पहुँचा दिया। ठीक है, पुण्य के प्रभाव से प्राणियों को कौन-कौन सी सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती है? सब ही अभीष्ट सम्पत्ति प्राप्त होती है। पश्चात् वह ब्राह्मणकन्या भूतिलक जिनालय के भीतर गई। वहाँ उसने जिनेन्द्रदेव तथा त्रिभुवन स्वयम्भू ऋषि की वन्दना करके उनके समीप दीक्षा की प्रार्थना की। ऋषि ने कहा- तूने बहुत अच्छा किया, अब तेरी तीन दिन की ही आयु शेष है। तब वह दीक्षा को धारण करके पुष्पांजलि की विधि को प्रकट करती हुई स्थित रही।

इधर पिता ने वह कहाँ और किस प्रकार है, यह ज्ञात करने के लिए अवलोकिनी विद्या को भेजा। उस अवलोकिनी विद्या से उसके वृत्तान्त को जानकर पुरोहित ने उसे अपने समान करने के लिए उपसर्ग आदि के द्वारा तप से भ्रष्ट करने के विचार से विद्याओं को भेजा। किन्तु जब वे विद्यायें उसे नीतिपूर्वक भ्रष्ट न कर सकीं तब उन सबने उसके ऊपर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। फिर भी प्रभावती स्थिरचित रहकर धर्मध्यान से स्थित रही। तब व्रत के प्रभाव से पद्मावती के साथ वहाँ धरणेन्द्र आया। उसको देखकर विद्याएँ भाग गईं। प्रभावती समाधिपूर्वक

शरीर को छोड़कर अच्युत स्वर्ग में पद्मावर्त विमान के भीतर पद्मनाभ नामक महर्द्धिक देव हुई। तब वह (प्रभावती का जीव) अपने पिता को सम्बोधित करने के लिए संसार को आश्चर्यचकित करने वाली विभूति के साथ वहाँ आया। उसने पिता को सम्बोधित करके उसे अपने गुरू के पास में दीक्षा ग्रहण करा दी। पश्चात् वह अपने गुरू की पूजा करके स्वर्ग लोक वापिस चला गया और वहाँ विभूति के साथ रहने लगा। श्रुतकीर्ति भी समाधि के प्रभाव से उसी सोलहवें स्वर्ग में प्रभास विमान में प्रभास नामक देव हुआ। वहाँ पद्मनाम देव की बहुत-सी अग्र देवियों के मरण को प्राप्त हो जाने पर कोई पद्मिनी नाम की देवी उत्पन्न हुई। उक्त स्वर्ग से आकर पद्मनाम देव तुम उत्पन्न हुए हो, प्रभास देव मेघवाहन उत्पन्न हुआ है, और पद्मिनी देवी मदनमंजूषा उत्पन्न हुई है। इस प्रकार स्नेह के कारण को सुनकर और पुष्पांजलि के विधान को ग्रहण करके मुनियों को प्रणाम करता हुआ वह रत्नशेखर अपने नगर में वापिस आ गया। तत्पश्चात् वह पुष्पांजलि के विधान को करता हुआ स्थित हो गया।

किसी समय जब राजा दरबार में स्थित था तब उसे वनपाल ने आकर एक कमल-पुष्प दिया। उसमें मरे हुए भ्रमर को देखकर राजा विरक्त हो गया। उसने रत्नशेखर को राज्य देकर एक हजार राजाओं के साथ यशोधर मुनिराज के समीप में दीक्षा धारण कर ली। इधर रत्नशेखर की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह छह खण्डरूप समस्त पृथ्वी को जीतकर अपने नगर में वापिस आ गया। जब उसने पिता के केवलज्ञान उत्पन्न होने की बात सुनी तब वह कुटुम्बीजन एवं भृत्यवर्ग के साथ उनकी वन्दना करने के लिए गया। वन्दना के पश्चात् उसके मदनमंजूषा पत्नी से कनकप्रभ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। निन्यानवें लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे पूर्व तक राज्य करके वह रत्नशेखर वहाँ बिजली व्रजपात को देखकर वैराग्य को प्राप्त हुआ। इससे वह कनकप्रभ के लिए राज्य देकर मेघवाहन आदि बहुत से राजाओं के साथ त्रिगुप्त मुनिराज के निकट में दीक्षित हो गया और केवलज्ञान को उत्पन्न करके मोक्ष को प्राप्त हुआ। मेघवाहन भी मोक्ष को प्राप्त हुआ। मदनमंजूषा आदि तप के प्रभाव से अपने-अपने पुण्य के अनुसार

यथायोग्य स्वर्ग में देवादिक उत्पन्न हुए। इस प्रकार जब वह पुरोहित की पुत्री एक बार जिन पूजा के प्रभाव को इस प्रकार की विभूति की भाजन हुई तब भला निरन्तर की जाने वाली जिनपूजा के प्रभाव से क्या पूछना है? अर्थात् तब तो प्राणी उसके प्रभाव से यथेष्ट सुख प्राप्त करेगा ही।।4।।

5. भूषणवैश्य कथा

वैश्यात्मजो विगतधर्ममनाः सुमूढो रागी सदा जगति भूषणरूढनामा।

देवोऽभवत्स जिनपूजनचेतसैव नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि॥5॥

संसार में भूषण इस नाम से प्रसिद्ध जो वैश्यपुत्र धर्माचरण से रहित, अतिशय मूर्ख और रागी था वह केवल जिनपूजा में मन लगाने से ही देव हुआ है। इसीलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ।।5।।

5. इसकी कथा इस प्रकार है – रामायण (पद्म चरित) में जब लक्ष्मण रावण को मारकर राम के साथ अयोध्या नगरी में वापिस आये तब राम ने भरत से कहा कि जो नगर तुम्हें अभीष्ट हो उसे ग्रहण करो। यह सुन कर भरत ने कहा कि महाभाग! मुझे तीन लोक का शिखर (सिद्धक्षेत्र) अभीष्ट है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ। तब राम ने कहा कि कुछ समय राज्य करके उसे मेरे साथ ग्रहण करना। इस पर भरत ने कहा कि इस कार्य में मुझे दो बार विघ्न उपस्थित हुआ है। अतएव अब मैं उसे इसी समय ग्रहण करना चाहता हूँ। यह कहकर भरत जाने को उद्यत हो गया। तब उसे लक्ष्मण ने पकड़ लिया। राम बोले कि हे भरत, तुम्हें मेरे मन के अनुसार चलना चाहिए– मेरी आज्ञा माननी चाहिए, ऐसा कह कर उन्होंने भरत को दीक्षा ग्रहण करने से रोक दिया। उन्होंने भरत को अनुरक्त करने के लिए जलक्रीड़ा की योजना करते हुए भरत को अन्तःपुर और विलासिनीजन के साथ क्रीड़ा के निमित्त भेज दिया। वह जाकर सरोवर के ऊपर बारह भावनाओं का चिन्तन करता

हुआ स्थित रहा। जन समुदाय के साथ यात्रा के समय में त्रिलोकमण्डन हाथी खम्भे को उखाड़कर तथा राम-लक्ष्मण को लांघकर वहाँ आ पहुँचा। राज्यरूप प्रासाद का मूल स्तम्भ भूत वह हाथी भरत के निमित्त से आयोजित इस मेले को देखकर मारने के लिए आया। इससे स्त्री आदि जनों को बहुत भय उत्पन्न हुआ। किन्तु भरत के द्वारा पीड़ित होकर उसका मन शान्त हो गया। उसने भरत को अपने कन्धे पर बैठाकर नगर में पहुँचाया। यह देखकर लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। उस दिन से उस हाथी ने खाना-पीना छोड़ दिया। तब उसकी परिचर्या करने वाले सेवक जनों ने आकर इसकी सूचना रामचन्द्र को दी। तब उसे रामचन्द्र आदि चारों भाइयों ने जाकर समझाया। किन्तु उसने खाना-पीना आदि कुछ भी स्वीकार नहीं किया। इससे रामादि को बहुत चिन्ता हुई। इस प्रकार दिन बीत गये। इस बीच में ऋषि निवेदक ने आकर रामचन्द्र से निवेदन किया कि आप के पुण्योदय से महेन्द्र उद्यान में देशभूषण केवली का समवसरण (गन्धकुटी) स्थित है। यह सुनकर जैसे निर्धन मनुष्य अकस्मात् निधि को पाकर हर्षित होते हैं वैसे ही वे सब हर्ष को प्राप्त हुए। उन्होंने परिवार के साथ जाकर केवली भगवान की वन्दना की। पश्चात् वे अपने कोठे में बैठ गये। धर्मश्रवण के पश्चात् रामचन्द्र ने पूछा कि हे भगवन्! भरत से पीड़ित होकर त्रिलोकमण्डन हाथी ने क्रोध के परित्याग के साथ ही भोजनपानादि का भी परित्याग किस कारण से किया है? भगवन् बोले- उसने जातिस्मरण के कारण वैसा किया है। यह सुनकर रामचन्द्र ने प्रार्थना की कि हे भगवन्! तब तो मुझे उसके भवों के निरूपण करने की कृपा कीजिए। तब मुनिराज ने उन दोनों के भवों का निरूपण इस प्रकार किया-

इस अयोध्यापुरी में क्षत्रिय सुप्रभ और उसकी पत्नी प्रह्लादिनी के सूर्योदय और चन्द्रोदय नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। वे दोनों वृषभ जिनेन्द्र के साथ दीक्षित होकर मरीचि के साथ भ्रष्ट हो गये। इस कारण उन्होंने बहुत भवों तक तिर्यंच गति में परिभ्रमण किया। तत्पश्चात् उनमें से चन्द्रोदय कुरुजांगल देश के भीतर हस्तिनापुर के स्वामी हरिपति और उसकी पत्नी मनोहरी के कुलंकर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका विवाह श्रीदामा नाम की राजपुत्री के साथ सम्पन्न हुआ। उक्त राजा के जो

विश्वावसु नामक प्रधान था, उसकी पत्नी का नाम अग्निकान्ति (अग्निकुण्डा) था। सूर्योदय में इन दोनों के मूढ़श्रुति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुलंकर राजपद पर और दूसरा (मूलश्रुति) प्रधान के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। एक समय कुलंकर तापसों की पूजा करने जा रहा था। मार्ग में उसे अभिनन्दन भट्टारक के दर्शन हुए। उसने वन्दना पूर्वक उनसे धर्मश्रवण करके व्रतों को ग्रहण किया। मुनिराज ने उससे कहा कि एक वृत्तान्त सुनो- तुम्हारा रगस्य नाम का पितामह तापस स्वरूप से मरकर तापसों के आश्रम के समीप में सूखे काष्ठ के कोटर में सर्प पर्याय को प्राप्त हुआ है। इस वृत्तान्त को सुनकर कुलंकर वहाँ गया और उसने अपने पितामह को मुनिराज के कहे अनुसार ही वहाँ सर्प पर्याय में देखा। इससे वह ग्रहण किये हुए अपने व्रतों में अधिक दृढ़ता को प्राप्त हुआ। उसके उन दृढ़ व्रतों को मूढश्रुति ने नष्ट करा दिया। उन दोनों को जार पुरुष में आसक्त होकर श्रीदामा ने मार डाला। इस प्रकार मर करके वे क्रम से खरगोश, नेवला, चूहा, मयूर, सर्प, सारंग (हरिण), हाथी और मेंढक हुए। मेंढक उस हाथी के पैर के नीचे दबकर मरा और तीनों बार मेंढक ही हुआ। फिर वह उस हाथी के पैर से ही मरकर मुर्गा हुआ और वह हाथी बिलाव हुआ। तत्पश्चात् वह केंकड़ा हुआ। उस केंकड़े को कौओं ने खा डाला। इस प्रकार से मरकर वह (मूढ़श्रुति) शिशुमार (हिंस्र जलजन्तु) हुआ और कुर्कट मत्स्य हुआ। इस प्रकार से परिभ्रमण करके मूढश्रुति का जीव राजगृह नगर में ब्राह्मण बह्वाश और उसकी पत्नी उलूका (उल्का) इनके विनोद नामक पुत्र हुआ। दूसरा (कुलंकर) रमण नामक उसका लघु भ्राता हुआ। वह (रमण) विद्याध्ययन की इच्छा से देशान्तर में जाकर विद्या का पारगामी (अतिशय विद्वान्) हुआ। तत्पश्चात् वह देशान्तर से वापिस आकर रात्रि में अपने नगर के पास किसी यक्ष मन्दिर में ठहर गया। इसी समय विनोद की पत्नी समिधा, नारायणदत्त जार में आसक्त होकर संकेत के अनुसार वहाँ आई और उससे वार्तालाप करती हुई स्थित हो गई। उसके पीछे उसका पति विनोद भी वहाँ आया। उसने 'यही जार है' ऐसा समझ करके अपने भाई को मार डाला। पश्चात् वह उसे (पत्नी को) घर लाया। पत्नी ने उसे (विनोद को) भी मार डाला। तत्पश्चात् वे दोनों (विनोद और रमण) चारों गतियों में

परिभ्रमण करते हुए भैंसा हुए, पुनः भील {भालू} हुए जो अग्नि में जलकर मरण को प्राप्त हुए। फिर वे भील (भालू) तत्पश्चात् हरिण हुए। उनकी माता को भील ने मार डाला था, परन्तु इन दोनों को वह जीवित ही पकड़कर घर ले गया था। उसने इन दोनों का पोषण करके वृद्धिंगत किया। एक समय स्वयंभूति राजा विमलनाथ जिनेन्द्र की वन्दना करके वापिस आ रहा था। उसने इन्हें देखा और तब वह भील को धन देकर उन्हें अपने घर ले आया। उसने उन्हें देवालयार्चन के निकट बाँध दिया। वहाँ भूतपूर्व रमण का जीव हिरण शान्तचित्त होकर मरण को प्राप्त हुआ और स्वर्ग में गया। दूसरा (विनोद का जीव) तिर्यंचगति में परिभ्रमण करके पल्लव देश के अन्तर्गत काम्पिल्य नगर में धनदत्त नाम का वैश्य हुआ। इसकी पत्नी का नाम धारिणी (वारूणी) था। इन दोनों के वह (रमण का जीव देव) आकर भूषण नामक पुत्र हुआ। उसके पिता ने- जो कि अठारह करोड़ द्रव्य का स्वामी था- उसे मुनिदर्शन और तपश्चरण के आदेश के भय से सर्वतोभद्र माट पर स्थापित किया। वह कुमार के समान वहाँ स्थित रहा। किसी समय उसने श्रीधर भट्टारक के केवलज्ञान की पूजा के निमित्त जाते हुए देवों को देखा। इससे उसे जातिस्मरण हो गया। वह गुप्तरूप से निकलकर समवसरण को जा रहा था कि थककर बीच में बैठ गया। उसके शरीर की सुगन्धि में आसक्त हाकर एक सर्प वहाँ आया और उसने उसे काट लिया। वह मरकर माहेन्द्र स्वर्ग में गया। उसका पिता धनदत्त तिर्यंचगति रूप समुद्र में प्रविष्ट हुआ।

तत्पश्चात् माहेन्द्र स्वर्ग से आकर वह पुष्करार्ध द्वीप के भीतर चन्द्रादित्यपुर के अधिपति प्रकाशयश और उसकी पत्नी माधवी के जगद्द्युति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर वह सत्पात्रदान के प्रभाव से देवकुरु (उत्तम भोगभूमि में) और तत्पश्चात् स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्युत होकर जम्बूद्वीप के अपरविदेहगत नन्द्यावर्तपुर के अधीश्वर सकल चक्रवर्ती अचलवाहन और रानी हरिणी के अभिराम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह चार हजार (4000) स्त्रियों का स्वामी होकर भी विरक्त रहा। उसे तपश्चरण के लिए पिता ने रोक दिया था, इसीलिए वह घर में रहकर ही दुर्धर अणुव्रत का परिपालन करता हुआ ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव हुआ। वह धनदत्त का जीव परिभ्रमण करके पोदनपुर में वैश्य अग्निमुख

और शकुना के मृदुमति नामक पुत्र हुआ। उसने सात व्यसनों में आसक्त होकर कुछ पढ़ा नहीं था। लोगों के उलाहनों से संतप्त होकर पिता ने उसे घर से निकाल दिया। तब देशान्तर में जाकर उसने विद्याध्ययन किया। अब वह युवा हो गया था। वह पथिक के वेश में आकर घर के भीतर प्रविष्ट हुआ। उसकी माँ उसे पानी पिलाते हुए रो पड़ी। उसने उसके रोने का कारण पूछा उत्तर में उसने कहा कि तुम्हारे समान मेरा एक पुत्र देशान्तर में गया है। 'वह मैं ही हूँ' इस प्रकार कहकर जब उसने बात का विश्वास करा दिया तब पिता ने उसे बत्तीस करोड़ द्रव्य का स्वामी बना दिया। उस द्रव्य को वसन्तरमणा और अमररमणा नाम की दो वेश्याओं ने खा डाला। तत्पश्चात् वह चोरी करने में प्रवृत्त हो गया। किसी एक दिन वह शशांकपुर में जाकर राजभवन के शयन-गृह में प्रविष्ट हुआ। उसी दिन उक्त पुर का स्वामी नन्दिवर्धन राजा शशांकमुख भट्टारक के पास में धर्म को सुनकर विषय-भोगों से विरक्त होता हुआ रात्रि में रानी को समझा रहा था कि मैं कल प्रातःकाल में जिन-दीक्षा को ग्रहण करूँगा, तुम्हें इसके लिए दुखी नहीं होना चाहिए। इसको सुनकर मृदुमति भी विरक्त होकर दीक्षित हो गया। वह बारहवें वर्ष में एकाकी विहार में संलग्न हुआ।

इस बीच में यहाँ एक दूसरी घटना घटित हुई जो इस प्रकार है- आलोक नगर में बाह्य पर्वत के ऊपर गुणसागर भट्टारक चातुर्मासिक प्रतिमायोग से स्थित थे। प्रतिज्ञा (चातुर्मास) की समाप्ति होने पर देवों के आने से नगर में आश्चर्य हुआ। गुणसागर मुनीन्द्र आकाश-मार्ग से विहार कर गये थे। इसलिए वे लोगों के देखने में नहीं आये। इसी समय वहाँ मृदुमति आहार के निमित्त आये। उनको देखकर लोगों ने (यह समझकर कि ये वे ही मुनीन्द्र हैं) उनकी पूजा की। वे भी मौनपूर्वक स्थित रहे। इससे वे तिर्यग्गति नामकर्म को उपार्जित करके ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव हुए। वहाँ परस्पर मिलकर उन दोनों में स्नेह उत्पन्न हुआ। वहाँ से आकर अभिराम का जीव भरत और दूसरा (मृदुमति) हाथी हुआ है। इस प्रकार हाथी के जातिस्मरण के कारण को सुनकर आश्चर्य को प्राप्त हुए भरत को बहुत वैराग्य हुआ। उसने रामचन्द्रादि से क्षमा-याचना करके दीक्षा ले ली। कैकेयी भी तीन सौ राजपुत्रियों के साथ पृथ्वीमती

आर्यिका के निकट में दीक्षित हो गई। हाथी ने भी विशिष्ट श्रावकधर्म को ग्रहण किया। वह देश में परिभ्रमण करता हुआ प्रासुक आहार और जल को लेता था। इस प्रकार से वह दुर्धर अनुष्ठान को करके ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में गया। उस देश में रहने वाले मनुष्य 'यह देव है, इसके माहात्म्य से इस देश में रोगादि नहीं उत्पन्न हुए हैं' ऐसा मानकर उसकी मूर्ति बनाकर पूजा में तत्पर हो गये। वह विनायक (गणेश) हुआ। भरत भट्टारक संयम के प्रभाव से चारण आदि अनेक ऋद्धियों से सम्पन्न होते हुए केवलज्ञान को उत्पन्न करके मुक्ति को प्राप्त हुए। इस प्रकार भूषण ने जब जिनपूजा में मन लगाकर इस प्रकार के विभव को प्राप्त किया तब जिनभगवान् की पूजा करने वाले श्रावक का क्या पूछना है? वह तो महाविभव को प्राप्त करेगा ही।।5।।

6. धनदत्तगोपाल कथा

गोपो विवेकविकलो मलिनोऽशुचिश्च राजा बभूव सुगुणः करकण्डुनामा।
दृष्ट्वा जिनं भवहरं स सरोजकेन नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि॥6॥

वह विवेक से रहित ग्वाला मलिन और अपवित्र होकर भी कमल पुष्प के द्वारा संसार के नाशक जिन भगवान् की पूजा करके उत्तम गुणों से युक्त करकण्डु नामक राजा हुआ है। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ।।6।।

6. गौतम स्वामी ने इस कथा को जिस प्रकार राजा श्रेणिक के लिए कहा था उसी प्रकार आचार्यपरम्परा से आई हुई उसको यहाँ मैं संक्षेप से कहता हूँ। इसी आर्यखण्ड के भीतर कुन्तल देश में स्थित तेरपुर में नील और महानील नामक दो राजा थे। वहाँ वसुमित्र नाम का एक सेठ था। उसकी पत्नी का नाम वसुमती था। उसके धनदत्त नाम का एक ग्वाला था। एक समय उस ग्वाले ने वन में घूमते हुए तालाब में सहस्रदल कमल को देखकर उसे ले लिया। तब नागकन्या ने प्रगट होकर उससे कहा कि जो सबसे अधिक सर्वश्रेष्ठ हो उसके लिए यह कमल देना। तत्पश्चात् उसने कमल के साथ घर आकर इस वृत्तान्त को

सेठ से कहा। सेठ ने उस वृत्तान्त को राजा से कहा। तब राजा ने सेठ और ग्वाले के साथ सहस्रकूट जिनालयों में जाकर जिन भगवान् की पूजा की और तत्पश्चात् सुगुप्त मुनिराज की वंदना की। तत्पश्चात् राजा ने मुनिराज से पूछा कि हे साधो! लोक में सर्वश्रेष्ठ कौन है? मुनिराज ने कहा कि सर्वश्रेष्ठ जिन हैं। इसे सुनकर ग्वाले ने जिन भगवान् के आगे स्थित होकर 'हे सर्वोत्कृष्ट! इस कमल को ग्रहण कीजिए' ऐसा निवेदन करते हुए उसे जिन भगवान् के ऊपर रख दिया और वहाँ से वापिस चला गया।

यहाँ दूसरा एक वृत्तान्त घटित हुआ। वह इस प्रकार है- श्रावस्तीपुरी में एक सागरदत्त नामक सेठ था। इसकी पत्नी का नाम नागदत्ता था। वह सोमशर्मा नामक ब्राह्मण से अनुराग रखती थी। इस बात को ज्ञात करके सेठ ने जिनदीक्षा ले ली। वह मरकर स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से आकर वह चम्पापुरी में राजा वसुपाल के वसुमती रानी से दन्तिवाहन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार से वह वसुपाल राजा तब तक सुखपूर्वक स्थित है तब तक कलिंग देश के भीतर स्थित दन्तिपुर के राजा बलवाहन ने नर्मदातिलक नामक जिस हाथी को पकड़कर उपर्युक्त वसुपाल राजा के लिए भेंट किया था वह नागदत्ता का जार (उपपति) सोमशर्मा ब्राह्मण था, जो मर करके परिभ्रमण करता हुआ उस कलिंग देश के अन्तर्गत दन्तिपुर के गहन वन में इस हाथी की पर्याय में उत्पन्न हुआ था। वह हाथी वसुपाल राजा के यहाँ स्थित था। वह नागदत्ता मर करके संसार में परिभ्रमण करती हुई ताम्रलित नगरी में वैश्य वसुदत्त की पत्नी नागदत्ता हुई। उसके धनवती और धनश्री नाम की दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुई। उनमें धनवती का विवाह नागालन्दपुर वासी वैश्य धनदत्त और उसकी पत्नी धनमित्रा के पुत्र धनपाल के साथ सम्पन्न हुआ तथा दूसरी धनश्री का विवाह वत्स देश के अन्तर्गत कौशाम्बीपुर के निवासी वसुपाल और वसुमती के पुत्र सेठ वसुमित्र के साथ सम्पन्न हुआ था। उसके संसर्ग से वह (धनश्री) जैन धर्म का पालन करने वाली हो गई। नागदत्ता पुत्री के मोह से धनश्री के पास गई। धनश्री उसे मुनिराज के समीप ले गई। वहाँ उसने उसको अणुव्रत ग्रहण करा दिये। तत्पश्चात् वह बड़ी पुत्री के पास गई। उसने (बड़ी पुत्री

ने) उसे बौद्धभक्त बना दिया। छोटी पुत्री ने उसे तीन बार अणुव्रत ग्रहण कराये, परन्तु धनवती ने उन्हें नष्ट करा दिया। चौथी बार वह अणुव्रतों में दृढ़ होती हुई कालान्तर में मरण को प्राप्त होकर कौशाम्बी नगरी के स्वामी वसुपाल और रानी वसुमती की पुत्री हुई। उसे कुदिन में (अशुभ मुहूर्त में) उत्पन्न हुई जानकर अपने नाम की मुद्रिका आदि के साथ पेटी में रक्खा और यमुना के प्रवाह में बहा दिया था। वह गंगा के प्रवाह में बहकर पद्मद्रह में जा गिरी। उसे देखकर कुसुमपुर में रहने वाला कुसुमदत्त नामक माली अपने घर पर ले आया और अपनी पत्नी कुसुम माला को सौंप दिया। वह चूँकि पद्मद्रह में प्राप्त हुई थी अतएव कुसुम माला ने उसका पद्मावती नाम रखकर वृद्धिंगत किया। वह कुछ समय में युवती हो गई। किसी मनुष्य ने दन्तिवाहन राजा से उसके रूप की चर्चा की। राजा ने वहाँ जाकर उसके सुन्दर रूप को देखा। उसने माली से पूछा कि यह पुत्री किसकी है, सत्य बतलाओ। माली ने राजा के सामने वह पेटी रख दी। उसने पेटी में स्थित नामांकित मुद्रिका आदि को देखकर और इससे उसके जन्मविषयक वृत्तान्त को जानकर उसके साथ विवाह कर लिया। वह उसे अपने नगर में ले आया। उक्त पद्मावती राजा को अतिशय प्यारी हुई। कुछ समय बीतने पर दन्तिवाहन का पिता अपने शिर पर श्वेत बाल को देखकर विरक्त हो गया। उसने दन्तिवाहन को राज्य देकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह मरकर तप के प्रभाव से स्वर्ग में जाकर देव हुआ।

पद्मावती चतुर्थ स्थान, के पश्चात् अपने पति के साथ सोयी थी। उसने स्वप्न में सिंह, हाथी और सूर्य को देखा। तत्पश्चात् उसने इन स्वप्नों के सम्बन्ध में राजा से निवेदन किया। राजा ने कहा- देवि! तेरे सिंह के देखने से प्रतापी, हाथी के अवलोकन से क्षत्रियों में मुख्य और सूर्य के दर्शन से प्रजाजनों रूपी कमलों को प्रफुल्लित करने वाला पुत्र होगा। इसको सुनकर पद्मावती सन्तुष्ट होकर सुखपूर्वक स्थित हुई। इधर तेरपुर में वह धनदत्त ग्वाला तैरने के लिए काई सहित तालाब के भीतर प्रविष्ट हुआ। वह काई से वेष्टित होकर मृत्यु को प्राप्त होता हुआ पद्मावती के गर्भ में आकर स्थित हुआ। ग्वाला के मरण को जानकर वसुमित्र सेठ ने उसके मृत शरीर का दाह-संस्कार किया। तत्पश्चात् वह

सुगुप्त मुनिराज के पास में दीक्षित होकर तप के प्रभाव से स्वर्ग को प्राप्त हुआ। उधर पद्मावती को यह दोहल (सातवें मास में होनी वाली इच्छा) उत्पन्न हुआ कि जब आकाश मेघों से व्याप्त हो, बिजली चमक रही हो, तथा वृष्टि भी हो रही हो; ऐसे समय मैं स्वयं अंकुश को ग्रहण करके पुरूष के वेष में हाथी के ऊपर चढूँ और पीछे राजा को बैठाकर दोनों नगर के बाहर भ्रमण करें। उसने इस दोहले की सूचना राजा को की। तब राजा ने अपने मित्र वायुवेग विद्याधर के द्वारा मेघसमूह आदि की रचना करायी। तत्पश्चात् नर्मदा तिलक हाथी को सुसज्जित करके उसके ऊपर रानी और स्वयं राजा भी (दोनों) चढ़कर सेवक जन के साथ नगर के बाहर निकले। वह हाथी अंकुश की परवाह न करके वायुवेग से शीघ्र गमन में उद्यत हुआ। इस कारण सब सेवक जन पीछे रह गये। राजा महावन में एक वृक्ष की शाखा को पकड़कर स्थित रह गया। तत्पश्चात् वह नगर में आकर 'हा! पद्मावती, तेरा क्या हुआ होगा' इस प्रकार पश्चाताप करने लगा। तब विद्वानों ने उसे सम्बोधित किया।

इधर वह हाथी अनेक देशों को लाँघकर दक्षिण की ओर गया और थककर किसी महा सरोवर के भीतर प्रविष्ट हुआ। उस समय जलदेवता ने पद्मावती को हाथी के ऊपर से उतारकर तालाब के किनारे पर बैठाया। इस अवसर पर वहाँ एक भट नामक माली आया। उसने रोती हुई देखकर उससे कहा कि हे बहिन! आ, मेरे घर पर चल। ऐसा कहने पर पद्मावती ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उसने कहा कि मैं माली हूँ। तत्पश्चात् उसने उसे हस्तिनापुर के भीतर अपने घर में 'यह मेरी बहिन है' ऐसा कहकर स्थापित किया। तत्पश्चात् माली के कहीं बाहर जाने पर उसकी पत्नी मारिदत्त ने उसे घर से निकाल दिया। तब उसने वहाँ से निकलकर और श्मशान में जाकर पुत्र को उत्पन्न किया। उस समय किसी चाण्डाल ने आकर उसे प्रणाम किया और कहा कि 'तुम मेरी स्वामिनी हो।' पद्मावती ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उत्तर में उसने कहा कि मैं इसी विजयार्ध पर्वत के ऊपर दक्षिण श्रेणि में स्थित विद्युत्प्रभपुर के स्वामी विद्युत्प्रभ और विद्युल्लेखा का बालदेव नामक पुत्र हूँ। मैं अपनी पत्नी कनकमाला के साथ दक्षिण में क्रीड़ा करने के लिए जा रहा था। मेरा विमान रामगिरि पर्वत के ऊपर स्थित

वीर भट्टारक के ऊपर से नहीं जा सका। इससे क्रोधित होकर मैंने उक्त वीर भट्टारक के ऊपर उपसर्ग किया। पद्मावती देवी ने उसको दूर करके मेरी विद्याओं को नष्ट कर दिया। तत्पश्चात् मैंने प्रणाम करके उसे शान्त किया। उससे मैंने प्रार्थना की, कि हे देवि! कृपा कर मेरी विद्याओं को मुझे वापिस कर दीजिए। इस पर उसने कहा कि जा, हस्तिनापुर के श्मशान में तू जिस बालक को देखेगा उसके राज्य में तेरी विद्याएँ तुझे सिद्ध हो जावेंगी। वहीं मैं बालदेव, विद्याधर चाण्डाल के वेष में इसकी रक्षा करता हुआ यहाँ पर स्थित हूँ। उसके यह कहने पर पद्मावती ने सन्तुष्ट होकर 'इसको तुम वृद्धिंगत करो' कहकर उस बालक को उसे दे दिया। तत्पश्चात् उसने उसे अपनी पत्नी कांचनमाला (कनकमाला) को दे दिया। वह बालक चूँकि दोनों हाथों में कण्डु (खाज) से संयुक्त था, अतएव उसका करकण्डु नाम रखकर वह भी उसके परिपालन में संलग्न हो गई। उधर पद्मावती गान्धारी नाम की जो ब्रह्मचारिणी थी उसके आश्रय में चली गई। पश्चात् उसने उक्त ब्रह्मचारिणी के साथ जाकर समाधिगुप्त मुनि से दीक्षा की प्रार्थना की। तब मुनिराज बोले- अभी दीक्षा का समय नहीं आया है। तुमने जो तीन बार व्रत को खण्डित किया है उसके फल से तुम्हें तीन बार दुःख हुआ। व्रतभंग से उत्पन्न पाप के उपशान्त होने पर, पुत्र के राज्य को देखकर उसके साथ तेरा तप होगा। इसको सुनकर पद्मावती को बहुत सन्तोष हुआ। तब वह पुत्र को देखकर ब्रह्मचारिणी के समीप में स्थित हो गई। बालदेव ने उस बालक को समस्त कलाओं में निपुण कर दिया।

इधर वह विद्याधर और करकण्डु ये दोनों श्मशाम में ही स्थित थे कि वहाँ जयभद्र और वीरभद्र नामक दो आचार्य उपस्थित हुए। वहाँ किसी मनुष्य के कपाल में एक मुख में से और दो दोनों नेत्रों में से इस प्रकार तीन बाँस उत्पन्न हुए थे। इनको देखकर किसी मुनिराज ने आचार्य से पूछा कि हे नाथ! यह कौन-सा कौतुक है। आचार्य बोले कि यहाँ जो मनुष्य राजा होगा उसके ये तीन बाँस अंकुश, छत्र और ध्वजा के दण्ड होंगे। इन मुनि वचन को सुनकर किसी ब्राह्मण ने उन्हें उखाड़ लिया। उस ब्राह्मण से उन्हें करकण्डु ने ले लिया।

कुछ दिनों में वहाँ बलवाहन नामक राजा की मृत्यु हुई। वह पुत्र

से रहित था। इसलिए परिवार ने राजा के अन्वेषणार्थ विधिपूर्वक हाथी को छोड़ा। उसने करकण्डु का अभिषेक करके उसे अपने सिर पर स्थापित किया। तब परिवार ने उसे राजा बनाया। उस समय बालदेव की वे नष्ट विद्याएँ सिद्ध हो गईं। अब बालदेव ने उसको नमस्कार करके उसकी माता को समर्पित कर दिया और वह विजयार्ध पर चला गया। करकण्डु शत्रुओं को नष्ट करके निष्कण्टक राज्य करने लगा। उसके प्रताप को सुनकर दन्तिवाहन ने उसके पास अपने दूत को भेजा। उसने जाकर करकण्डु से निवेदन किया कि आप हमारे स्वामी दन्तिवाहन के सेवक होकर राज्य करें। इसे सुनकर करकण्डु ने क्रोधित होकर दूत से कहा कि जाओं, युद्ध में जो कुछ होना होगा सो होगा; ऐसा कहकर उसने उस दूत को वापिस कर दिया। साथ वह स्वयं प्रस्थान करके चम्पापुर के बाहर पड़ाव डालकर ठहर गया। इधर दन्तिवाहन राजा भी अतिशय कौतूहल के साथ समस्त सेना से सुसज्जित होकर नगर के बाहर निकल पड़ा। दोनों ओर की सेनाएँ तैयार होकर व्यूह और प्रतिव्यूह के क्रम से स्थित हो गई। इसी समय पद्मावती ने जाकर अपने पति से वस्तुस्थिति का निरूपण किया। तब पिता (दन्तिवाहन) हाथी से नीचे उतरकर पुत्र (करकण्डु) के सामने आया और उधर पुत्र भी पिता के सामने आया। दोनों में एक दूसरे को देखकर पुत्र ने पिता को प्रणाम किया और पिता ने उसको आशीर्वाद दिया। फिर करकण्डु विश्व को आश्चर्यचकित करने वाली विभूति से संयुक्त होकर माता-पिता के साथ पुर में प्रविष्ट हुआ। पश्चात् पिता ने उसका आठ हजार कन्याओं के साथ विवाह कराया। फिर दन्तिवाहन उसे राज्य देकर पद्मावती के साथ भोगों का अनुभव करने लगा।

इधर करकण्डु खूब राज्य करने लगा तब मन्त्रियों ने उससे कहा कि हे देव! आपको चेरम, पाण्ड्य और चोल देशों को अपने अधीन करना चाहिए। तब वह उनके ऊपर आक्रमण करने के विचार से गया और तेरपुर में ठहर गया। वहाँ से उसने उपर्युक्त राजाओं के पास दूत को भेजा। उस दूत ने जाकर वापिस आने पर जब उक्त राजाओं की उद्धतता का निरूपण किया तब करकण्डु को बहुत क्रोध आया। इसीलिए वह वहाँ जाकर युद्धभूमि में स्थित हो गया। वे राजा भी मिल करके आये और घोर युद्ध करने लगे। सूर्यास्त होने पर दोनों ओर की सेना अपने स्थान

में ठहर गई। दूसरे दिन भी अतिशय भयानक युद्ध के होने पर अपनी सेना के दबाव को देखकर करकण्डु ने क्रुद्ध होकर महान् युद्ध किया और उन तीनों राजाओं को बाँध लिया। फिर उसने उनके मुकुट पर पैर रखते हुए जब जिनप्रतिमाओं को देखा तब {तस्स मिच्छा मे दुक्कडं} अर्थात् उसका मेरा यह दोष मिथ्या हो, यह कहकर उसने आत्मनिन्दा करते हुए उनसे पूछा कि आप जैन हैं क्या? उत्तर में जब उन्होंने यह कहा कि हाँ हम लोग जैन हैं तब उसने कहा हा! हा! मैं बहुत निकृष्ट हूँ, मैंने जैनों के ऊपर उपसर्ग किया है, इस प्रकार पश्चाताप करते हुए उसने उनसे क्षमा याचना की। तत्पश्चात् स्वदेश को वापिस आता हुआ वह तेरपुर के समीप में पड़ाव डालकर ठहर गया। उस समय वहाँ धारा और शिव नामक दो भील आये जिन्हें द्वारपाल भीतर ले गये। उन्होंने राजा से निवेदन किया कि हे देव! यहाँ से दक्षिण दिशा में तीन कोस के ऊपर स्थित पर्वत के ऊपर धाराशिव नाम का नगर है और सहस्रस्तम्भ जिनालय है। उक्त पर्वत के शिखर पर एक सर्प की बाँबी है। वहाँ एक श्वेत हाथी सूँड़ में जल और कमल को लेकर आता है व तीन प्रदक्षिणा करता है। फिर वह से जल से अभिषेक करके कमल-पुष्प से पूजा करता हुआ प्रणाम करता है। यह सुनकर करकण्डुने उन दोनों भीलों को पारितोषिक दिया। तत्पश्चात् उसने वहाँ जाकर जिन भगवान् की पूजा करके बाँबी की पूजा करते हुए उस हाथी को देखा। उसने उक्त बाँवी को खुदवाया। उसके भीतर स्थित पेटी को तोड़कर उसमें स्थित रत्नमय पार्श्वनाथ जिनेन्द्र की प्रतिमा का दर्शन करके वह बहुत हर्षित हुआ। उस लयन (पर्वतस्थ पाषाणमय गृह) में उसने उक्त मूर्ति को अर्गल देव के नाम से स्थापित किया। मूल प्रतिमा के आगे गाँठ को देखकर उसने यह विचार करते हुए कि वह यहाँ विकृत दिखती है, शिल्पी को उसे तोड़ डालने के लिए कहा। शिल्पी ने कहा कि यह जल की नाली है, इसके तोड़ने से जल का प्रवाह निकलेगा। परन्तु यह सुनकर भी करकण्डु ने तुड़वा दिया। तत्पश्चात् उससे जल का प्रवाह निकल पड़ा। राजा आदि को उक्त-प्रवाह से निकलने में सन्देह हुआ। तब राजा दो प्रकार के संन्यास को धारण करके कुशासन पर स्थित हो गया।

तब वहाँ नागकुमार देव प्रकट होकर इस प्रकार कहने लगा-

'काल के प्रभाव से इस रत्नमयी प्रतिमा की रक्षा नहीं की जा सकती है', इसलिए मैंने इस लयन को जल से परिपूर्ण किया। अतएव आप को इस जल के नष्ट करने का आग्रह नहीं करना चाहिए। इस प्रकार कहकर नागकुमार ने राजा को बहुत आग्रह के साथ उस कुशासन के ऊपर से उठाया। तत्पश्चात् उसने नागकुमार से पूछा कि इस लयन को किसने बनवाया है तथा बाँवी में प्रतिमा को किसने स्थापित किया है? नागकुमार बोला- इसी विजयार्ध पर्वत के ऊपर उत्तर श्रेणि में नभस्तिलक नाम का नगर है। वहाँ के राजा अमितवेग और सुवेग इस आर्यखण्ड में जिनालय की वन्दना करने के लिए आये थे। उन्होंने मलयगिरि के ऊपर रावण के द्वारा बनवाये गये जिन-भवनों को देखा। तब उन दोनों ने उक्त जिन-भवनों की वन्दना करके वहाँ परिक्षमण करते हुए पार्श्वनाथ की प्रतिमा को देखा। वे उक्त प्रतिमा को पेटी में रखकर और उसे साथ में लेकर इस पर्वत के ऊपर आये। यहाँ उस पेटी को रखकर वे कहीं दूसरे स्थान पर गये। वापिस आकर जब उन्होंने उसे उठाया तो वह पेटी नहीं उठी। तब उन्होंने तेरपुर में जाकर अवधिज्ञानी मुनि से पेटी के न उठने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि यह पेटी लयन के ऊपर लीन होने को कहती है। यह सुवेग अपध्यान से मरकर हाथी होगा और फिर जब करकण्डु उस पेटी को तुड़वावेगा। तब वह हाथी संन्यास पूर्वक मरण को प्राप्त होकर स्वर्ग में पहुँचेगा। इस प्रकार प्रतिमा की स्थिरता को जानकर पुनः मुनिराज से पूछा कि इस लयन को किसने निर्मित कराया है। उत्तर में मुनिराज बोले- विजयार्ध की दक्षिण श्रेणि में रथनूपुर नाम का नगर है। वहाँ नील और महानील राजा राज्य करते थे। शत्रुओं ने युद्ध में उनकी समस्त विद्याओं को नष्ट कर दिया था। तब निःशेष होकर उन्होंने इस लयन का निर्माण कराया था। तत्पश्चात् वे अपनी उन विद्याओं को फिर से प्राप्त करके विजयार्ध वापिस चले गये और पश्चात् वे दीक्षित होकर तप के प्रभाव से स्वर्ग में पहुँचे। मुनिराज के द्वारा प्ररूपित इस वृत्तान्त को सुनकर वे दोनों (अमितवेग और सुवेग) दीक्षित हो गये। उनमें बड़ा (अमितवेग) ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में गया और दूसरा (सुवेग) आर्त्तध्यान से मरकर हाथी हुआ। वह उक्त देव से संबोधित होकर जातिस्मरण को प्राप्त हुआ। तब उसने सम्यक्त्व के

साथ व्रतों को ग्रहण कर लिया और फिर वह उसकी पूजा करने में संलग्न हो गया। जब कोई इसको खोदे तब तुम शक्ति के अनुसार सन्यास को ग्रहण कर लेना। इस प्रकार समझा करके उपर्युक्त देव स्वर्ग में वापिस चला गया। तदनुसार तुम्हारे द्वारा उसके खोदे जाने पर उक्त हाथी ने संन्यास ग्रहण कर लिया है। तुम पूर्व में यहीं पर ग्वाला थे जो जिन-पूजा के प्रभाव से राजा हुए हो। इस प्रकार संबोधित करके वह नागकुमार नागवाटिका को चला गया।

तीसरे दिन करकण्डु राजा ने जाकर उस हाथी को धर्मश्रवण कराया। इससे वह हाथी निर्मल परिणामों से मरकर सहस्रार स्वर्ग में गया। करकण्डु ने अपने, अपनी माता के और अर्गल देव के नाम से तीन लयन (पर्वतवर्ती पाषाणगृह) बनवाकर उनकी प्रतिष्ठा करायी। फिर उसने वहीं पर अपने पुत्र वसुपाल को राज्य देकर चेरम आदि राजाओं के साथ अपने पिता के समीप में दीक्षा धारण कर ली। उसके साथ ही पद्मावती ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। करकण्डु ने विशेष तपश्चरण किया। आयु के अन्त में वह संन्यासपूर्वक मरण को प्राप्त होकर सहस्रार स्वर्ग में गया। दन्तिवाहन आदि भी अपने-अपने पुण्य के अनुसार स्वर्गलोक को गये। इस प्रकार जिनपूजा के प्रभाव से जब ग्वाला भी इस प्रकार की विभूति से संयुक्त हुआ है तब दूसरा विवेकी जीव क्या न होगा? वह तो मोक्षसुख को भी प्राप्त कर सकता है।।6।।

7. वज्रदन्त चक्रवर्ती कथा

नानाविभूतिकलितो व्रतवर्जितोऽपि चक्री सकृज्जिनपतिं परिपूज्य भक्त्या।
संजातवानधिबोधयुतो धरित्र्यां नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि॥7॥

जो चक्रवर्ती अनेक प्रकार की विभूति से सहित और व्रतों से रहित था वह भक्तिपूर्वक एक बार ही जिनेन्द्र देव की पूजा करके पृथ्वी पर अवधिज्ञान से संयुक्त हुआ। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ।।7।।

7. इसकी कथा- जम्बूद्वीप के भीतर पूर्वविदेह में पुष्कलावती

देश है। उसके अन्तर्गत पुण्डारीकिणी पुरी में यशोधर नामक तीर्थंकरकुमार राजा थे। किसी वैराग्य के निमित्त को पाकर उन्हें संसार व भोगों से विरक्ति हो गई। तब उन्होंने वज्रदन्त नामक पुत्र को राज्य देकर स्वयं दीक्षा धारण कर ली। उस समय देवों ने उनके दीक्षाकल्याण का महोत्सव किया। एक दिन राजा वज्रदन्त सभाभवन (दरबार) में विराजमान था। तब वहाँ अपने हाथों में वस्त्रयुक्त ध्वजा को लेकर दो पुरूष उपस्थित हुए। उनमें से एक ने राजा से प्रार्थना की कि हे देव! आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ है। दूसरे ने निवेदन किया कि 'यशोधर भट्टारक के केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है।' यह सुनकर राजा वज्रदन्त उन दोनों को पारितोषिक देकर समस्त जनों के साथ समवसरण में गया। जब उसने जिन भगवान् के शरीर की कान्ति को देखकर उनकी पूजा की तब परिणामों में अतिशय निर्मलता होने से उसके जो पुण्य उत्पन्न हुआ उससे उसी समय उसे अवधिज्ञान की प्राप्ति हुई। तत्पश्चात् वह छह खण्डों को जीतकर सुखपूर्वक राज्य करने लगा। यह कथा आदिपुराण में प्रसिद्ध ही है।।7।।

8. श्रेणिक राजा कथा

संबद्धसप्तधरानिजजीवितोऽपि श्रीश्रेणिकः स च विधाय समर्च्य पुण्यम्।
वीरं जिनं जगति तीर्थंकरत्वमुच्चै र्नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि॥8॥

जिस श्रेणिक राजा ने पूर्व में सातवें नरक की आयु का बन्ध कर लिया था उसने पीछे श्री वीर जिनेन्द्र की पूजा करके लोक में अतिशय पवित्र तीर्थंकर प्रकृति को बाँध लिया है। इसलिए मैं निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की पूजा करता हूँ।।8।।

8. इसी आर्यखण्ड में- मगध देश के भीतर राजगृह नगर है। वहाँ पर राजा उपश्रेणिक राज्य करता था। एक समय उसके लिए म्लेच्छ देश में रहने वाले पूर्व के शत्रु सोमशर्मा राजा ने कपट से मित्रता का भाव प्रकट करते हुए एक दुष्ट घोड़े को भेजा। बाह्य वीथी में गये हुए राजा उपश्रेणिक ने इस बात को नहीं जाना और वह उसके ऊपर सवार हो गया। उक्त घोड़े ने उसे ले जाकर एक भीषण वन में छोड़

दिया। वहाँ भील वस्ती में स्थित यमदण्ड क्षत्रिय, जिसे कि राज्य से भ्रष्ट कर दिया था, उपश्रेणिक को अपने घर पर ले गया। वहाँ उसने यमदण्ड की पत्नी विद्युन्मती से उत्पन्न हुई तिलकावती पुत्री को देखकर उसकी याचना की। यमदण्ड ने कहा कि यदि मेरी पुत्री के पुत्र के लिए तुम राज्य दो तो मैं इसे तुम्हारे लिए दे सकता हूँ। अन्यथा नहीं तब उपश्रेणिक ने इस बात को स्वीकार कर उसके साथ विवाह कर लिया और फिर उसको साथ में लेकर अपने नगर में वापिस आ गया। उसके चिलातीपुत्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसको आदि लेकर उपश्रेणिक के पाँच सौ पुत्र थे। राजा की दूसरी देवी इन्द्राणी थी। उसके अतिशय सुन्दर श्रेणिक नाम का पुत्र था।

एक समय राजा ने एकान्त में किसी ज्योतिषी से पूछा कि मेरे पुत्रों में राजा कौन-सा पुत्र होगा उत्तर में ज्योतिषी ने कहा कि प्रत्येक राजपुत्र के लिए शक्कर का घड़ा देने पर जो उसे दूसरे के ऊपर धरकर सिंह द्वार पर लिवा ले जायेगा, जो मिट्टी के नये घड़े को तृणबिन्दुओं के जल से (ओस-बिन्दुओं से) पूरा भर देगा, जो सब कुमारों की एक पंक्ति में खीर को परोसकर कुत्तों को छोड़ने पर उनके बीच में स्थित रहकर उन्हें रोकता हुए उसे खावेगा, तथा जो नगर के प्रज्ज्वलित होने पर सिंहासन आदि को निकालेगा; वह पुत्र राजा होगा, अन्य नहीं।

एक समय राजभवन के मध्य में शक्कर के घड़ों के देने पर चिलातीपुत्र आदि ने उन्हें स्वयं ले जाकर सिंहद्वार पर स्थित अपने-अपने पुरूषों के लिए समर्पित किया। परन्तु श्रेणिक किसी दूसरे के ऊपर धराकर ले गया और उसे अपने पुरूष के हाथ में दिलाया। एक दिन राजा ने कुमारों को बुलाकर यह कहा कि तृणबिन्दुओं (ओसबिन्दुओं) के जल से भरे हुए एक-एक घड़े को लावो। तब प्रातःकाल में वे कुमार अध्यक्ष (निरीक्षक) के साथ एक-एक घड़ा लेकर ऐसे तृणयुक्त प्रदेश में गये जहाँ कि कोई एक दूसरे को न देख सके। वहाँ वे हाथ से उस जल को लेकर नवीन घड़े में रखने लगे, किन्तु वह उसी समय सूख जाता था। इस प्रकार वे अन्त में सब ही खाली हाथ वापिस आये। परन्तु श्रेणिक ने सघन वस्त्र को घास के ऊपर फैलाकर और फिर जल से परिपूर्ण उस वस्त्र को निचोड़कर उक्त जल से घड़े को भर लिया। पश्चात्

उसने उसको लाकर राजा को दिखलाया। एक समय सब कुमारों को खाने के लिए खीर परोसी गई, साथ ही कुत्तों को भी छोड़ा गया। उन कुत्तों ने भोजन के पात्रों को घेर लिया। तब सब कुमार उन पात्रों को छोड़कर भाग गये। किन्तु श्रेणिक ने उन सब पात्रों का संग्रह करके और उनमें से एक-एक प्रत्येक कुत्ते को देकर अपने पात्र में स्थित खीर का स्वयं उपभोग किया। दूसरे दिन नगर के अग्नि से प्रज्ज्वलित होने पर श्रेणिक ने सिंहासन आदि (छत्र-चामरादि) को बाहर निकाला। इस प्रकार ज्योतिषी के द्वारा निर्दिष्ट वे सब चिन्ह उस श्रेणिक के ही पाये गये। इससे उसको ही राज्य के योग्य जानकर माता-पिता ने गुप्त वेष को धरण करने वाले पाँच लाख सुभटों के साथ अविद्यमान दोष को उसमें विद्यमान बतलाकर-कुछ दोषारोपण करके-उसे देश से निकाल दिया।

वह वहाँ से अकेला निकलकर नन्दिग्राम के भीतर सभामण्डप में प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने अवस्था में अपने से बड़े किसी इन्द्रदत्त नामक वैश्य को देखकर कहा कि 'हे मामा! मेरे साथ ब्राह्मणों के पास आओ।' इस प्रकार उन दोनों ने ब्राह्मणों के पास जाकर उनसे कहा कि हम दोनों राजपुरूष हैं और राजा के कार्य से जाते हुए यहाँ उपस्थित हुए हैं, हम दोनों को भोजन आदि दो। यह सुनकर ब्राह्मणों ने कहा कि यह सर्वमान्य अग्राहार है, इसलिए यहाँ राजपुरूषों को पीने के लिए पानी भी नहीं दिया जाता है, अतएव तुम दोनों यहाँ से चले जाओ। तत्पश्चात् वे भगवान् जठराग्नि (बुद्धगुरू) के मठ में गये। उसने उन्हें भोजन कराया और फिर श्रेणिक को अपना धर्म ग्रहण कराया। तत्पश्चात् दूसरे दिन आगे जाते हुए श्रेणिक ने कहा, 'हे मामा! हम दोनों जिह्वा-रथ पर चढ़कर चलें।' इस पर इन्द्रदत्त ने उसे पागल समझकर कुछ नहीं कहा। इसके आगे श्रेणिक ने नदी पार करते समय जूतों को पहने ही रखा, पानी में भी जूते उतारे नहीं, पुनः आगे चलने पर वृक्ष के नीचे छाया में बैठने पर भी छाते को ताने ही रहा। इसके आगे जाने पर श्रेणिक ने ग्राम को देखकर उससे पूछा कि हे मामा! यह ग्राम परिपूर्ण है अथवा उजड़ा हुआ है, किसी पुरूष को अपनी स्त्री को ताड़ित करते हुए देखकर उसने यह पूछा कि वह बँधी हुई स्त्री को ताड़ित कर रहा है या छूटी हुई को, किसी मरे हुए मनुष्य को देखकर उसने पूछा कि

वह अभी मरा है या पूर्व में मरा है, पके हुए धान के खेत को देखकर उसने पूछा कि इस खेत के स्वामी ने इसके फल को खा लिया है या उसे भविष्य में खावेगा, खेत में हल को चलाते हुए मनुष्य को देखकर उसने पूछा कि हल के कितने फाल हैं, तथा बेरी के वृक्ष को देखकर उसने पूछा कि इसमें कितने काँटे हैं। वैसे कहा भी है-

जिह्वारथ, जूता, छत्री, कुग्राम, स्त्री, मृत मनुष्य, धान, हल का फल और बेरी वृक्ष के काँटे; इनके सम्बन्ध में श्रेणिक कुमार ने मार्ग में इन्द्रदत्त से प्रश्न किये।।1 ।।

इन प्रश्नों के चलते हुए इन्द्रदत्त वेणातडाग नामक अपने गाँव में पहुँच गया। वह उसे गाँव के बाहिर तालाब के किनारे वृक्ष के नीचे बैठाकर अपने घर चला गया। वहाँ उसकी पुत्री नन्दश्री ने प्रणाम करके उससे पूछा कि हे तात! क्या आप अकेले आये हैं? अथवा किसी के साथ में? उत्तर में उसने कहा कि मेरे साथ एक अतिशय सुन्दर पागल युवक आया है। जब पुत्री ने उससे फिर पूछा कि उसका पागलपन कैसा है? तब उसने मार्ग की उपर्युक्त सब घटनाओं को कह सुनाया। उनको सुनकर नन्दश्री ने कहा कि 'वह पागल नहीं है।' वह पागल कैसे नहीं है, इसे सुनिये- उसने अकस्मात् जो आपको मामा कहकर सम्बोधित किया है उससे उसका यह अभिप्राय यह था कि भानजा आदर के योग्य होता है। जिह्वारथ पर चढ़कर चलने से उसका अभिप्राय यह था कि हम परस्पर कुछ कथावार्ता करते हुए चलें, जिससे कि मार्ग में थकावट का अनुभव न हो। जल के भीतर चूँकि काँटे आदि को नहीं देखा जा सकता है अतएव वह जल में से जाते हुए जूतों को पहिन लेता हैं। कौए आदि का विष्ठा ऊपर से न गिरे, इस विचार से वह वृक्ष के नीचे जाकर छाता लगा लेता है। उस गाँव में तुम दोनों ने भोजन किया अथवा नहीं किया? यदि भोजन कर लिया है तो वह गाँव परिपूर्ण है, अन्यथा वह उजड़ा ही है। जिस स्त्री को वह मार रहा था वह यदि उसकी रखेली थी तब तो वह मुक्त स्त्री को मार रहा था, और यदि वह उसकी विवाहिता थी तो वह बद्ध स्त्री को मार रहा था। जो मनुष्य मर गया था वह यदि गुणवान् था तब तो समझना चाहिये कि वह अभी मरा है, परन्तु यदि वह गुणहीन था तो उसे पूर्व में भी मरा हुआ ही समझना

चाहिये। धान्न के खेत को यदि किसान ने कर्ज लेकर किया था तब तो उसका फल खाया जा चुका समझना चाहिये; और यदि उसे कर्ज लेकर नहीं किया गया है तो उसका फल भविष्य में खाया जावेगा, यह समझना चाहिए। यदि उस खेत की फसल का स्वामी वही किसान है (जो खेत जोत रहा था) तब तो हल का एक फाल है, और यदि उस खेत में कोई और साझीदार हैं तो जितने साझीदार हों उतने ही फाल मानना चाहिए। बेरी के दो-दो मिले हुए काँटे होते हैं।

इस प्रकार नन्दश्री ने श्रेणिक के अभिप्राय की व्याख्या करके पिता से पूछा कि वह कहाँ है? उत्तर में इन्द्रदत्त ने कहा कि वह तालाब के किनारे बैठा है। यह सुनकर उसने अपनी निपुणमती नाम की दीर्घ नखवाली दासी को नख में तेल लेकर उसके पास भेजा। दासी ने जाकर उससे पूछा कि इन्द्रदत्त सेठ के साथ तुम आये हो क्या? उत्तर में जब उसने कहा कि 'हाँ' तब निपुणमती ने उससे कहा कि इन्द्रदत्त के एक नन्दश्री नाम की कन्या है, उसने यह तेल भेजकर कहलाया है कि इस तेल को लगाकर और स्नान करके मेरे घर पर आवो। यह सुनकर श्रेणिक ने तेल की ओर देखा। फिर पाँव से एक गड्ढा करके और उसे पानी से भरकर उससे कहा कि तेल को यहाँ रख दो। तदनुसार वह तेल को रखकर जब वापिस जाने लगी तब श्रेणिक ने उससे पूछा कि नन्दश्री का घर कहाँ पर है? उत्तर में वह कानों को दिखलाकर वापिस चली गई। तब श्रेणिक ने स्नान किया और फिर उस तेल को लगाते हुए बालों आदि को स्निग्ध करके वह नगर में जा पहुँचा। वहाँ वह ताड़ वृक्ष से सुशोभित घर को देखकर उसके भीतर चला गया। इस बीच में नन्दश्री ने वहाँ कीचड़ कराकर उसके ऊपर छोटे-छोटे पत्थरों को डलवा दिया था। वह उनको देखकर कीचड़ के भीतर प्रविष्ट हुआ। इससे उसके पाँवों में बहुत-सा कीचड़ लग गया था। वह उसी अवस्था में आंगन में जाकर बैठ गया। नन्दश्री ने पाँव धोने के लिए बहुत ही थोड़ा जल रखकर उससे कहा कि 'पाँवों को धोकर भीतर आओ।' उस जल को देखकर श्रेणिक को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने बांस के चीरन को लेकर पहिले उससे कीचड़ को दूर किया, फिर जल से पाँवों को गीला करके बचे हुए थोड़े से जल को वापिस दे दिया। तत्पश्चात् नन्दश्री अतिशय

अनुरक्त होकर उसे भीतर ले गई और उससे अपने अभ्यागत होने को कहा। उत्तर में उसने कहा कि 'मैं आज दूसरे के अन्न को न खाऊँगा। मेरे हाथ में बत्तीस चावल स्थित हैं।' उनसे यदि कोई अठारह भोज्य आदि पदार्थों से संयुक्त भोजन देता है तो मैं उसे खाऊँगा, अन्यथा नहीं। इस पर नन्दश्री ने उन चावलों को ले लिया और उनके आटे से पुए बनाये। उनको निपुणमती ने ले जाकर बेच दिया। जुआरी राज पुरुषों ने पुओं के बहाने से उसे बहुत-सा धन दिया। इस धन से नन्दश्री ने श्रेणिक को उसके कहे अनुसार अठारह भोज्य पदार्थों से संयुक्त भोजन करा दिया। तत्पश्चात् उसने उसे पान खाने के लिए छोटा पान और बहुत चूना तथा कत्था के साथ सुपाड़ी के टुकड़ों को दिया। तब वह कषाय ले रस को थूकते हुए उन्हें चबाने लगा। साथ ही उसने चूना के चूर्ण से अनुपम चित्र बनाया। जब पान के योग्य सुपाड़ी शेष रही तब उसने ताम्बूलपत्र को खाया। पश्चात् नन्दश्री ने अतिशय हर्षित होकर अनेक स्थान में कुटिल छेदयुक्त प्रबाल (मूँगा) और धागे को उसके सामने रक्खा। तब श्रेणिक ने धागे के अग्रभाग में गुड़ को लपेटकर जितना जा सका उतना उसे प्रवाल के छेद में डाल दिया। पश्चात् उसे चीटियों के स्थान में रख दिया। वहाँ चीटियों ने उस धागे को खींचकर उसके दूसरी ओर पहुँचा दिया। बस फिर क्या था? श्रेणिक ने धागे से संयुक्त प्रवाल मणि नन्दश्री के लिए दे दिया।

तत्पश्चात् नन्दश्री ने श्रेणिक के ऊपर अत्यन्त आसक्त होकर उसके साथ शीघ्र ही विवाह कर देने के लिए, पिता से कहा। तब श्रेणिक ने उसके पिता की प्रार्थना से तथा स्वयं अनुरागयुक्त होने से नन्दश्री के साथ विवाह कर लिया। फिर वह वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा। कुछ दिनों में नन्दश्री के गर्भ रह गया। उस समय उसे सात दिन जीवहिंसा न करने की घोषणारूप दोहल उत्पन्न हुआ। उक्त दोहल की पूर्ति न हो सकने से उसका शरीर उत्तरोत्तर कृश होने लगा। तब श्रेणिक किसी प्रकार से उसके दोहल को ज्ञात करके चिन्तातुर हुआ। वह व्याकुल होकर वेन्ना (कृष्णवेणा) नदी के किनारे जाकर स्थित था। इसी समय उस पुर के राजा वसुपाल का हाथी खम्भे को उखाड़ कर राजा आदि को लाँघता हुआ वहाँ जा पहुँचा। श्रेणिक ने उसे वश में कर लिया। वह उसके ऊपर

चढ़कर नगर में प्रविष्ट हुआ। वहाँ पहुँचकर उसने हाथी को बाँध दिया। इससे राजा को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने श्रेणिक से अभीष्ट वर की याचना करने के लिए कहा किन्तु अभिमानी व अहंकारी श्रेणिक ने कुछ भी याचना नहीं की। तब इन्द्रदत्त ने कहा कि हे राजन्! इसकी इच्छा है कि नगर में सात दिन तक अभय की घोषणा की जाय। उसे स्वीकार करके वैसी घोषणा करा दीजिए। राजा ने इसे स्वीकार करके नगर में सात दिन तक अभय की घोषणा करा दी। पश्चात् नन्दश्री के अभयकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रेणिक ने उसे अक्षरादि विद्याओं में शिक्षित किया। इस प्रकार श्रेणिक वहाँ सुख से स्थित था।

उधर राजगृह में उपश्रेणिक राजा चिलातीपुत्र को राज्य देकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह चिलातीपुत्र अन्याय मार्ग में प्रवृत्त हो गया। तब मंत्रियों ने श्रेणिक के पास विज्ञप्ति पत्र भेजकर उससे राज्य कार्य के निमित्त शीघ्र आने की प्रार्थना की। इस वृत्तान्त को श्रेणिक ने अपने ससुर से कहा। फिर वह 'आप अपनी पुत्री (नन्दश्री) और पुत्र (अभयकुमार) के साथ हमारे यहाँ पीछे आवें' इस प्रकार ससुर से कहकर जब राजगृह जाने के लिए उत्सुक हुआ तब वे गुप्त पाँच लाख सुभट प्रगट हो गये। इस प्रकार वह इन सुभटों और ससुर के द्वारा दिये गये सेवकों के साथ कुछ दिनों में राजगृह नगर में जा पहुँचा। उसके आगमन को जानकर चिलातीपुत्र भागकर दुर्ग के आश्रित हुआ। तब श्रेणिक राजा हो गया। राज्य के स्थिर हो जाने पर जब श्रेणिक ने नन्दिग्राम को ग्रहण करने के लिए सेवकों को भेजा, तब मन्त्रियों के पूछने पर उसने कहा, कि उस एक गाँव को मुझे नष्ट करना है, उसके ऊपर मेरी शत्रुता है। इस पर मन्त्रियों ने कहा कि जब उसे नष्ट ही करना है तो कुछ दोषारोपण करके नष्ट करना चाहिए। तब श्रेणिक ने वहाँ एक मेढ़े को भेजकर यह सूचना करायी कि इसे इसकी रूचि के अनुसार घास दिया जाय। परन्तु यदि वह दुर्बल अथवा पुष्ट हुआ तो मैं आप लोगों को नष्ट कर दूँगा। इस प्रकार राजाज्ञा को पाकर नन्दिग्राम के ब्राह्मण दुःखी हुए। इसी समय वहाँ परिवार के साथ इन्द्रदत्त आ पहुँचा। उपर्युक्त राजाज्ञा के वृत्तान्त को जानकर अभयकुमार ने उन ब्राह्मणों को धैर्य दिलाया, उसने उक्त मेढ़े को दो व्याघ्रों के बीच में

बाँध दिया। यदि वह पुष्ट होता दिखता तो उन व्याघ्रों को उसके कुछ समीप कर दिया जाता था और यदि वह दुर्बल होता दिखता तो उक्त व्याघ्रों को कुछ दूर कर दिया जाता था। इस प्रकार कुछ दिनों तक उसके शरीर का प्रमाण उतना ही दिखलाया गया। इससे वे ब्राह्मण अभयकुमार के चरणों में गिर गये। उन सबने अभयकुमार से प्रार्थना की कि जब तक हम लोगों का उपद्रव दूर नहीं होता है तब तक आप यहीं रहें अभयकुमार ने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरी बार राजा ने ब्राह्मणों को कर्पूरवापी के लाने की आज्ञा दी। तब अभयकुमार के उपदेश से राजा के समीपवर्ती किसी मनुष्य से यह वृत्तान्त कहकर उससे श्रेणिक के सोने के समय को बतला देने के लिए कहा। गाँव में जितने बैल और भैंसा थे उनकी युगग्रीवाओं की माला बनाकर वे ब्राह्मण वहाँ गये और राजप्रासाद के बाहर स्थित हो गये। पश्चात् वे राजा के सोने के समय में वादित्रों के शब्दों के साथ राजप्रासाद के भीतर प्रविष्ट हुए। उन लोगों ने राजा से निवेदन किया कि हे देव! हम लोग कर्पूरवापी को ले आये हैं। इसे सुनकर राजा ने नींद की अवस्था में कहा कि उसको वहीं पर छोड़ दो। यह सुनकर वे बैलों को लेकर वापिस चले गये। फिर जब राजा ने उनसे पूछा तो उन लोगों ने कह दिया कि आपकी आज्ञानुसार हमने उसको वहीं छोड़ दिया हैं। तीसरी बार श्रेणिक ने एक हाथी को पहुँचाकर उसके शरीर का प्रमाण (वजन) बतलाने की आज्ञा दी तब अभयकुमार ने तालाब में एक नाव को रखकर उसके भीतर हाथी को प्रविष्ट कराया और पश्चात् उसे निकाल लिया। हाथी के साथ उस नाव को गहरे पानी में ले जाकर उसका जितना अंश पानी में डूबा उसको चिन्हित कर दिया। फिर नाव में से उस हाथी को नीचे उतारकर उसमें पत्थरों को रक्खा। उपर्युक्त चिन्हित प्रमाण निर्दिष्ट करा दिया। चौथी बार श्रेणिक ने एक हाथ प्रमाण खैर की सारभूत लकड़ी को भेजकर उसके नीचे और ऊपर के भागों को बतलाने की आज्ञा दी। तब उसको पानी में डालकर उन दोनों भागों को ज्ञात किया और श्रेणिक को बतला दिया। पाँचवी बार उसने तिलों को भेजकर यह आज्ञा दी कि जिस किसी मान से तिलों को करके उस मान के प्रमाण ही तेल दो। तब दर्पण तल के प्रमाण तिलों को लेकर तत्प्रमाण तेल समर्पित कर दिया गया। छठी बार ब्राह्मणों

को यह आज्ञा दी गई कि द्विपद (मनुष्य), चतुष्पद (गाय-भैंस आदि) और नारियल के दूध को छोड़कर भोजन के योग्य दूध को लाओ। इस आज्ञा की पूर्ति के लिए दूध के ग्रहण के समय धान के कणों को पेरकर और उसे घड़े के भीतर रखकर वह दूध श्रेणिक के पास भेज दिया गया। सातवीं बार उन्हें यह आदेश दिया गया कि हमारे आगे एक ही मुर्गे को लड़ाओ। तब उस मुर्गे को दर्पण दिखलाते हुए उस के प्रतिबिम्ब के साथ ही लड़ाकर, उक्त आदेश की पूर्ति कर दी गई। आठवीं बार जब उन्हें बालु के वेष्टन को लाने की आज्ञा दी गई तब वे बालु को लेकर राजा के पास गये और उससे कहा कि हे देव! आप अपने भाण्डागार में स्थित बालू के वेष्टन को दिखलाइए, जिससे कि हम उसके बराबर इसे तैयार कर दें। यह सुनकर जब राजा ने कहा कि हमारे भाण्डागार में वह नहीं है तब उन ब्राह्मणों ने कहा कि 'तो फिर वह कहीं भी सम्भव नहीं है,' यह कहकर वे वापिस चले गये। नवमी बार राजा श्रेणिक ने उन्हें यह आज्ञा दी कि घड़े में रखकर कुम्हड़ा को लाओ। तब उन्होंने एक छोटे-से कुम्हड़ के फल को घड़े के भीतर रखकर वृद्धिंगत किया और फिर उसे राजा को समर्पित कर दिया।

इसके पश्चात् राजा ने प्रत्युपाय देने वाले (उक्त समस्याओं के हल करने का उपाय बताने वाले) मनुष्य को ज्ञात करने के लिए चतुर पुरूषों को नन्दिग्राम भेजा। उस समय अभयकुमार गाँव के बाहर एक जामुन के वृक्ष पर चढ़ा हुआ था। उसने उनको आते हुए देखकर सब बालकों से कहा कि 'इनके साथ कोई वार्तालाप न करें,' इस प्रकार कहकर, उसने समस्त बालकों को उनसे बातचीत करने से रोक दिया। तत्पश्चात् राजा के द्वारा भेजे हुए वे चतुर पुरूष वहाँ आकर उक्त जामुन वृक्ष के नीचे बैठ गये। वहाँ उन्होंने अभयकुमार से कहा कि हमारे लिए कुछ जामुन के फल दो। इस पर अभयकुमार ने उनसे पूछा कि गरम फल दिये जाय या शीतल। उत्तर में उन्होंने गरम फल देने के लिए कहा। तब अभयकुमार ने पके हुए फलों को लेकर और उन्हें कुछ हाथ से मसलकर बालू के मध्य में (फैंका) रक्खा, उन फलों को पाकर जब वे उनके ऊपर की धूल को फूँकने लगे तब उन्हें ऐसा करते हुए देखकर अभयकुमार ने कहा कि दूर से फूंको, अन्यथा दाढ़ियां जल जावेंगी।

इससे लज्जित होकर उन्होंने उससे शीतल फलों की याचना की। तत्पश्चात् वापिस जाकर उन लोगों ने यह सब वृत्तान्त राजा से कह दिया। उसे सुनकर राजा ने दूसरे दिन उन्हें यह आदेश दिया कि नन्दिग्राम के बालक मार्ग, कुमार्ग और गाड़ी आदि सवारी तथा दिन-रात्रि को छोड़कर यहाँ उपस्थित हों। तब अभयकुमार आदि ने गाड़ी आदि के अक्षों में सीकों को बाँधकर और उनके भीतर प्रविष्ट होकर सन्ध्या के समय में राजा के दर्शन किये। वही कहा है-

मेढ़ा, वापी, हाथी, लकड़ी का टुकड़ा, तेल, दूध, मुर्गा, बालुवेष्टन, घड़े में स्थित कुम्हड़ा का फल और दिन व रात को छोड़कर बालकों का आगमन; इतने प्रश्नों का समाधान करके राजा की आज्ञा के पालन करने का आदेश नन्दिग्राम के उन ब्राह्मणों को दिया गया था।।2।।

तत्पश्चात् पिता और पुत्र का मिलाप हो जाने से अभयकुमार के द्वारा उस नन्दिग्राम को अभयदान दिलाया गया। पश्चात् राजा ने नन्दश्री को महादेवी का और अभयकुमार को युवराज का पट्ट बाँधा। वह जठराग्नि को राजगुरु बनाकर बौद्ध धर्म का प्रचार करता हुआ सुखपूर्वक राज्य करने लगा।

यहाँ दूसरा एक कथानक है जो इस प्रकार है- यहाँ एक समुद्रदत्त नाम का एक धनी सेठ था। उसके दो स्त्रियाँ थीं- वसुदत्त और वसुमित्रा। छोटी पत्नी के एक पुत्र था। उसको वे दोनों ही खिलातीं और स्तनपान कराती थीं। सेठ के मर जाने पर दोनों में पुत्रविषयक विवाद उत्पन्न हुआ- वसुदत्ता कहती कि पुत्र मेरा है और वसुमित्रा कहती कि नहीं, वह पुत्र मेरा है। राजा भी इस विवाद को नष्ट नहीं कर सका। अभयकुमार ने भी अनेक प्रकार से इस रहस्य को जानने का प्रयत्न किया, किन्तु जब वह भी यथार्थ बात को नहीं जान सका तब उसने बालक को पृथ्वी पर रखकर एक छुरी उठायी और उसे बालक के ऊपर रखकर उन दोनों से कहा कि मैं इस बालक के बीच में से बराबर के दो टुकड़े करता हूँ तथा एक-एक दोनों को दे दिया जायेगा। इतना सूनते ही बालक यथार्थ की माँ ने (की जननी ने) कहा कि हे देव! ऐसा न करके बालक को इसे ही दे दें। मैं उसको देखकर ही सुखी रहूँगी। इससे अभयकुमार ने बालक की यथार्थ माता को जानकर पुत्र को उसके लिए दे दिया।

किसी समय अयोध्या नगर में एक बलभद्र नामका किसान रहता था। एक समय उसकी भद्रा नाम की सुन्दर स्त्री को देखकर बलभद्र के वेष में उसके घर के भीतर ब्रह्मराक्षस प्रविष्ट हुआ। तब भद्रा ने गति से भंग से जानकर घर का (या शयनागार का) द्वार बन्द कर लिया। इतने में दूसरा (बलभद्र) भी आ गया। तब कुटुम्बीजन को आश्चर्य हुआ, क्योंकि संकेत आदि को वे दोनों ही बतलाते थे। इस रहस्य को कोई भी नहीं जान पा रहा था तब वे दोनों अभयकुमार के पास सभा के मध्य में आये वह भी दृष्टि, स्वर और गति के भेद से उनमें भेद नहीं कर सका। तब उसने उन दोनों को ही घर के भीतर करके द्वार बन्द कर दिया और कहा कि जो कुंचिका (चाबी) के छेद से बाहर निकलता है वह घर का स्वामी समझा जावेगा। तब ब्रह्मराक्षस उस कुंचिका के छेद से बाहर निकल आया। परन्तु दूसरा (बलभद्र) नहीं निकल सका। इसलिए अभयकुमार ने भद्रा को बलभद्र के लिए (जो छेद में से नहीं निकल सका था, उसके लिए) समर्पित कर दिया। इस प्रकार से अभयकुमार प्रसिद्ध हो गया।

यहाँ दूसरी एक कथा है- अयोध्यापुरी में एक भरत नाम का चित्रकार था। उसने देवी पद्मावती की उपासना करते हुए उससे ऐसे वर की याचना की कि 'मैं जिस रूप का विचार कर लेखनी को पट के ऊपर धरूँ वह रूप स्वयं हो जावे।' इस वर को पाकर वह अनेक देशों में अपनी विद्या को प्रकाशित करता हुआ सिन्धुदेशस्थ वैशाली नगर में पहुँचा। वहाँ का राजा चेटक था। उसकी पत्नी का नाम सुभद्रा था। इनके ये सात पुत्रियाँ थीं- प्रियकारिणी, मृगावती, जयावती, सुप्रभा, ज्येष्ठा, चेलिनी और चन्दना। भरत चित्रकार ने वहाँ लेखनी का अवलम्बन लेकर इस विद्या में राजा के समक्ष सब चित्रकारों को जीत लिया। तब राजा ने उसे वृत्ति (आजीविका) दी। उसने, उससे कन्याओं के रूपों को लिखाकर उन्हें द्वार के ऊपर लटकवा दिया। उनको देखकर प्रजाजन ने नमस्कार पूर्वक उन्हें स्वयं लिखाकर अपने-अपने द्वारा के ऊपर टँगवा दिया। इस प्रकार वे सात मातृका (माताएँ या देवीयाँ) प्रसिद्ध हो गई थीं। उनमें चार कन्याओं का विवाह हो चुका था। शेष तीन कन्याएँ माट (घर) में स्थित थीं- कुँवारी थी। वहाँ उक्त चित्रकार ने मन में चेलिनी के निर्वस्त्र (नग्न) रूप का विचारकर पट पर अपनी लेखनी

को रक्खा। तब तद्नुसार जैसा उसका रूप था पट पर अंकित हो गया। यहाँ तक कि उसके गुप्त अंग पर जो तिल था वह चित्रपट में अंकित हो गया था। उसे देखकर राजा को यह विचार हुआ कि इसने कन्या के शील को नष्ट किया है। अतएव उसको चित्रकार के ऊपर अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ। किसी ने जाकर भरत चित्रकार से यह कह दिया कि तुम्हारे ऊपर राजा रूष्ट हो गया है। इससे वह वहाँ से भाग गया।

उसने वहाँ से राजगृह में जाकर वह रूप राजा श्रेणिक को दिखलाया। उस रूप को देखकर, श्रेणिक को उसके प्राप्त करने की चिन्ता उत्पन्न हुई। श्रेणिक विचार करने लगा कि वह (राजा चेटक) जैन को छोड़कर दूसरे के लिए अपनी कन्या नहीं दे सकता है। उधर युद्ध में उसको जीतना अशक्य है। तब पितृभक्त अभयकुमार ने पिता को धैर्य दिलाया और वह स्वयं व्यापारियों के संघ का स्वामी बनकर वैशाली जा पहुँचा। वहाँ जाकर वह चेटक महाराज से मिलकर और उनसे सम्भाषण करके उनका अतिशय प्रेमपात्र बन गया। उसने चेटक से राजभवन के पास ठहरने के लिए स्थान देने की प्रार्थना की। तदनुसार स्थान प्राप्त करके वहाँ रहता हुआ वह जैनत्व गुण से अतिशय प्रसिद्ध हो गया। उसने चेटक राजा की अविवाहित तीन कन्याओं के समक्ष श्रेणिक के रूप की खूब प्रशंसा की। श्रेणिक के विषय में अनुरक्त होकर उन कन्याओं ने उससे श्रेणिक के पास ले चलने की प्रार्थना की। इसके लिए अभयकुमार ने वहाँ अपने निवास स्थान से लगाकर एक सुरंग बनवायी। अभयकुमार जब इस सुरंग से उन तीनों को ले जा रहा था तब चन्दना बोली कि 'मैं मुँदरी भूल आयी हूँ' और ज्येष्ठा बोली कि 'मैं हार को भूल आयी हूँ।' इस प्रकार वे दोनों वापिस हो गईं। तब अभयकुमार चेलिनी के साथ वहाँ से निकल पड़ा और कुछ ही दिनों में वैशाली से राजगृह आ गया। श्रेणिक ने चेलिनी को आधे मार्ग से महा विभूति के साथ नगर में प्रविष्ट कराया और शुभ मुहूर्त में उसके साथ विवाह करके उसे पटरानी बना दिया।

वह उसके साथ भोगों का अनुभव करता हुआ उसे अपने धर्म के विषय में कहने लगा। तो भी उसने जिनधर्म को नहीं छोड़ा एक दिन जठराग्नि ने आकर उससे कहा कि हे देवी! क्षपणक (दिगम्बर) मर करके स्वर्गलोक में क्षपणक (दरिद्र) ही होते हैं। यह सुनकर चेलिनी ने उससे

कहा कि यह तुमने कैसे जाना है? उत्तर में उसने कहा कि मुझे विष्णु ने बुद्धि दी है, उससे मैं यह सब जानता हूँ। यह सुनकर चेलनी बोली कि यदि ऐसा है तो आप कल मेरे घर पर आकर भोजन करें। उसने इसे स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन चेलिनी ने उन सबको बुलाकर महल के भीतर बैठाया। तत्पश्चात् उसने उनमें से हर एक का एक-एक जूता लेकर उसके अतिशय सूक्ष्म भाग किये और उनको भोजन में मिलाकर उन सभी को खिला दिया। भोजन करके जब वे वापिस जाने लगे तब उन्हें अपना एक-एक जूता नहीं दिखा। इसके लिए उन्होंने चेलिनी से पूछा। उत्तर में चेलिनी ने कहा कि 'ज्ञान से जानकर उन्हें खोज लीजिए।' इस पर उन लोगों ने कहा कि 'हमको वैसा ज्ञान नहीं है।' वह सुनकर चेलिनी बोली कि तो फिर दिगम्बर साधुओं की परलोकवार्ता कैसे जानते हो? इसके उत्तर में साधुओं ने कहा कि हम नहीं जानते हैं, हमारे जूतों को दिलवा दो। तब चेलिनी ने कहा उनको तो आप लोगों ने ही खा लिया है, मैं उन्हें कहाँ से दिला सकती हूँ? इस पर उनमें से एक साधु ने वमन कर दिया। उसमें सचमुच में चमड़े के टुकड़ों को देखकर लज्जित होते हुए वे अपने स्थान पर चले गये।

दूसरे दिन किसी समय राजा ने चेलिनी से कहा कि हे देवी! जब मेरे गुरू ध्यान का आश्रय लेते हैं तब वे अपने को विष्णु भवन में ले जाकर वहाँ सुखपूर्वक रहते हैं। यह सुनकर चेलिनी ने कहा कि तो फिर आप नगर के बाहर मण्डप में मुझे उनका ध्यान दिखलाइए। इससे मैं आप के धर्म को स्वीकार कर लूँगी। तत्पश्चात् वे सब गुरू उस मण्डप के भीतर वायु का निरोध करके बैठ गये। श्रेणिक ने यह सब चेलिनी को दिखला दिया। तब चेलिनी ने उन्हें देखकर सखी के द्वारा मण्डप में आग लगवा दी। अग्नि के प्रदीप्त होने पर वे सब वहाँ से भाग गये। इससे क्रोधित होकर राजा ने उससे कहा कि यदि तुम्हारी उनमें भक्ति नहीं थी तो क्या उनके मारने का प्रयत्न करना तुम्हें योग्य था। उत्तर में चेलिनी ने श्रेणिक से कहा कि हे देव! एक कथानक को सुनिए- वत्स देश के भीतर कौशाम्बी नगरी में वसुपाल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम यशस्विनी था। इसी नगरी में एक सागरदत्त नाम का सेठ रहता था, इसकी पत्नी का नाम वसुमती

था। वहीं पर दूसरा एक समुद्रदत्त नाम का भी सेठ था उसकी पत्नी का नाम सागरदत्ता था। इन दोनों ने परस्पर के स्नेह को स्थिर रखने के लिए ऐसा वाग्-निश्चय किया कि हम दोनों के जो पुत्र और पुत्री हो उनका परस्पर विवाह कर दिया जाय। इसे उन दोनों ने स्वीकार कर लिया। पश्चात् सागरदत्त और वसुमती के वसुमित्र नाम का सर्प पुत्र उत्पन्न हुआ तथा अन्य (समुद्रदत्त और सागरदत्ता) दोनों के नागदत्ता नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। तब पूर्व प्रतिज्ञानुसार समुद्रदत्ता ने नागदत्ता और वसुमित्र का परस्पर में विवाह कर दिया। एक समय नागदत्ता पुत्री को यौवनवती देखकर उसकी माता (सागरदत्ता) 'मेरी पुत्री को कैसा वर मिला है' यह सोचकर रो पड़ी। तब नागदत्ता ने उससे पूछा कि हे माँ! तू क्यों रोती है। उसने उत्तर दिया कि 'मैं तेरे पति को देखकर रोती हूँ। यह सुन पुत्री ने कहा कि मेरा स्वामी दिन में सर्प होकर पिटारे में रहता है और रात में दिव्य पुरुष के रूप में मेरे साथ भोगों को भोगता है।' यह सुनकर सागरदत्ता बोली कि 'तो फिर जब तेरा पति उस पिटारे में से निकले तब तू उस पिटारे को मेरे हाथ में दे देना।' तदनुसार पुत्री ने वह पिटारा माँ को दे दिया। तब सागरदत्ता ने उसे अग्नि में जला दिया। इससे अब वह (वसुमित्र) दिन-रात पुरुष के ही स्वरूप में रहने लगा। इसी प्रकार हे स्वामिन्! ये आपके गुरु भी शरीर के जल जाने पर उसी विष्णु भवन में रहेंगे, ऐसा विचारकर मैंने भी यह कार्य किया है। यह चेलिनी का उत्तर सुनकर राजा के मन में अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ। परन्तु उसे चुप रहना पड़ा।

किसी दूसरे समय राजा श्रेणिक शिकार के लिए जा रहा था। मार्ग में उसे आतापनयोग में स्थित यशोधर मुनि दिखायी दिये। उन्हें देखकर उसने उनके ऊपर कुत्तों को छोड़ दिया। वे कुत्ते प्रणाम करके मुनिराज के पास में स्थित हो गये। उन्हें इस प्रकार स्थित देखकर श्रेणिक ने मुनिराज के गले में मरा हुआ सर्प डाल दिया। इस समय राजा श्रेणिक ने इस कृत्य से नरक की सातवीं पृथ्वी की आयु का बन्ध कर लिया। इस वृत्तान्त को श्रेणिक ने चौथे दिन रात्रि में चेलिनी से कहा। तब चेलिनी ने श्रेणिक से कहा कि आपने इस कुकृत्य को करके अपने को दुर्गति में डाल दिया है। इस पर श्रेणिक ने कहा कि

क्या वे उसे (सर्प को) अलग करके नहीं जा सकते हैं? चेलिनी ने उत्तर दिया कि महामुनि ऐसा नहीं किया करते हैं। अच्छा चलो, हम दोनों इसी समय वहाँ जाकर देखें। तब वे दोनों अनेक दीपकों को लेकर बहुत-से सेवकों के साथ वहाँ गये। उन्होंने वहाँ मुनिराज को उसी अवस्था में स्थित देखा। तब उन दोनों ने मुनिराज के शरीर को गरम जल से धोया और फिर पूजा करके उनके चरणों की आराधना करते हुए वहाँ बैठ गये। जब प्रातःकाल में सूर्य का उदय हुआ तब चेलिनी ने मुनिराज की प्रदक्षिणा करके कहा कि 'हे संसार रूप समुद्र से पार उतारने वाले साधो! अब उपसर्ग नष्ट हो चुका है, हाथों को उठाकर आसन ग्रहण कीजिए।' तब मुनिराज महाराज दोनों हाथों को उठाकर बैठ गये। फिर दोनों ने मुनिराज को प्रणाम किया और उन्होंने उन दोनों को 'धर्मवृद्धिरस्तु' कहकर आशीर्वाद दिया। यह देखकर श्रेणिक ने विचार किया कि मुनिराज की क्षमा अद्वितीय व आश्चर्यजनक है, और अपने शिर को काटकर इनके चरणों की पूजा करूँ, ऐसा उसने मन में विचार किया। तत्पश्चात् मुनिराज बोले कि हे राजन्! तुमने अयोग्य विचार किया है। राजा ने पूछा कि कैसा विचार? उत्तर में मुनिराज ने कहा कि तुमने अपने शिर को काटने का विचार किया है। तब श्रेणिक ने फिर से पूछा कि आपने यह कैसे जाना है? इस पर चेलिनी ने राजा से कहा कि इसमें आपको कौन-सा कौतुक दिखता है? अपने अतीत भवों को पूछिए। तब राजा ने मुनीन्द्र से प्रार्थना की कि 'हे प्रभो! मैं पूर्व जन्म में कौन था? यह कहिए।' उत्तर में मुनिराज इस प्रकार बोले-

इसी आर्यखण्ड में सूरकान्त देश के भीतर प्रत्यन्त (सूरपुर) पुर में मित्र नाम का राजा राज्य करता था। उसके सुमित्र नाम का एक पुत्र था। राजा मित्र के मन्त्री के भी एक पुत्र था। उसका नाम सुषेण था। इसको राजकुमार सुमित्र जलक्रीड़ा के समय बड़े स्नेह से बावड़ी में डुबाता था, परन्तु इससे उसको बहुत संक्लेश होता था। कुछ समय के पश्चात् सुमित्र राजा हो गया। उसके भय से सुषेण तपस्वी हो गया। एक समय सभा-भवन में स्थित सुमित्र ने सुषेण को न देखकर किसी से पूछा कि सुषेण कहाँ है? पश्चात् उससे सुषेण के वृत्तान्त को जानकर वह वहाँ गया और सुषेण के पैरों को पकड़कर उससे तप का त्याग करने

को कहा। परन्तु उसने किसी भी प्रकार से तप को नहीं छोड़ा। तब उसने उससे अपने घर पर ही भिक्षा लेने की प्रार्थना की। इसे उसने स्वीकार कर लिया। तदनुसार वह एक मास के उपवास को समाप्त करके पारणा के लिए सुमित्र के घर पर आया। परन्तु कार्यान्तर में व्यग्र होने से राजा उसे नहीं देख सका। इसी प्रकार दूसरी और तीसरी पारणा के समय भी उसे आहार नहीं प्राप्त हुआ। इससे वह अशक्त होकर वापिस जा रहा था। उसको देखकर किसी ने कहा कि 'देखो राजा कैसा निकृष्ट है। वह स्वयं भी इसके लिए भोजन नहीं देता है और दूसरे दाताओं को भी रोकता है।' इस प्रकार से तो वह उसकी मृत्यु का कारण बन रहा है। इसे सुनकर साधु को अतिशय क्रोध उत्पन्न हुआ, तब वह विमूढ़ होकर कुछ भी नहीं सोच सका। इसी क्रोधावेश में उसका पाँव एक पत्थर से टकरा गया। इससे वह गिरकर मर गया और व्यन्तर देव उत्पन्न हुआ। राजा को जब उसके मरने का समाचार ज्ञात हुआ तब वह तापस हो गया। वह भी आयु के अन्त में मरकर व्यन्तरदेव हुआ। फिर वहाँ से च्युत होकर तुम हुए हो। सुषेण का जीव व्यन्तर से च्युत होकर इस चेलिनी के कुणिक नाम का पुत्र होगा। इस प्रकार से मुनि के द्वारा प्ररूपित अपने पूर्व भव के वृत्तान्त को जानकर श्रेणिक को जाति-स्मरण हो गया। वह कह उठा कि 'जिन ही यथार्थ देव हैं, दिगम्बर ही यथार्थ गुरू हैं, और अहिंसा रूप धर्म ही सच्चा धर्म है।' इस प्रकार से वह उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया। तत्पश्चात् वह अन्तर्मुहूर्त में मिथ्यात्व को प्राप्त होकर सुखपूर्वक स्थित हुआ।

किसी समय तीन मुनि आहार के निमित्त चेलिनी के घर पर आये। तब राजा ने चेलिनी से कहा कि हे देवी! मुनियों का प्रतिग्रह (पडिगाहन) करो। तत्पश्चात् वे दोनों जाकर मुनियों के सम्मुख गये। उनसे चेलिनी ने कहा कि हे तीन गुप्तियों के परिपालक मुनीन्द्र! ठहरिए। ऐसा कहने पर वे तीनों वापिस उद्यान में चले गये। तब राजा ने चेलिनी से पूछा कि हे देवी! वे ठहरे क्यों नहीं? इस पर चेलिनी ने उत्तर दिया कि चलों वहाँ जाकर उन्हीं से पूछें। तब वे दोनों वहाँ गये। वन्दना करने के पश्चात् राजा श्रेणिक ने धर्मघोष मुनिराज से उसके विषय में प्रश्न किया। उत्तर में मुनिराज बोले कि हमारे मनोगुप्ति नहीं थी। वह इस

प्रकार से- कलिंग देश के अन्तर्गत दन्तिपुर में धर्मघोष नाम का राजा (मैं) राज्य करता था। रानी का नाम लक्ष्मीमती था। वह किसी निमित्त से दिगम्बर मुनि होकर आहार के लिए कौशाम्बी पुरी में गया। वहाँ उसका पड़िगाहन राजमन्त्री गरूड़ की पत्नी ने किया। आहार के समय हाथ में से पृथ्वी पर गिरे हुए ग्रास की ओर दृष्टिपात करते हुए उसने गरूड़ की पत्नी के अँगूठे को देखा। उसे देखकर उसको 'यह लक्ष्मीमती के अँगूठे के समान है' इस प्रकार अपनी पत्नी का स्मरण हो आया। इससे उसने (मैंने) अन्तराय किया। वे हम लोग विहार करते हुए यहाँ आये हैं। तुम्हारी पत्नी ने 'तीन गुप्तियों के परिपालक' कहकर हमारा पड़िगाहन किया था। परन्तु उस समय हमारी मनोगुप्ति नष्ट हो चुकी थी। इस कारण से हम वहाँ नहीं रुके। इस वृत्तान्त को सुनकर राजा श्रेणिक को बहुत आश्चर्य हुआ।

तत्पश्चात् श्रेणिक ने जिनपाल मुनिराज से पूछा कि आप क्यों नहीं रुके? वे बोले- भूमि तिलक नगर में प्रजापाल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम धारिणी था। इन दोनों के एक वसुकान्ता नाम की पुत्री थी, जिसे कौशाम्बी के राजा चण्डप्रद्योतन ने माँगा था। परन्तु प्रजापाल ने उसे पुत्री को नहीं दिया। तब चण्डप्रद्योतन ने आकर उसके नगर को घेर लिया। उस समय दुर्ग से लगे हुए वन में जिनपाल मुनिराज ध्यान में स्थित थे। प्रजापाल राजा वनपाल से इस शुभ समाचार को जानकर आनन्दपूर्वक उनकी वन्दना के लिए गया। वन्दना के पश्चात् किसी ने कहा कि हे साधो! राजा के लिए अभयदान दीजिए। तब उसके पुण्य के प्रभाव से किसी देवता ने कहा कि भयभीत मत हो। तत्पश्चात् वह विभूति के साथ पुर में प्रविष्ट हुआ। इससे चण्डप्रद्योतन उसे जिनभक्त जानकर वापिस चला गया। तब प्रजापाल ने उसके वापिस हो जाने का कारण ज्ञात करने के लिए उसके पास अपने विशिष्ट पुरूषों को भेजा। उनसे चण्डप्रद्योतन ने कहा कि मैं जैन के साथ युद्ध नहीं करता हूँ, इसीलिए वापिस आ गया हूँ। तब प्रजापाल राजा को जैन जानकर उसे भीतर ले गया और फिर उसने उसे अपनी पुत्री दे दी। एक समय चण्डप्रद्योतन ने अपनी पत्नी के समीप में स्थित होकर उससे कहा कि यदि मैंने तुम्हारे पिता को उस समय जैन न जाना

होता तो अनर्थ कर डालता। इस पर पत्नी ने कहा कि मेरे पिता को जिनपालित भट्टारक ने अभयदान दिया था, इसलिए अनर्थ नहीं हो सकता था। तब चण्डप्रद्योतन बोला कि यदि ऐसा है तो चलो उनकी वन्दना करें। इस प्रकार वह पत्नी के साथ उनकी वन्दना करने के लिए गया। वन्दना करने के पश्चात् वह बोला कि जब साधुजन शत्रु और मित्र दोनों में समताभाव धारण करते हैं तब उनको किसी के लिए अभय प्रदान करना और किसी के विनाश की चिन्ता करना उचित है क्या? उसके इस प्रकार पूछने पर वे मौन से स्थित रहे। तब वसुकान्ता ने कहा कि मेरे पिता के पुण्योदय से दिव्य ध्वनि निकली थी, इसमें इनका कोई दोष नहीं है। चलो, इस प्रकार कहकर वह चण्डप्रद्योतन को घर ले गई। फिर वह उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। वे ये हम ही हैं। हे राजन्! उस समय हमारी वचनगुप्ति नष्ट हो चुकी थी, इसीलिए हम आहारार्थ आपके घर नहीं रुके।

तत्पश्चात् राजा श्रेणिक ने हर्षित होकर मणिमाली मुनिराज से पूछा। वे बोले– मणिवत् देश के भीतर मणिवत नगर में मणिमाली नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम गुणमाला और पुत्र का नाम मणिशेखर था। किसी समय रानी गुणमाला राजा के बालों को सवाँर रही थी। तब उसे उनमें एक श्वेत बाल दीख पड़ा। उसे देखकर उसने राजा से कहा कि यम का दूत आ गया है। वह कहाँ है? ऐसा राजा के पूछने पर उसने उसे दिखला दिया। इससे राजा को विरक्ति हुई। तब उसने मणिशेखर को राज्य देकर बहुत से राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। एक समय वह समस्त आगम का ज्ञाता होकर उज्जयिनी के श्मशान में मृतकशय्या पर स्थित था। इतने में वहाँ कोई सिद्ध (मन्त्रसिद्धि) सहित पुरुष वेताल विद्या को सिद्ध करने के लिए मनुष्य की खोपड़ी में दूध और चावलों को लेकर आया। उसे मनुष्य के मस्तकरूप चूल्हे पर खीर पकानी थी। उसने दो चोरों के मस्तकों के साथ मुनिराज के मस्तक को मिलाकर और उसे चूल्हा बनाकर उसके ऊपर उसे पकाना प्रारम्भ कर दिया। इस अवस्था में शिराओं (नसों) के सिकुड़ने से मुनिराज का हाथ मस्तक पर आ पड़ा। इससे वह खोपड़ी नीचे गिर गई और दूध के फैल जाने से आग भी बुझ गई। तब वह

(सिद्ध) पुरुष भाग गया। प्रातःकाल में सूर्य का उदय हो जाने पर किसी मुनि निवेदक ने उस उपसर्ग का समाचार जिनदत्त सेठ से कहा। सेठ ने उन्हें लाकर अपने घर पर रक्खा और औषधी के लिए वैद्य से पूछा। वैद्य ने उत्तर दिया कि सोमशर्मा भट्ट के घर में लक्षमूल तेल है। इससे जला हुआ मनुष्य नीरोगी हो जाता है। तत्पश्चात् जिनदत्त सेठ ने सोमशर्मा के घर जाकर उसकी पत्नी तुंकारी से तेल की याचना की। वह बोली कि ऊपर के खण्ड में उस तेल के घड़े स्थित हैं, उनमें से एक घड़े को ले लो। सेठ उसे लेकर सेवक के हाथ में दे रहा था कि वह नीचे गिरकर फूट गया। तब उसने कहा कि दूसरा ले लो। परन्तु इस प्रकार से वह दूसरा और तीसरा घड़ा भी नष्ट हो गया। तब सेठ को भय उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वह बोली कि 'डरो मत, जब तक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है तब तक उसे ग्रहण करो।' तब जिनदत्त ने एक घड़े को भेजकर उससे पूछा कि 'हे माता! घड़ों के फूट जाने पर तुमने क्रोध क्यों नहीं किया।' उसने उत्तर दिया कि हे सेठ! मैं क्रोध का फल भोग चुकी हूँ। वह इस प्रकार से-

आनन्दपुर में शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम कमलश्री था। उनके आठ पुत्र और भट्टा नाम की एक पुत्री मैं थी। जब कोई मुझे 'तू' कहता तब बड़ा अनिष्ट (अनर्थ) होता। इसीलिए पिता ने नगर में यह घोषणा करा दी कि भट्टा को कोई 'तू' न कहे। इससे मेरा नाम 'तुंकारी' प्रसिद्ध हो गया। क्रोधी स्वभाव होने से मेरे साथ कोई भी विवाह करनें के लिए उद्यत नहीं होता था। इस सोमशर्मा ने 'मैं इसे तू कह करके न बुलाऊँगा' ऐसी व्यवस्था करके मेरे साथ विवाह कर लिया और फिर वह मुझे यहाँ ले आया। पूर्व निश्चय के अनुसार वह मेरे साथ कभी 'तू' का व्यवहार नहीं करता था। एक दिन वह नाटक देखने के लिए गया और बहुत रात बीत जाने पर घर वापिस आया। उसने आकर कहा कि हे प्रिये! द्वार को खोलो। परन्तु क्रोध के वश होकर मैंने द्वार नहीं खोला। इस प्रकार से जब बहुत समय बीत गया तब उसने मुझे 'तू' कहकर बुलाया। बस फिर क्या था, मैं क्रोधित होकर नगर से बाहर निकल गई। तब चोरों ने मेरे आभरणादिकों को छीनकर मुझे एक भीलों के स्वामी को दे दिया। वह मेरे सतीत्व को

नष्ट करने के लिए उद्यत हो गया। तब उसे वनदेवता ने निवारित किया। उसने भी मुझे एक व्यापारी को दे दिया। वह भी मेरे सतीत्व को भ्रष्ट करना चाहता था, परन्तु कर नहीं सका। तब उसने मुझे कृमिरागकम्बल द्वीप में ले जाकर किसी पारसी को बेच दिया। वह प्रत्येक पखवाड़े में मेरी धमनियों को खींचकर वस्त्र रंगने के लिए रुधिर निकालता और लक्षमूल तेल को लगाकर शरीर की पीड़ा को नष्ट किया करता था। इस प्रकार दुःखों को सहन करती हुई मैं वहाँ रह रही थी। कुछ समय पश्चात् मेरा जो धनदेव नाम का भाई था उसे उज्जयिनी के राजा ने वहाँ पारस के राजा के पास भेजा था। उसने राजकार्य को करके जब मुझे यहाँ देखा तब किसी प्रकार उससे छुड़ाकर सोमशर्मा के पास पहुँचा दिया। पश्चात् मैंने जैन मुनिराज के समीप में क्रोध के त्याग का नियम ले लिया। यही कारण है जो अब मैं क्रोध नहीं करती हूँ।

तत्पश्चात् जिनदत्त सेठ ने उस तेल से मुनिराज के घावों को ठीक कर दिया। मुनिराज ने वहाँ पर ही वर्षा योग (चातुर्मास का नियम) को ग्रहण कर लिया। उधर सेठ ने अपने पुत्र कुबेरदत्त के भय से रत्नों से परिपूर्ण एक ताँबे के घड़े को लाकर मुनिराज के आसन के समीप में भूमि के भीतर गाड़ दिया। जिस समय सेठ उक्त घड़े को गाड़कर रख रहा था उस समय उसे कुबेरदत्त ने गर्भगृह के भीतर स्थित रहकर देख लिया था। तत्पश्चात् पुत्र ने मुनिराज के देखते हुए एक दिन उस घड़े को निकालकर दूसरे स्थान में रख दिया। इधर चातुर्मास को समाप्त कर मुनिराज अन्यत्र चले गये। उधर सेठ को जब वह घड़ा वहाँ नहीं दिखा तब उसने मुनिराज को लौटाने के लिए सेवकों को भेजा तथा वह स्वयं भी एक मार्ग से उनके अन्वेषणार्थ गया। उसने उन्हें देखकर लौटाया और एक कथा कहने के लिए कहा। तब मुनिराज बोले कि तुम ही कोई कथा कहो। तब सेठ अपने अभिप्राय को सूचित करते हुए कथा कहने लगा–

वाराणसी नगरी में एक जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था। उसके यहाँ एक धनदत्त नाम का वैद्य था। उसी पत्नी का नाम धनदत्ता था। इनके धनमित्र और धनचन्द नाम के दो पुत्र थे। उन्हें पिता ने पढ़ाया भी, परन्तु वे पढ़े नहीं। इससे पिता के मरने पर उसी आजीविका को किसी दूसरे ने ले लिया। तब उन्होंने अभिमान के वशीभूत हो

चम्पापुरी में जाकर शिवभूति के पास पढ़ना प्रारम्भ किया। तत्पश्चात् विद्याध्ययन करके जब वे अपने नगर के लिए वापिस आ रहे थे तब मार्ग में उन्हें नेत्र-पीड़ा से पीड़ित एक व्याघ्र दिखा। तब छोटे भाई के रोकने पर भी बड़े भाई ने उस व्याघ्र के नेत्रों में औषधि का उपयोग किया। इससे उसकी नेत्र पीड़ा नष्ट हो गई। परन्तु उसने उसी को खा लिया। क्या उसे अपने उपकारी को खाना उचित था? मुनिराज ने उत्तर में कहा कि नहीं, उसका ऐसा करना उचित नहीं था।।1।।

अब मेरी कथा को सुनो- हस्तिनापुर में विश्वसेन नाम का राजा राज्य करता था। उसके लिए किसी व्यापारी ने एक आम का बीज दिया जो कि बलि (झुर्रियों) और पलित (श्वेत बालों) को नष्ट करके जवानी को स्थिर रखने वाला था। राजा ने उसे माली को दिया और उसने उसे बगीचे में लगा दिया। उस वृक्ष में फल के आने पर आकाश में एक गिद्ध सर्प को लेकर जा रहा था। उस सर्प के विष की एक बूँद उक्त फल के ऊपर गिर गई। उसकी गर्मी से वह फल पक गया। तब वनपाल ने वह फल ले जाकर उसी राजा को दिया और राजा ने उसे युवराज को दे दिया। युवराज उसे खाकर तत्काल मर गया। इस कारण राजा ने उस वृक्ष को कटवा डाला। इस प्रकार दूसरे के दोष से राजा को उसका कटवाना क्या उचित था? सेठ ने उत्तर दिया कि 'नहीं'।।2।।

मैं कहता हूँ 'गंगा के प्रवाह में एक हाथी का बच्चा बहता हुआ जा रहा था। उसे किसी विश्वभूति नाम के तापस ने देखा। उसने प्रवाह में से निकालकर उसका पालन-पोषण किया। तत्पश्चात् जब वह उत्तम लक्षणों से संयुक्त हुआ तब उसे श्रेणिक राजा ने ले लिया। परन्तु वहाँ जाकर वह अंकुश के ताड़न आदि को सहन नहीं कर सका। इसीलिए वहाँ से भागकर वह तापस के आश्रम में प्रविष्ट होना चाहता था, परन्तु तापस ने उसे आश्रम के भीतर प्रविष्ट नहीं होने दिया। इससे क्रोधित होकर उसने उक्त तापस को मार डाला। क्या उसे ऐसा करना उचित था? मुनिराज ने उत्तर में कहा कि नहीं।।3।।

तब मुनिराज कहते हैं- चम्पापुरी में एक देवदत्ता नाम की वेश्या थी। उसने एक तोता पाला था। रविवार के दिन वेश्या कटोरी में मद्य को रखकर चली गई। इतने में किसी स्त्री ने आकर उसमें विष मिला दिया।

तोते ने सोचा कि जब देवदत्ता आकर उसे पीवेगी तो वह मर जावेगी। इस भय से तोते ने उस मद्य को विखेर दिया। इससे क्रोधित होकर वेश्या ने उसे मार डाला। इसकी परीक्षा न करके वेश्या का क्या उसे मार डालना उचित था? सेठ ने उत्तर दिया- नहीं, उसका वैसा करना उचित नहीं था।।4।।

सेठ कहता है- वाराणसी नगरी में वसुदत्त नाम का एक सुवर्ण का व्यापार करने वाला (सर्राफ) वैश्य था। उसका पेट बड़ा था। एक दिन वह दुकान से वस्त्र (थैली) में सुवर्णादि को रखकर घर जाने के लिए उद्यत हुआ। इसी समय एक चोर भागता हुआ उसके पेट की शरण में आया। सेठ ने उसे वस्त्र से छुपा लिया। कोतवाल यह सोचकर कि सेठ का पेट ही ऐसा है, चुप-चाप चले गये। तत्पश्चात वह चोर सेठ की उस थैली को लेकर चल दिया। क्या उस चोर को वैसा करना योग्य था? मुनिराज ने उत्तर दिया कि नहीं।।5।।

मुनिराज कहते हैं- चम्पा पुरी में सोमशर्मा ब्राह्मण के सोमिल्ला और सोमशर्मा नाम की दो स्त्रियाँ थीं। उनमें सोमिल्ला के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वहाँ एक भद्र बैल था। लोग उसे घास खिलाया करते थे। वह एक दिन सोमशर्मा के घर के द्वार पर बैठा था। सोमशर्मा (सोमिल्ला की सौत) ने ईर्ष्यावश उस पुत्र को इस बैल के सींग में पो दिया। इससे वह मर गया। तब से समस्त जन उस बैल का तिरस्कार करने लगे। वह चिन्ता से कृश हो गया। एक समय जिनदत्त सेठ की पत्नी के विषय में लोगों ने पर-पुरुष से सम्बन्ध रखने का दोषारोपण किया। तब वह आत्मशुद्धि के निमित्त तपे हुए फाल (हल के नीचे स्थित पैना लोहा) को धारण करने के लिए दिव्य गृह में स्थित हुई। उस तपे हुए फल को उक्त बैल ने दाँतों से खींच लिया। इस प्रकार से उसने आत्मशुद्धि प्रगट कर दी। इस तरह जो बैल सर्वथा निर्दोष था उसका जनों के द्वारा तिरस्कार करना क्या उचित था? जिनदत्त ने कहा कि उन्हें वैसा करना उचित नहीं था।।6।।

सेठ बोला- पद्मरथ नगर में वसुपाल नाम का राजा था उसने राजकार्य के लिए किसी ब्राह्मण को अयोध्या के राजा जितशत्रु के पास भेजा। वह किसी महावन में जाकर प्यास से व्याकुल होता हुआ मूर्च्छित

होकर एक वृक्ष के नीचे पड़ गया। वहाँ उसे एक बन्दर ने जल को दिखलाया। तब उसने जल को पी लिया। फिर उसने विचार किया कि क्या जाने आगे जल मिलेगा अथवा नहीं। बस, इसी विचार से उसने उस बन्दर को मारकर उसके चमड़े की मशक बना ली और उसे जल से भरकर साथ में ले गया। उक्त ब्राह्मण को क्या उस बन्दर का मारना उचित था? मुनिराज ने उत्तर में कहा कि नहीं।।7।।

मुनिराज बोले- कौशाम्बी पुरी में एक सोमशर्मा नाम का ब्राह्मण रहता था। उसके कपिला नाम की स्त्री थी जो पुत्र से रहित थी। किसी दिन ब्राह्मण को वन में एक नेवले का बच्चा दिखा। उसने उसको लाकर कपिला को दे दिया। उसने उसको शिक्षित किया। वह उसके संकेत के अनुसार कार्य किया करता था। कुछ दिनों के बाद कपिला के पुत्र उत्पन्न हुआ। एक दिन कपिला ने पुत्र को पालने में सुलाकर नेवले के संरक्षण में किया और स्वयं वह बाहर जाकर चावलों को कूटने लगी। उस समय एक सर्प बालक की ओर आ रहा था। नेवले ने सर्प को बालक की ओर आता हुआ देखकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। ज्योंही कपिला ने नेवले के मुख को सर्प के रक्त से सना हुआ देखा त्योंही उसने यह सोचकर कि इसने बालक को खा लिया है, मूसल के आघात से उसे मार डाला। क्या बिना विचारे ही कपिला को निरपराध नेवले का मार डालना उचित था? सेठ ने कहा, नहीं।।8।।

सेठ बोला- कोई एक बूढ़ा ब्राह्मण बाँस की लाठी के भीतर सुवर्ण को रखकर गंगा नदी की ओर जा रहा था। किसी बालक ने उसे लाठी में सुवर्ण रखते हुए देख लिया। तत्पश्चात् वह भी उसके साथ चलने लगा और वे दोनों रात में किसी कुम्हार की शाला में सो गये और प्रातःकाल के होने पर वहाँ से आगे चल दिये। कुछ मार्ग चलने के पश्चात् बालक बोला कि मेरे माथे पर चिपटकर एक बिना दी हुई तृण की शलाई चली आयी है। यह तो चोरी का पाप हुआ है। इसलिए मैं उसे वहीं पर रखकर वापिस आता हूँ। ऐसा कहकर वह वापिस चला गया। जब वृद्ध ब्राह्मण ने किसी गाँव में पहुँचकर एक यजमान के घर पर स्वयं भोजन किया और उक्त बालक के लिए भी भोजन का प्रबन्ध एक स्थल पर कर दिया- उसे भी भोजन करा देने के लिए कह दिया। फिर वह एक मठ

में ठहर गया। जब रात में वह बालक वापिस आया तब ब्राह्मण ने उसे उक्त यजमान के घर पर भोजन के लिए भेजना चाहा। परन्तु वह 'मार्ग में कुत्ते होंगे' यह कहकर वहाँ जाने को तैयार नहीं हुआ। तब ब्राह्मण ने कुत्तों से आत्मरक्षा करने के लिए उसे लाठी दे दी। उसे लेकर वह चल दिया। क्या उस बालक को ऐसा करना उचित था? मुनिराज ने उत्तर में कहा कि नहीं।।9।।

तत्पश्चात् मुनिराज बोले कि मेरी कथा को सुनो- कौशाम्बी नगरी में गन्धर्वानीक नाम का राजा राज्य करता था। उसके यहाँ एक अंगार देव नाम का सुनार था। वह एक दिन राजा के पास से पद्मराग मणि को शुद्ध करने के लिए अपने घर पर ले आया। उस समय कोई एक मुनिमुनिराजचर्या के लिए उसके घर पर आये। उसने पड़िगाहन करके उन्हें कर्ममठ (प्रयोगशाला) के समीप में बैठाया। इतने में उस मणि को मयूर निगल गया। तब मणि को न देखकर सुनार ने मुनिराज के ऊपर सन्देह करते हुए उनसे उस मणि को दे देने के लिए कहा। इस उपसर्ग को देखकर मुनिराज ध्यानस्थ हो गये। तब क्रुद्ध होकर सुनार ने दूर से मुनिराज को एक लकड़ी मारी। वह लकड़ी मुनिराज को न छूकर उस मयूर के गले में जा लगी। उसके आघात से मयूर के गले से वह मणि निकल पड़ी। उसको देखकर सुनार ने उसे उठा लिया और जाकर राजा को दे दिया। इस घटना से विरक्त होकर सुनार ने दीक्षा ग्रहण कर ली। बताओ कि उस सुनार को ऐसा करना योग्य था क्या? सेठ बोला कि नहीं, उसका वैसा करना अनुचित था।।10।।

सेठ कहता है- किसी पुरुष ने वन में घूमते हुए एक हाथी को देखा। उसे देखकर वह भय से वृक्ष के ऊपर चढ़ गया। इससे वह हाथी उसे न पाकर वापिस चला गया। फिर वह उस वृक्ष के ऊपर से उतरकर जा रहा था कि इसी समय उसने भेरी के लिए लकड़ी को खोजते हुए किसी बढ़ई को देखा। तब उसने उक्त लकड़ी के योग्य उसी वृक्ष को दिखलाया। ऐसा करना क्या उसके लिए उचित था। उत्तर में मुनिराज ने कहा कि नहीं।।1।।

तब मुनिराज कहते हैं- द्वारावती नगरी में नारायण (कृष्ण) राजा राज्य करता था। एक दिन ऋषि निवेदक ने आकर राजा से निवेदन

किया कि मेदर्ज मुनि (ज्ञानसागर) आकर उद्यान में विराजमान हैं। इस शुभ समाचार को सुनकर कृष्ण ने जाकर उक्त मुनिराज की वन्दना की। पश्चात् उसने मुनिराज के शरीर को व्याधिग्रस्त देखकर अपने वैद्य से पूछा। उसने मुनिराज की व्याधि को दूर करने के लिए रालकपिष्टपृक्त प्रयोग (?) बतलाया। तब कृष्ण ने अन्य पड़िगाहने वाले दाताओं को रोककर स्वयं रूक्मिणी के घर पर मुनिराज के लिए रालकपिष्ट पिण्डों को दिया। इससे मुनिराज का शरीर निरोग हो गया। तत्पश्चात् किसी समय कृष्ण के पूछने पर मुनिराज ने कहा कि कर्मों के उपशान्त हो जाने से मैं रोग रहित हो गया हूँ। यह सुनकर वैद्य को मुनिराज के ऊपर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। वह समयानुसार मरकर वन में बन्दर उत्पन्न हुआ। उस वन में उक्त मुनिराज पल्यङ्क आसन से ध्यान में स्थित थे। उनको देखकर बन्दर को जातिस्मरण हो गया। तब उसने मुनिराज की जंघा को एक तीक्ष्ण लकड़ी के द्वारा बिद्ध कर दिया। इतने पर भी मुनिराज के हृदय में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ। शरीर के विषय में उनकी इस प्रकार की निर्ममत्व बुद्धि को देखकर उक्त बन्दर की क्रोधवासना शान्त हो गई। तब उसने मुनिराज की जंघा में से उस लकड़ी को निकाल लिया और औषधि के प्रयोग से उनके घाव को भी ठीक कर दिया। फिर उसने वन के फूलों से मुनिराज की पूजा करके हाथ के संकेत से यह जतलाया कि उपसर्ग नष्ट हो चुका है। तब मुनिराज ने दोनों हाथों को ऊपर उठाया। तत्पश्चात् बन्दर ने उन्हें प्रणाम करके उनसे अणुव्रत को ग्रहण किया। इस प्रकार से उस वैद्य को क्या ऐसा अविचारित कार्य करना योग्य था? जिनदत्त ने कहा कि 'नहीं'।।12।।

तत्पश्चात् 'मैं भी कहता हूँ', इस प्रकार जिनदत्त सेठ बोला ही था कि इतने में कुबेरदत्त ने उस घड़े को पिता के सामने रख दिया और उनसे बोला कि 'हे मुने! वन में चलिए और मुझे दीक्षा दीजिए।' कहा भी है–

धन के लोभ होने वाले अनर्थ के विषय में वैद्य, तापस, सेठ, बन्दर, बटुक, वन का हाथी, आम्रफल, शुक, वृषभ, नेवला तथा मणि व साधु; इनके आख्यान कहे गये हैं।।3।।

इससे पिता को भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उन दोनों ने

दीक्षाग्रहण कर ली और विहार करने लगे। मैं वही मणिमाली हूँ। वे ही हम विहार करते हुए यहाँ आये हैं। मुझमें कायगुप्ति स्थिति नहीं थी, इसीलिए हे श्रेणिक! हम वहाँ नहीं रुके। इस सब वृत्तान्त को सुनकर राजा श्रेणिक वेदकसम्यग्दृष्टि (क्षायोपशमिक सम्सग्दृष्टि) हो गया।

कुछ दिनों के पश्चात् चेलिनी को गर्भ धारण करने पर अनिर्वचनीय दोहल उत्पन्न हुआ। उसकी पूर्ति न हो सकने से चेलिनी का शरीर अतिशय कृश हो गया। उसको कृश देखकर श्रेणिक ने बहुत आग्रह से इसका कारण पूछा तब चेलिनी ने कहा कि 'हे नाथ! मुझ पापिष्ठ की इच्छा तुम्हारे वक्षस्थल को विदीर्ण करके रक्त के पीने की है।' यह सुनकर श्रेणिक ने चित्रमय स्वरूप में उसकी इच्छा को पूर्ण किया- अपने वक्षस्थल को चीरकर रक्तदान किया। समयानुसार उसने पुत्र को प्राप्त किया। उसके मुख को देखने के लिए जब श्रेणिक वहाँ पहुँचा तब बालक ने उसको देखकर भृकुटियों को कुटिल करते हुए लाल नेत्रों से क्रोध कर अपने अधरोष्ठ को काट लिया। इस प्रकार से उसने अपने शरीर की दुष्टतापूर्ण प्रवृत्ति की। यह राजा के ऊपर रुष्ठ है, ऐसा जानकर चेलिनी ने उसे वन में छोड़ दिया। परन्तु जब यह बात राजा को मालूम हुई तब उसने लाकर उसे धाय को दे दिया। कुणिक नाम को धारण करने वाला यह बालक क्रमशः वृद्धिंगत होने लगा। तत्पश्चात् क्रम से चेलिनी के वारिषेण, हल्ल, विहल्ल और जितशत्रु नामक पुत्र हुए; इस प्रकार उसके पाँच पुत्र हुए। छठी बार जब उसके गर्भ रहा तब उसे हाथी के ऊपर चढ़कर वर्षाकाल में घूमने का दोहल उत्पन्न हुआ। इस दोहल की पूर्ति न हो सकने से चेलिनी का शरीर कृश हो गया। उसे कृश देखकर श्रेणिक ने उससे इसका कारण पूछा। तब उसने अपनी वह इच्छा प्रकट कर दी। यह जानकर राजा को बहुत चिन्ता हुई। कारण यह कि ग्रीष्म काल में उसके उपर्युक्त दोहल (हाथी के ऊपर चढ़कर वर्षाकाल में विहार करना) की मूर्ति करना कठिन था। तब अभय कुमार 'मैं वृष्टि आदि को करूँगा'। यह कहते हुए राजा की आज्ञा लेकर रात्रि में व्यन्तरों के अन्वेषणार्थ श्मशान में गया। वहाँ उसने वट वृक्ष के नीचे अनेक दीपों के प्रकाश में बहुत पुष्पों से जप करते हुए किसी उद्विग्न पुरुष को देखा। उसके जप के समय वहाँ धूप के धुएँ से बहुत से व्यंन्तर आकृष्ट हुए

थे। अभयकुमार ने उससे पूछा कि तुम कौन हो और क्या जपते हो? वह बोला- विजयार्ध पर्वत की उत्तरश्रेणि में गगनवल्लभ नाम का एक नगर है। मैं उसका राजा हूँ। नाम मेरा पवनवेग है। मैं जिनालयों की वन्दना करने के लिए मन्दर या मन्दार पर्वत पर गया था। उस समय वहाँ बालकापुर के स्वामी विद्याधर चक्रवर्ती की पुत्री आयी थी। उसके देखने से मेरा मन कामबाण से विद्ध हो गया। इसीलिए मैं उसको लेकर इस दक्षिण भरत क्षेत्र के ऊपर से जा रहा था। उधर वह विद्याधरों का स्वामी पुत्री की सखियों से यह ज्ञात करके क्रोध से मेरे पीछे लग गया। तब मुझे उसके साथ युद्ध करना पड़ा। वह मेरी विद्या को नष्ट करके अपनी पुत्री को ले गया। विद्या के नष्ट होने से मैं भूमिगोचरी होकर आकाश मार्ग से जाने में असमर्थ हो गया। तब से मैं यहाँ पर स्थित हूँ। परन्तु दो बार जपने पर भी वे विद्याएँ सिद्ध नहीं हुईं हैं। इससे क्षुब्ध होकर मैं घर जाने की इच्छा कर रहा हूँ। इस वृत्तान्त को सुनकर अभयकुमार ने उससे उस मन्त्र को बतलाने के लिए कहा। तब उसने वह मन्त्र अभय कुमार के लिए बतला दिया। उस मन्त्र में जो अक्षर कम था उसको रखकर अभयकुमार ने उसे फिर से जपने के लिए कहा। तदनुसार उसके फिर से जपने पर पवनवेग की वे सब विद्याएँ सिद्ध हो गई। इस प्रकार विद्याओं के सिद्ध हो जाने पर पवनवेग ने अभयकुमार को प्रणाम किया। तत्पश्चात् अभयकुमार ने पवनवेग की सहायता से वह सब (चेलिनी के दोहला की पूर्ति) किया। इसके बाद चेलिनी ने गाजकुमार नामक पुत्र को उत्पन्न किया। फिर उसने कुछ दिनों के पश्चात् मेघकुमार नामक पुत्र को भी जन्म दिया। इस प्रकार चेलिनी सात पुत्रों की माता होकर सुखपूर्वक स्थित हुई।

एक समय ऋषिनिवेदक ने आकर राजा से निवेदन किया कि हे देव! विपुलाचल के ऊपर श्री वर्धमान स्वामी का समवसरण स्थित हुआ है। तब श्रेणिक समस्त परिजन व पुरजन के साथ वर्धमान जिनेन्द्र की पूजा करने के लिए वहाँ गया और उनकी पूजा करके तथा अलौकिक विभूति को देख करके अतिशय दर्शनविशुद्धि के होने से वह क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो गया। उस समय उसने तीर्थंकर प्रकृति को भी संचित कर लिया।

तत्पश्चात् श्रेणिक ने अभयकुमार और गाजकुमार के अतिशय

पुण्य के विषय में गौतम गणधर से प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर में कहा कि वेणातङागपुर में रुद्रदत्त नाम का एक ब्राह्मण था। वह गंगा जाते हुए रात्रि में किसी एक गाँव (उज्जयिनी) के भीतर वसतिका में ठहर गया। उसने वहाँ श्रावक (अर्हद्दास) के पास भोजन की याचना की। तब श्रावक ने कहा कि रात्रि में भोजन करना योग्य नहीं है। इस प्रकार वह धर्म को सुनकर जैन हो गया। तत्पश्चात् संन्यासपूर्वक मरण को प्राप्त होकर वह सौधर्म स्वर्ग को प्राप्त हुआ और फिर वहाँ से च्युत होकर अभयकुमार हुआ। अब गजकुमार के भवों को कहते हैं जो इस प्रकार हैं- एक वन में सुधर्म नाम के मुनि ध्यान में स्थित थे। इस वन के भीतर भीलों की बस्ती में एक अत्यन्त भयानक भील था। उसने उक्त वन में आग लगा दी। तब वहाँ स्थित सुधर्म मुनि समाधिपूर्वक प्राणों को छोड़कर अच्युत कल्प में देव हुए। भील ने जब मुनि के मृत शरीर को देखा तब उसे पश्चाताप हुआ। वह आयु के अन्त में मरण को प्राप्त होकर उसी वन के भीतर विशाल हाथी हुआ। पूर्वोक्त सुधर्म मुनि का जीव वह अच्युतकल्पवासी देव नन्दीश्वर द्वीप से स्वर्ग को वापिस जा रहा था। तब उसने जाते हुए उस हाथी को देखा। तत्श्चात् वह दिगम्बर वेष को धारण करके उक्त हाथी के आने के मार्ग में ध्यान से स्थित हो गया। उसे उस अवस्था में स्थित देखकर हाथी को जातिस्मरण हो गया। तब उसने उसे प्रणाम किया। फिर उसनेधर्म को सुनकर श्रावक के समस्त व्रतों को धारण कर लिया। अन्त में वह समाधिपूर्वक मरकर सहस्रार स्वर्ग में गया और फिर वहाँ से आकर गजकुमार हुआ है। इस प्रकार अपने पूर्वभवों के वृत्तान्त को सुनकर अभयकुमार आदि के साथ नन्दश्री (अभयकुमार की माता) ने भी दीक्षा धारण कर ली। राजा श्रेणिक को जो भी अभीष्ट था वह सबको सुनकर वह चेलिनी के साथ अपने नगर में वापिस आया और महामण्डलेश्वर की विभूति के साथ स्थित हुआ।

किसी समय सौधर्म इन्द्र अपनी सभा में सम्यक्त्व के स्वरूप का निरूपण कर रहा था। तब देवों ने उससे पूछा कि क्या इस प्रंकार के सम्यक्त्व का धारक कोई मनुष्य भरत क्षेत्र में है या नहीं। इसके उत्तर में सौधर्म इन्द्र ने कहा कि हाँ, उस प्रकार के सम्यक्त्व का

धारक वहाँ राजा श्रेणिक विद्यमान है। यह सुनकर दो देव उसकी परीक्षा करने के लिए यहाँ आये। उनमें से एक देव तो राजा श्रेणिक के शिकार के लिए जाने के मार्ग में स्थित एक नदी पर दिगम्बर के वेष में जाल को फैलाकर बैठ गया और दूसरा आर्यिका के रूप में वहीं पर स्थित होकर उसके द्वारा पकड़ी गई मछलियों को टोकरी में भरने लगा। राजा श्रेणिक ने उस अवस्था में स्थित युगल को देखकर नमस्कार किया। तत्पश्चात् उसने उनसे पूछा कि आप क्या कर रहे हैं? उत्तर में धर्मवृद्धि का आर्शीवाद देने के पश्चात् वह कृत्रिम मुनि बोला कि इसके गर्भावस्था में मछलियों के मांस की इच्छा उत्पन्न हुई है। इसके लिए मैं मछलियों को पकड़ रहा हूँ। श्रेणिक ने तब फिर से कहा कि इस वेष में ऐसा कार्य करना उचित नहीं है। इस पर वह मायावी मुनि बोला कि प्रयोजन ही ऐसा उपस्थित हो गया है, मैं क्या करूँ? तब श्रेणिक ने कहा कि 'फिर भी दिगम्बर साधुओं को ऐसा करना योग्य नहीं है।' यह सुनकर मुनि ने उत्तर दिया कि 'प्रयोजन को पाकर सब ही मेरे समान हो जाते हैं।' इस पर राजा बोला कि 'तुम सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो, निकृष्ट हो।' वह बोला कि 'क्या मैंने असत्य कहा है जो तुम मेरे प्रति इस प्रकार कह रहे हो। उत्तम ऋषियों को गाली देने के कारण तुम ही जैन नहीं हो, हम तो जैन ही हैं।' राजा बोला कि जब तुममें सम्यग्दर्शन के लक्षण भूत संवेगादि भी नहीं हैं तब तुम कैसे जैन हो सकते हो? क्या कोई जैन इस वेष में जैन धर्म की अप्रभावना करा सकता है? इसीलिए मैं तुम्हारा गर्दभारोहण कराऊँगा। इस प्रकार कहकर श्रेणिक उन दोनों को अपने घर पर ले आया। उस समय मन्त्रियों ने श्रेणिक से पूछा कि हे देव! इस प्रकार के भ्रष्ट मुनि के लिए नमस्कार करने में क्या सम्यग्दर्शन सदोष नहीं होता है? श्रेणिक ने उत्तर दिया कि यह वेषधारी जैन है, यह समझ करके मैंने उसे नमस्कार किया है; इसलिए ऐसा करने से सम्यग्दर्शन सातिचार नहीं होता है। हाँ, यदि मुझमें चारित्र होता तो चारित्र अतिचार अवश्य हो सकता था, सो वह है नहीं। इस प्रकार से जब उक्त देवों ने श्रेणिक की दृढ़ता को देखा तब उन्होंने हर्षित होकर अपने यथार्थ स्वरूप को प्रकट कर दिया। फिर उन दोनों ने उसे नमस्कार करके चेलिनी के साथ उन दोनों का गंगा जल से अभिषेक

किया। तत्पश्चात् स्वर्गलोक के वस्त्राभरणों से उनकी पूजा करके वे स्वर्ग को वापिस चले गये। इस प्रकार देवों से पूजित होकर श्रेणिक ने, कुणिक के लिए राज्य देकर 'मैं सुखपूर्वक रहूँगा,' इस विचार से उसे राजा बना दिया। तब कुणिक ने माता के बाधक होने पर उसे अतिशय आग्रह से रोककर पिता को ही असिपंजर (कटघरा) में रख दिया। वह उसके लिए नमक के बिना कांजिक और कोदों का भोजन खाने के लिए दिलाता तथा दुर्वचन बोलता था। इस प्रकार से दुःख को सहता हुआ श्रेणिक उस कटघरे में स्थित रहा। किसी समय जब कुणिक भोजन के लिए बैठा था तब उसके पुत्र ने भोजन के पात्र में पेशाब कर दिया। उस समय कुणिक ने मूत्रयुक्त भोजन को अलग करके शेष को खाते हुए माता से पूछा कि मुझको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा पुत्र प्रेमी है क्या? उत्तर में चेलनी ने कहा कि तू कितना मोहवाला है, अपने पिता के पुत्र मोह को सुन-बाल्यावस्था में तेरी अंगुलि में दुर्गन्धित पीव आदि से संयुक्त एक घाव हो गया था। वह किसी भी उपाय से ठीक नहीं हुआ। इससे तू बहुत दुःखी था। तब तेरे पिता ने उस अंगुलि को अपने मुँह में रखकर तुझे सुखी किया था। यह सुनकर कुणिक ने माता से कहा कि हे माता! क्या यही पुत्रमोह है जो कि मुझे उत्पन्न होने के दिन ही छोड़ दिया गया था? चेलनी ने कहा कि तेरा परित्याग मैंने किया था, राजा तो तुझे वहाँ से उठाकर वापिस लाये थे। इतना ही नहीं, उन्होंने तुझे राजा भी बनाया। ऐसे पुत्र स्नेही पिता के विषय में तुझे ऐसा अयोग्य व्यवहार करना उचित है क्या? यह सुनकर कुणिक ने अपनी आत्मनिन्दा की। फिर वह पिता को बन्धनमुक्त करने के लिए उनके पास पहुँचा। किन्तु जब श्रेणिक ने उसे मलिन मुख के साथ अपनी ओर आते हुए देखा तो यह सोचकर कि अब और भी यह कुछ करेगा, वह तलवार की धार पर गिर पड़ा और मर करके प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ। इस दुर्घटना से कुणिक को बहुत दुख हुआ। उसने श्रेणिक के अग्निसंस्कार को करके उसकी मुक्ति के निमित्त ब्राह्मणादि के लिए आग्रहारादि दिया। माता चेलिनी के समझाने पर भी जब उसने जैन मत को स्वीकार नहीं किया तब चेलिनी ने वर्धमान जिनेन्द्र के समवसरण में अपनी बहिन चन्दना आर्यिका के निकट में दीक्षा धारण कर ली। वह समाधिपूर्वक

शरीर को छोड़कर स्वर्ग में देव हुई। अभयकुमार आदि यथायोग्य गति को प्राप्त हुए। इस प्रकार से श्रेणिक ने सातवें नरक की आयु को बाँध करके भी जब एक बार जिनेन्द्र का दर्शन व पूजन करके प्राप्त हुए सम्यक्त्व के प्रभाव से तीर्थंकर प्रकृति को भी बाँध लिया और भविष्य में इसी भरत क्षेत्र के भीतर प्रथम तीर्थंकर होने वाला है तब दूसरा कोई भव्य जीव यदि सम्यग्दर्शन के साथ व्रतों को धारण करके जिनेन्द्र की पूजा करता है तो वह क्या तीनों लोकों का स्वामी न होगा? अर्थात् अवश्य होगा। यह कथा भ्राजिष्णु आराधना कर्णाटक टीका में वर्णित क्रम के अनुसार उल्लेख मात्र से कही गई है।

जो भव्य जीव पूजा के फल को बतलाने वाले इस अष्टक (आठ कथाओं) को पढ़ते हैं वे इच्छानुसार बहुत काल तक स्वर्ग सम्बन्धी इन्द्रिय-सुख को भोग करके तत्पश्चात् तीर्थंकर होते हुए देवों से पूजित चक्रवर्ती के भी सुख को भोगते हैं और अन्त में क्षीरसमुद्र के समान निर्मल कीर्ति एवं ज्ञान रूप निधि से संयुक्त होकर मोक्ष सुख को भोगते हैं।।8।।

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनि के शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु, विरचित पुण्यास्रव नामक ग्रन्थ में पूजाफल का बतलाने वाला अष्टक समाप्त हुआ।।।।।

9. वृषभचर सुग्रीव कथा

वृषा हि वैश्योदितपञ्चसत्पदः सुखं स भुक्त्वा दिविजं नृलोकजम्।
बभूव सुग्रीवसुनामधेयक-स्ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः ॥9॥

जो एक बैल की पर्याय में अवस्थित था उसने सेठ के द्वारा उच्चारित पंचनमस्कार मन्त्र को सुनकर स्वर्गलोक और मनुष्य लोक के सुख को भोगा। पश्चात् वह सुग्रीव नाम का राजा हुआ। इसीलिए हम उस पंचनमस्कार मंत्र के विषय में दृढ़श्रद्धानी होते हैं।।9।।

9. इसकी कथा इस प्रकार है- इसी भरत क्षेत्र के भीतर अयोध्यापुरी में राजा राम और लक्ष्मण राज्य करते थे। एक समय वहाँ श्री सकलभूषण केवली आकर नगर के बाहर महेन्द्र उद्यान में स्थित हुए। राम और लक्ष्मण उनकी वन्दना के लिए गये। उन्होंने उनकी पूजा व वन्दना करके धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् विभीषण ने पूछा कि हे भगवन्! हजार अक्षौहिणी प्रमाण सेना का स्वामी सुग्रीव किस पुण्य के फल से राम का स्नेहभाजन हुआ है। केवली बोले- इसी भरत क्षेत्र के भीतर श्रेष्ठपुर नामक नगर में छत्रछाय नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम श्रीदत्ता था, वहाँ एक पद्मरुचि नाम का सेठ रहता था। वह अधिगमसम्यग्दृष्टि था। एक दिन उसे चैत्यालय से घर वापिस आते हुए मार्ग में एक बैल दिखा। वह किसी अन्य बैल से लड़ते हुए गिरकर मरणोन्मुख हुआ था। सेठ ने उसे इस अवस्था में देखकर पंचनमस्कार मंत्र दिया। उसके फल से वह राजा छत्रछाय और रानी श्रीदत्ता के वृषभध्वज नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। समयानुसार वह राजपद पर प्रतिष्ठित हुआ। एक समय वह हाथी के ऊपर चढ़कर नगर में घूमते हुए उस स्थान पर पहुँचा जहाँ कि पूर्वोक्त बैल गिरकर मरण

को प्राप्त हुआ था। उस स्थान को देखते ही उसे जातिस्मरण हो जाने से मूर्च्छा आ गई। सचेत होने पर वह चुपचाप अपने भवन में पहुँचा। उसने उक्त बैल को पंचनमस्कार मंत्र देने वाले पुरूष को ज्ञात करने के लिए वहाँ एक अनुपम जिनभवन बनवाया। इसके भीतर एक स्थान में उसने पंचनमस्कार मन्त्र को देते हुए पुरूष के साथ उस बैल की मूर्ति बनवाकर वहाँ एक विद्वान् पुरूष को नियुक्त कर दिया। उसे उसने यह बतला दिया कि जो पुरूष इस मूर्ति को आश्चर्य के साथ देखे उसे मेरे पास ले आना। तद्नुसार वह पद्मरूचि को देखकर उसे राजा के पास ले गया। राजा ने उससे पूछा कि उस बैल को देखकर आप को आश्चर्य क्यों हो रहा था? सेठ ने कहा कि मैंने एक गिरे हुए बैल को पंचनमस्कार मंत्र दिया था। न जाने वह कहाँ उत्पन्न हुआ है? इसको देखने से मुझे उसका स्मरण हो आया है। इसीलिए मैं उसे आश्चर्य के साथ देख रहा था। इस प्रकार के सेठ के कहने पर उसे वृषभध्वज ने अपने समान कर लिया। वह भूतपूर्व बैल का जीव वृषभध्वज दोनों गतियों (मनुष्यों और ईशानकल्पवासी देव) के सुख को भोगकर सुग्रीव हुआ है और पद्मरूचि सेठ परम्परा से राम हुआ है। इस प्रकार जब उस मंत्र के प्रभाव से पशु भी ऐसी उत्तम अवस्था को प्राप्त हुआ है तब अन्य मनुष्यों के विषय में क्या कहा जाय? वे तो उत्तम सुखों को भोगेंगे ही।।9।।

10. मर्कटचर सुप्रतिष्ठितमुनि कथा

कपिश्च संमेदगिरौ स चारणै र्विबोधितः पञ्चपदैर्द्विलोकजम्।
सुखं स भुक्त्वा भवति स्म केवली ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः॥10॥

सम्मेद शिखर पर्वत के ऊपर चारण ऋषियों के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुआ वह बन्दर चूंकि पंचनमस्कार मंत्र के प्रभाव से दोनों लोकों में सुख को भोगकर केवली हुआ है, अतएव हम उस पंचनमस्कार मंत्र में अधिष्ठित होते हैं।

10.इसकी कथा इस प्रकार है- इसी भरत क्षेत्र के भीतर सौरीपुर में राजा अन्धकवृष्टि राज्य करता था। एक समय इस नगर के बाहर गन्धमादन पर्वत के ऊपर सुप्रतिष्ठित मुनिराज ध्यान में स्थित थे। उनके ऊपर किसी सुदर्शन नामक देव ने घोर उपसर्ग किया। इस भीषण उपसर्ग को जीतकर उक्त मुनिराज ने केवल ज्ञान को प्राप्त कर लिया। यह जानकर अन्धकवृष्टि ने वहाँ जाकर उनकी पूजा और वन्दना की। तत्पश्चात् उसने उनके ऊपर किये गये इस उपसर्ग के कारण को पूछा। केवली बोले- जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्र के भीतर कलिंग देश में एक कांचीपुर नगर है। उसमें सुदत्त और सूरदत्त नाम के दो सेठ रहते थे। उन्होंने बाहर जाकर व्यापार में बहुत-सा धन कमाया। जब वे वापिस आये और अपने नगर में प्रवेश करने लगे तब उन दोनों ने कर (टैक्स) ग्राहक अधिकारी के भय से उस सब धन को एक स्थान में भूमि के भीतर गाड़ दिया। उक्त धन को गाड़ते हुए उन्हें किसी ने देख लिया था। सो उसने भूमि को खोदकर उस सब धन को निकाल लिया। तत्पश्चात् जब वह धन उन्हें वहाँ नहीं मिला तब वे एक-दूसरे के ऊपर सन्देह करके उसके निमित्त से लड़ मरे। इस प्रकार मरकर वे प्रथम नरक में नारकी उत्पन्न हुए। वहाँ से निकलकर वे मेंढ़क हुए और उसी प्रकार परस्पर में लड़कर मरण को प्राप्त हुए। फिर वे गंगा के किनारे पर बैल हुए और पूर्व के समान ही लड़कर मृत्यु को प्राप्त हुए। तत्पश्चात् वे सम्मेद शिखर पर्वत पर बन्दर हुए। पहले के ही समान उन्होंने फिर भी आपस में युद्ध किया। इस युद्ध में सुदत्त का जीव जो बन्दर हुआ था वह तो तत्काल मर गया। परन्तु दूसरा (सूरदत्त जीव) मरणासन्न था। उसे इस मरणोन्मुख अवस्था में देखकर सुरगुरु और देवगुरु नाम के चारण ऋषियों ने पंचनमस्कार मंत्र सुनाया। उसके प्रभाव से वह मरकर सौधर्म स्वर्ग में चित्रांगद नाम का देव उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वह कांचीपुर के राजा अजितसेन और रानी सुभद्रा से समुद्रदत्त नाम का पुत्र हुआ। फिर वह तप के प्रभाव से अहमिन्द्र हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर पौदनपुर के राजा सुस्थिर और रानी लक्ष्मणा के मैं सुप्रतिष्ठित नाम का पुत्र हुआ हूँ। दूसरा (सुदत्त का जीव) चिरकाल तक परिभ्रमण करके सिन्धु नदी के किनारे पर तापस

मृगायण और विशाला के गौतम नाम का पुत्र हुआ था जो पंचाग्नि तप के प्रभाव से ज्योतिर्लोक में सुदर्शन देव हुआ है। वह यहाँ जा रहा था। उसका विमान जब मेरे ऊपर आकर रुक गया तब उसने वह उपसर्ग किया है। इस प्रकार केवली के द्वारा प्रतिपादन करने पर उस सुदर्शन यक्ष ने सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया। जब उस पंचनमस्कार मंत्र के प्रभाव से बन्दर भी इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुआ है तब भला उसके फल का वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है? उसका फल अनिर्वचनीय है।।10।।

11. विन्ध्यकीर्तिपुत्रि विजयश्री कथा

नृपालपुत्री व्यजनिष्ट वल्लभा शचीपतेर्धातुजरादिवर्जिता।
सुलोचनापादितपञ्चसत्पदा ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः॥11॥

राजा विन्ध्यकीर्ति की पुत्री विजयश्री सुलोचना के द्वारा सुनाये गये पंचनमस्कार मंत्र के प्रभाव से सप्त धातुओं एवं जरा आदि से रहित इन्द्र की प्रियतमा (इन्द्राणी) हुई थी। इसलिए हम उस पंचनमस्कार मंत्र में अधिष्ठित होते हैं।।11।।

11. इसकी कथा इस प्रकार है- वाराणसी नगरी में अकम्पन नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम सुप्रभा था। उनके सुलोचना नाम की पुत्री थी जो अतिशय जिनभक्त एवं समस्त कलाओं में कुशल होकर सुख से स्थित थी। इधर विन्ध्यपुर में अकम्पन का मित्र विन्ध्यकीर्ति राजा था। उसकी पत्नी का नाम प्रियंगुश्री था। उनके एक विजयश्री नाम की पुत्री थी। उसके पिता विन्ध्यकीर्ति ने उसे लाकर कलाओं में कुशल करने के लिए सुलोचना को सौंप दिया। तब विजयश्री वहाँ सुलोचना के पास रहने लगी। एक दिन वह सुलोचना के कन्यागृह के पूर्व भाग में स्थित उद्यान में फूलों को चुनने के लिए गई थी। वहाँ उसे काले सर्प ने डस लिया था। तब उसे मरणासन्न देखकर सुलोचना ने पंचनमस्कार मंत्र सुनाया। उसके प्रभाव से वह गंगाकूट के ऊपर रहने वाली गंगा देवी हुई। उसने आकर सुलोचना की पूजा की।।11।।

12-13. वाग्वलिचर अज-सदग्धवणिक् कथा

अजो हि देवोऽजनि दिव्यविग्रहः सुराङ्गनापादितचारुभोगकः।
स चारुदत्तार्पितपञ्चसत्पद स्ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः॥12॥
रसेन दग्धः पुरुषो हि कल्पकेऽभवत्सुकान्तारमणः सुनिर्मलः।
स चारुदत्तोदितपञ्चसत्पद स्ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः॥13॥

वह बकरा, जिसे कि मरते समय चारुदत्त ने पंचनमस्कार मन्त्र दिया था, उक्त मन्त्र के प्रभाव से देव होकर दिव्य शरीर से सहित होता हुआ देवांगनाओं से प्राप्त सुन्दर भोगों का भोक्ता हुआ। इसलिए हम उस पंचनमस्कार मन्त्र में अधिष्ठित होते हैं।।12।।

इसी प्रकार वह रस से दग्ध (रस कूप में पड़ा हुआ) पुरुष भी, जिसे कि चारुदत्त ने पंचनमस्कारमन्त्र दिया था, उक्त मन्त्र के प्रभाव से स्वर्ग में सुन्दर देवांगनाओं का स्वामी निर्मल देव हुआ। इसलिए हम उस पंचनमस्कार मन्त्र में अधिष्ठित होते हैं।।13।।

12. 13. इन दो वृत्तों की कथा- चारुदत्त चरित्र में है। उसको यहाँ पर संक्षेप में कहा जाता है- जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्र में अंगदेश के भीतर चम्पा नगरी है। वहाँ पर विमलवाहन नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम विमलमती था। वहाँ एक भानु नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम देविला था। उसके कोई पुत्र नहीं था। इससे वह पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा से यक्ष यक्षियों की पूजा किया करती थी। एक समय सुमति नामक दिगम्बराचार्य ने उसे यक्ष-यक्षियों की पूजा करते देखकर कहा कि हे पुत्री! तेरे उत्तम पुत्र होगा। तू कुदेवों की पूजा करके सम्यग्दर्शन की विराधना मत कर। तत्पश्चात् कुछ दिनों में उसके चारुदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह हरिशिख, गोमुख, वराहक, परंतप और मरुभूति इन प्रधानपुत्रों के साथ वृद्धिंगत हुआ। इसी नगर के बाहर स्थित अग्निमन्दर पर्वत (अथवा अग्निदिशागत मन्दर) के ऊपर यमधर मुनि मुक्ति को प्राप्त हुए थे। वहाँ प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष मास में यात्रा भरती है। इस यात्रा में चारुदत्त भी जाना चाहता था। परन्तु वहाँ जाते हुए राजा आदि ने उसे वापिस कर दिया।

तब वह मित्रों के साथ नदी के तट पर स्थित एक उपवन में क्रीड़ा करने के लिए चला गया। वहाँ घूमते हुए उसे कदम्ब वृक्ष से कीलित होकर मूर्च्छा को प्राप्त हुआ एक पुरुष दिखा। उसकी दृष्टि ढाल के ऊपर स्थित थी। इससे चारुदत्त ने अनुमान करके उस ढाल को तलाशा। उसमें उसे तीन औषधि की बत्तियाँ (या गोलियाँ) दिखीं। उनमें जो कीलों को नष्ट करने वाली औषधि थी, उसके प्रभाव से चारुदत्त ने उसकी कीलों को दूर किया, संजीवनी औषधि के सामर्थ्य से उसने उसकी मूर्च्छा को नष्ट किया, तथा व्रणसंरोहिणी औषधि के प्रयोग से उसने उसको घावरहित कर दिया। तब वह चारुदत्त को नमस्कार करके बोला कि हे श्रेष्ठ भव्य! मेरी बात सुनिये- विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणि में शिवमन्दिर नाम का एक नगर है। वहाँ महेन्द्र विक्रम नाम का राजा राज्य करता है। रानी का नाम मत्स्या है। उन दोनों का मैं अमितगति नामक पुत्र हूँ। मैं धूमसिंह ओर गोरिमुण्ड मित्रों के साथ ह्रीमन्त पर्वत के ऊपर गया था। वहाँ पर मैंने हिरण्यरोम नामक एक क्षत्रिय तापस की कन्या को देखा। वह सुकुमारिका नाम की बालिका अपनी सुन्दरता से देवांगनाओं के भी रूप को तिरस्कृत करती थी। मैंने उसके लिए उक्त तापस से याचना की। उसने उसका विवाह मेरे साथ कर दिया। सुकुमारिका को देखकर धूमसिंह का मन उसके विषय में आसक्त हो गया। वह उसका अपहरण करने में प्रवृत्त था। परन्तु मुझे इसका ज्ञान नहीं था। मैं सुकुमारिका के साथ क्रीड़ा करने के लिए यहाँ आया था, वह प्रमाद की अवस्था में मुझे यहाँ कीलित करके उसे ले गया है। अब मैं उसे इसी समय जाकर छुड़ाता हूँ। इस प्रकार कहकर और उसे नमस्कार करके वह अमितगति विद्याधर वहाँ से चला गया।

कुछ दिनों के पश्चात् चारुदत्त का विवाह उसके मामा सिद्धार्थ और सुमित्रा की पुत्री मित्रवती के साथ कर दिया गया। चारुदत्त का सारा समय कला आदि गुणों और काव्य के चिन्तन में बीतता था। एक दिन सुमित्रा प्रातःकाल में अपनी पुत्री मित्रवती के पास आयी। तब उसने पुत्री के द्वारा कल के दिन किये गए चन्दनलेपानादि को ज्यों का त्यों शरीर में स्थित देखकर उससे पूछा कि हे पुत्री! तू क्या पति के साथ नहीं सोयी थी, जिससे कि विलेपन आदि तेरे शरीर में जैसे के तैसे स्थित हैं?

पुत्री ने उत्तर दिया कि पति मेरी चिन्ता भी नहीं करता है, वह तो सदा कुछ अनुमान करता हुआ ही-शास्त्रीय विचार करता हुआ ही-स्थित है। तत्पश्चात् सुमित्रा ने देविला से कहा कि तुम्हारा लड़का पढ़ा हुआ मूर्ख है। वह स्त्री से बात भी नहीं करता हैं तब देविला ने अपने देवर रुद्रदत्त से कहा कि जिस प्रकार से चारुदत्त विषयभोगाभिलाषी बने वैसा तुम प्रयत्न करो। यह सुनकर रुद्रदत्त ने वसन्तमालाकी पुत्री वसन्ततिलका को, जिसे कि अपने रूप-लावण्यादि गुणों का गर्व था, संकेत किया कि मैं चारुदत्त को लाता हूँ, तुम उसे जैसे समझो वैसे वश में करना। तत्पश्चात् वह चारुदत्त को उसके घर पर ले गया। वहाँ बैठाने के पश्चात् उसने अक्ष पाक्षों से क्रीड़ा (द्यूतक्रीड़ा) प्रारम्भ की। तत्पश्चात् चारुदत्त के द्वारा पानी के माँगने पर उसे बुद्धि को भ्रान्त करने वाले मोहनचूर्ण से संयुक्त पानी पिलाया गया। उसे पीकर चारुदत्त की बुद्धि में भ्रान्ति उत्पन्न हो गई। तब वह वसन्ततिलका को ऊपर के खण्ड में ले जाकर उसके साथ रमण करने में लग गया। इस प्रकार वहाँ रहते हुए चारुदत्त को छह वर्ष हो गए। इस बीच में उसके घर से सोलह करोड़ प्रमाण द्रव्य वसन्तमाला के घर पहुँच गया। चारुदत्त को इस प्रकार दुर्व्यसनासक्त देखकर उसके पिता ने दीक्षा ले ली। तत्पश्चात् दूसरे छह वर्षों में उसके यहाँ चारुदत्त के घर से सोलह करोड़ प्रमाण द्रव्य और भी पहुँच गया। तब बारह हजार सुवर्णमुद्राओं में अपने निवासगृह को गहना रखना पड़ा। जब यह भी द्रव्य वसन्तमाला के घर में पहुँच गया तब चारुदत्त की माता ने पुत्रवधू के रखे हुए आभूषणों को लेकर वसन्तमाला के यहाँ भेजा। उन्हें वसन्तमाला ने फिर से भेज दिया- वापिस कर दिया। तत्पश्चात् उसने पुत्री से कहा कि अब चारुदत्त का धन समाप्त हो चुका है, अतः इसको छोड़कर तू किसी दूसरे धनी पुरुष से अनुराग कर। कारण कि वेश्या का सिद्धान्त इसी प्रकार का है। कहा भी है-

वेश्यायें धन का अनुभव किया करती हैं, वे धन से हीन पुरुष का उपभोग कभी भी नहीं करती हैं। धन से रहित हुआ पुरुष साक्षात् कामदेव के समान भी क्यों न हो, परन्तु उसके विषय में वेश्यायें अनुराग नहीं किया करती हैं।।1 ।।

माता के इन वाक्यों को सुनकर उसने कहा कि इस जन्म में

मेरा यही पति है, अन्य सब पुरुष मेरे लिये पुत्र व छोटे भाइयों के समान हैं। अब वह माता के दुष्ट अभिप्राय को जानकर चारुदत्त को कभी भी नहीं छोड़ती थी। एक दिन वसन्तमाला वेश्या ने उन दोनों के लिये नींद को बढ़ाने वाली औषधि से संयुक्त भोजन दिया। उसे खाकर वे दोनों सो गए। तब वसन्तमाला ने आधी रात में चारुदत्त को वस्त्राभूषणों से रहित करके कम्बल में लपेटा और पाखाने में फिकवा दिया। वहाँ विष्ठाभक्षी शूकर का स्पर्श होने पर चारुदत्त बोला कि हे वसन्ततिलके! दूर हो, मुझे अभी नींद आ रही है। इस प्रकार बड़बड़ाते हुए देखकर कोतवालों ने 'तुम कौन हो' यह पूछते हुए उसे पाखाने से बाहर निकाला। तत्पश्चात् उन लोगों ने उसकी इस परिस्थिति को जानकर बहुत निन्दा की। तब चारुदत्त अपने घर को गया। जब उसे द्वारपालों ने उस घर से निकल जाने को कहा तब वह बोला कि क्या यह मेरा घर नहीं है? उत्तर में उन लोगों ने कहा कि यह घर गहने रखा हुआ है। तब उसने पूछा कि तो मेरी माता कहाँ पर रहती है? इस प्रकार उनसे माता के रहने के स्थान को ज्ञातकर वह वहाँ गया। उसकी इस दयनीय अवस्था को देखकर माता और पत्नी को बहुत दुःख हुआ। तत्पश्चात् स्नान आदि कर लेने पर चारुदत्त के मामा ने उससे कहा कि मेरे पास सोलह करोड़ प्रमाण द्रव्य है, उसको लेकर तू व्यवहार (व्यापार) कर। इसके उत्तर में वह 'मैं देशान्तर में जाकर व्यवसाय करूँगा।' यह कहते हुए देशान्तर को चला गया। तब मोहवश सिद्धार्थ भी उसके साथ गया। इस प्रकार जाते हुए उन दोनों ने अलका देशस्थ सीमावती नदी के किनारे से लकड़ियों के गट्ठों को लिया और उन्हें स्वयं ही सिर के ऊपर रखकर कंजक नामक नायक के साथ आगे गये। मार्ग में भीलों ने उनके बैलों को छीनकर कपास को जला दिया। तत्पश्चात् उन दोनों ने मलय पर्वत के ऊपर पहुँचकर रत्नों को प्राप्त किया। आते समय भीलों ने उनके इन रत्नों को भी छीन लिया। फिर वे प्रियंगुवेला पत्तन को गये। वहाँ से उन्हें भानुदत्त (चारुदत्त का पिता) का मित्र सुरेन्द्रदत्त द्वीपान्तर में ले गया। वहाँ से बारह वर्षों में जब वे बहुत-से

1. यह कथन किन्हीं-किन्हीं शास्त्रों में नहीं है।

धन के साथ वापिस आ रहे थे तब मार्ग में उनका जहाज नष्ट हो गया। तब चारूदत्त और सिद्धार्थ दोनों लकड़ी के पटिये का सहारा लेकर समुद्र से बाहर निकले। तत्पश्चात् सिद्धार्थ को चारूदत्त का पता न लगने से वह अपने नगर को वापिस चला गया। इधर जब चारूदत्त उदुम्बरावती गाँव में पहुँचा तब उसे सिद्धार्थ का वृत्तान्त मालूम हुआ।

तत्पश्चात् चारूदत्त सिन्धु देश के अन्तर्गत संवरिग्राम में गया। वहाँ उसके पिता का जो अठारह करोड़ प्रमाण द्रव्य स्थित था उसे लेकर उसने जीर्णोद्धार और पूजा आदि के निमित्त अर्पित कर दिया। उसके दानगुण को सुनकर वीरप्रभ यक्ष परीक्षा करने के लिये मनुष्य के वेष में आया और करुण क्रन्दन करते हुए जिनालय में स्थित हो गया। उस समय चारूदत्त वहाँ देवदर्शन के लिये आया था। उसने उससे पूछा कि "तुम क्यों रो रहे हो?" उसने उत्तर दिया कि मुझे शूल की पीड़ा बहुत हो रही है। उसे दूर करने के लिये मनुष्य के पार्श्वभाग से सेक करना पड़ता है। परन्तु वह दुर्लभ है। तुम महादानी हो, मेरे लिये उसका दान करो। यह कहने पर चारूदत्त ने छुरी से काटकर अपना पार्श्वभाग उसे दे दिया।[1] यह देखकर यक्ष को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने चारूदत्त की पूजा करके उसके घाव को भी ठीक कर दिया। तत्पश्चात् चारूदत्त घूमता हुआ राजगृह नगर में पहुँचा। वहाँ विष्णुदत्त नाम के किसी एक दण्डी तपस्वी ने उससे कहा कि यहाँ से कुछ दूर एक रस का कुआँ है। उसमें से यदि रस को निकाला जाय तो बहुत-सा द्रव्य प्राप्त हो सकता है। तब चारूदत्त ने उससे कहा कि रस को खींचकर दिखलाओं। इस पर तपस्वी ने उसके किनारे पर काष्टशूल (मचान) को आहत किया। फिर उसको रस्सी से बाँधकर और उस पर चारूदत्त को बैठाकर उसके हाथ में तूँबड़ी को देते हुए उसे रसकूप के भीतर नीचे उतारा। चारूदत्त जब उस रसतूँबड़ी को रस्सी में बाँध रहा था तब किसी अज्ञात मुनष्य ने उससे कहा कि वह तपस्वी निकृष्ट है, इसने मुझे यहाँ फेंक दिया और तुम्हें भी फेंक देगा। चारूदत्त ने उससे पूछा कि तुम कौन हो? उत्तर में उसने कहा कि मैं उज्जयिनी का एक निर्धन वैश्यपुत्र हूँ। इस तपस्वी ने रस को लेकर मुझे यहाँ पटक दिया। रस से मेरा शरीर अधजला हो गया। अब मैं मरना ही चाहता हूँ। यह सुनकर चारूदत्त ने पहले

रसतूँबी को रस्सी में बाँधा ओर तत्पश्चात् दूसरी बार उसमें पत्थर को बाँधा। तब तपस्वी ने कुछ दूर उस रस्सी को खींचकर बीच में ही काट डाला। फिर चारूदत्त ने उस वैश्य से पूछा कि इसमें से मेरे बाहर निकलने को कोई उपाय है क्या? तब वैश्य ने बतलाया कि यहाँ एक गोह रस पीने के लिये आती है, तुम उसकी पूँछ को पकड़कर निकल जाना। यह सुनकर चारूदत्त को बहुत हर्ष हुआ। उसने उस मरणोन्मुख वैश्य को पंचनमस्कार मंत्र दिया। तत्पश्चात् वह उस गोह की पूँछ को पकड़कर बाहर आ रहा था, परन्तु आगे चलकर मार्ग संकुचित हो गया था। तब वह गोह की पूंछ को छोड़कर एकत्वादि भावनाओं का चिन्तन करता हुआ मध्य में ही स्थित रह गया, उस समय वहाँ कुछ बकरियाँ चर रही थीं। उनमें से एक बकरी का पैर उस बिल के भीतर घुस गया। चारूदत्त ने उसे पकड़ लिया। तब बकरी के कोलाहल को सुनकर उसके रक्षक आये और वहाँ की जमीन खोदने लगे। इस समय चारूदत्त ने उनसे धीरे खोदने के लिए कहा। इसे सुनकर उन लोगों को आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने धीरे से खोदकर चारूदत्त को बाहर निकाला। तत्पश्चात् वन के भीतर से जाता हुआ वह चारूदत्त एक अजगर को लाँघ कर चला गया। इस बीच में दो जंगली भैंसा उसको मारने के लिये आये। तब वह एक वृक्ष के ऊपर चढ़ गया। फिर उस पर से उतरकर वह नदी के किनारे से आगे जा रहा था कि उसे अंगदेश से आये हुए चाचा रूद्रदत्त और हरिशिख आदि मित्र मिल गये।

वहाँ से वे सातों श्रीपुर में गये। वहाँ प्रियदत्त ने उन्हें स्नानादि के द्वारा प्रसन्न करके मार्ग के लिए पाथेय (नाश्ता) भी दिया। उन लोगों ने उसके द्रव्य से कांच की चूड़ियों को लेकर उन्हें गान्धार देश में बेच दिया। वहाँ पर किसी ने रूद्रदत्त को यह उपदेश दिया- तुम लोग बकरों पर सवार होकर अजामार्ग से (बकरे जाने योग्य संकुचित मार्ग से) आगे के पर्वत शिखर पर जाओ। वहाँ पर चमड़े की मसकें बनाकर उनके भीतर स्थित होते हुए मुँह को सी देना। उनको भेरूण्ड पक्षी मांस के ढेर समझकर खाने के लिए रत्नद्वीप में ले जावेंगे। वे जैसे ही उन्हें भूमि के ऊपर रक्खें वेसे ही छुरी से काटकर तुम सब उनके भीतर से बाहर निकल आना। इस प्रकार से रत्नद्वीप में पहुँच करके तुम सब वहाँ से

रत्नों को प्राप्त कर सकोगे। इस उपदेश के अनुसार वे बकरों को ले करके अजामार्ग में पहुँचे। वहाँ चारूदत्त ने रूद्रदत्त आदि से कहा कि आप लोग यहीं पर बैठें, मैं आगे के मार्ग को देखकर वापिस आता हूँ। यह कहकर चारूदत्त चार अंगुलमात्र विस्तृत एवं दोनों पार्श्वभागों में पाताल तक टूटे हुए मार्ग से जाकर वापिस आ ही रहा था कि रूद्रदत्तादि भी 'चारूदत्त को इतनी देर क्यों हुई' यह सोचकर उसी मार्ग से आगे चल दिये, उनका मिलाप चारूदत्त से मार्ग के मध्य में हुआ। तब चारूदत्त ने कहा कि आप लोगों ने यह योग्य नहीं किया है, इस समय यदि मैं वापिस होता हूँ तो मेरा पतन निश्चित है और यदि आप लोग वापिस होते हैं तो आपका पतन निश्चित है। अब क्या किया जाय? तब उन लोगों ने चारूदत्त से कहा कि हम लोग पुण्यहीन हैं, अत एव यदि हम मर जाते हैं तो हानि नहीं है। किन्तु तुम पुण्यात्मा हो। अतः तुम चिरंजीवी होओ। यह सुनकर चारूदत्त बोला कि मेरे एक के मरने से कितनी हानि हो सकती है? कुछ भी नहीं। अत एव आप लोग आगे जावें। यह कहकर चारूदत्त ने पाँव की अँगुलियों को भूमि में स्थिर स्थापित करके बलपूर्वक अपने बकरे को लौटाया। फिर उसके ऊपर चढ़कर वह पर्वत के ऊपर पहुँच गया। पश्चात् रूद्रदत्त आदि भी उस पर्वत के ऊपर पहुँच गये। उन सबने बकरों को वहीं पर बाँध दिया। उस समय चारूदत्त वहाँ एक वृक्ष के नीचे सो गया। इस बीच रूद्रदत्त ने छह बकरों को मार डाला। तत्पश्चात् वह चारूदत्त के बकरे को मार ही रहा था कि इतने में चारूदत्त जाग उठा। उसने इस दृश्य को देखकर रूद्रदत्त की बहुत निन्दा की। तत्पश्चात् उसने उसे पंचनमस्कारमन्त्र दिया।

फिर वे सब मसकों के भीतर प्रविष्ट होकर स्थित हो गये। इतने में भेरूण्ड पक्षी आये और उन मसकों को लेकर उड़ गये। चारूदत्त को लेकर जो भेरूण्ड पक्षी उड़ा था, वह एकाक्ष (काना) था। अन्य पक्षियों के द्वारा पीड़ा पहुँचाने पर उसकी चोंच से चारूदत्त की भस्त्रा समुद्र में जा गिरी। तब उसने अन्य पक्षियों को भगाकर उसको फिर से उठा लिया। इस क्रम से वह चौथी बार में उसे लेकर रत्नद्वीप के भीतर स्थित रत्नपर्वत के शिखर पर पहुँच गया। जैसे ही वह उसे वहाँ रखकर खाने

के लिए उद्यत हुआ, वैसे ही चारूदत्त उसे फाड़कर बाहर निकल आया। अन्य पक्षी उन भस्त्राओं को लेकर दूसरे स्थान में गये। चारूदत्त ने घूमते हुए एक गुफा में विराजमान मुनिराज को देखकर उनकी वंदना की। धर्मवृद्धि देने के पश्चात् मुनिराज बोले कि हे चारूदत्त, कुशल तो है। इससे चारूदत्त को आश्चर्य हुआ। उसने मुनिराज से पूछा कि भगवन्! आपने मुझे कहाँ देखा है? उत्तर में मुनिराज बोले कि मैं वही अमितगति विद्याधर हूँ जिसको तुमने छुड़ाया था। उस समय मैंने धूमसिंह से अपनी पत्नी को छुड़ाकर बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार से मुनिराज ने चारूदत्त को अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाया। इस बीच में वहाँ उनके सिंहग्रीव और वराहग्रीव नाम के दो पुत्र विमान से मुनिराज की वंदना करने के लिए आये। वंदना करने के पश्चात् वे बैठ ही रहे थे कि मुनिराज ने उनसे चारूदत्त को इच्छाकार करने के लिए कहा। तब इच्छाकार करने के पश्चात् उन्होंने मुनिराज से पूछा कि ये कौन हैं? इस पर मुनिराज ने पूर्व वृत्तान्त को सुनाकर चारूदत्त का परिचय कराया।

इस प्रस्ताव में दो स्वर्गवासी देवों ने आकर पहिले चारूदत्त को और तत्पश्चात् मुनिराज को नमस्कार किया। इस विपरीत क्रम को देखकर सिंहग्रीव ने उनसे मुनि के पूर्व गृहस्थ को नमस्कार करने का कारण पूछा। उत्तर में भूतपूर्व बकरे का जीव, जो देव हुआ था, इस प्रकार से बोला- वाराणसी नगरी में ब्राह्मण सोमशर्मा और सोमिला के भद्रा और सुलसा नाम की दो कन्यायें थीं। उन्हें अपने शास्त्रज्ञान का बहुत अभिमान था। उन दोनों ने कुमार अवस्था में ही संन्यास ले लिया था। उनकी कीर्ति को सुनकर याज्ञवल्क्य नाम का तापस उनसे विवाद करने की इच्छा से वाराणसी पहुँचा। उसने शास्त्रार्थ में सुलसा को जीत लिया। तब वह उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगा। कुछ समय पश्चात् जब उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ तब वे दोनों उसे पीपल के वृक्ष के नीचे रखकर चले गये। तब भद्रा ने उस पुत्र को पिप्पलाद नाम रखकर वृद्धिंगत किया और पढ़ाया भी। एक दिन बालक ने भद्रा से अपने पिप्पलाद नाम के सम्बन्ध में पूछा। तब भद्रा ने उसे पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर वह वहां गया। उसने अपने पिता को वाद में

जीतकर उससे अपना वृत्तान्त कह सुनाया। उस समय मैं उस पिप्पलाद का वाम्बली नाम का शिष्य था। मैं शास्त्रार्थ में गुरू के कहे हुए शास्त्रों का समर्थन किया करता था। इस प्रकार रौद्रध्यान से मरकर मैं नरक में पहुँचा। फिर वहाँ से निकलकर मैं छः बार बकरा हुआ और यज्ञ में ही मारा गया। सातवीं बार मैं टक्क देश में बकरा हुआ और चारूदत्त के द्वारा दिये गये पचंनमस्कारमन्त्र के प्रभाव से फिर सौधर्म स्वर्ग में देव उत्पन्न हुआ हूँ।

दूसरा देव भी बोला कि मैं रसकूप के मध्य में पड़कर जब मरणासन्न था तब चारूदत्त ने मुझे पंचनमस्कारमन्त्र दिया था। उसके प्रभाव से मैं भी उसी सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ हूँ। इस प्रकार से हम दोनों का ही यह गुरू है। इसीलिए हम दोनों ने इसके द्वारा किये गये उस महान् उपकार के स्मरणार्थ पहिले उन्हें नमस्कार किया है। कहा भी है-

जो जीव एक अक्षर, आधे पद अथवा पूरे एक पद के प्रदान करने वाले गुरू को भूल जाता है- उसके उपकार को नहीं मानता है- वह पापी है। फिर भला जो धर्मोपदेशक गुरू को भूलता है उसके विषय में क्या कहा जाय? वह तो अतिशय पापी होगा ही।।2।।

तत्पश्चात् वे दोनों देव चारूदत्त की आज्ञा से रूद्रदत्त आदि को ले आये। फिर उन दोनों ने कहा कि जितना द्रव्य आपको अभीष्ट हो उतना द्रव्य हम दे देंगे। चलिये हम लोग चम्पापुर चलें। तब सिंहग्रीव उन दोनों देवों को रोककर चारूदत्त को अपने पुर में ले गया। वहाँ उसने अनेक विद्याओं को सिद्ध करके बत्तीस विद्याधर कन्याओं के साथ विवाह किया। तत्पश्चात् सिंहग्रीव ने चारूदत्त से कहा कि मेरे गन्धर्व सेना नाम की एक पुत्री है। उसने यह प्रतिज्ञा की है कि जो पुरूष मुझे बीणा बजाने में जीत लेगा, वह मेरा पति होगा। अत एव आप इसे अपने नगर में ले जाकर जो राजा वीणा वादन में प्रवीण हो उसे दे दें। यह कहकर सिंहग्रीव ने उसे चारूदत्त के लिए समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् चारूदत्त बहुत द्रव्य को लेकर सिंहग्रीवादि विद्याधरों, अपनी पत्नियों और रूद्रदत्तादिकों के साथ अपने नगर में वापिस आया। तब उसने अपने निवास भवन को, जो कि गहने रखा हुआ था, छुड़ा लिया। वसन्तमाला

वेश्या की पुत्री वसन्ततिलका, जिसने यह प्रतिज्ञा ले रक्खी थी कि जो अवस्था चारूदत्त की होगी वही अवस्था मेरी भी होगी, उसे भी चारूदत्त ने अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। इस प्रकार चारूदत्त ने बहुत समय तक विषय सुख का अनुभव किया। तत्पश्चात् उसने किसी निमित्त को पाकर बहुतों के साथ जिन दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वह संन्यासपूर्वक शरीर को छोड़कर सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त हुआ। इसप्रकार जब पंचनमस्कार मन्त्र के प्रभाव से मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यञ्च भी स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। तब भला सम्यग्दृष्टि मनुष्य के विषय में क्या कहा जाय? उसे तो स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त होगा ही।।4।।

14. सर्प-सर्पिणीचर धरणेन्द्र-पद्मावती कथा

फणी सभार्यो भुवि दग्धविग्रहः प्रबोधितोऽभूद्धरणः सरामकः।
स पञ्चभिः पार्श्वजिनेशिनां पदैः ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः॥14॥

जिस सर्प का शरीर सर्पिणी के साथ अग्नि में जल चुका था वह पार्श्व जिनेन्द्र के द्वारा दिये गये पंचनमस्कार मन्त्र के पदों के प्रभाव से प्रबोध को प्राप्त होकर उस सर्पिणी (पद्मावती) के साथ धरणेन्द्र हुआ। इसीलिए हम उन पंचनमस्कार मन्त्र के पदों में अधिष्ठित होते हैं।।14।।

14. इसकी कथा इस प्रकार है- वाराणसी नगरी में राजा अश्वसेन राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम ब्रह्मदत्ता था। इन दोनों के पार्श्वनाथ नामक तीर्थंकर कुमार पुत्र उत्पन्न हुआ। वह किसी समय हाथी के ऊपर चढ़कर घूमने के लिए नगर के बाहर गया था। वहाँ एक स्थान पर कोई तापस पंचाग्नि तप कर रहा था। उसको देखकर किसी सेवक ने भगवान् पार्श्वनाथ से कहा कि हे देव! यह तापस विशिष्ट तप कर रहा है। इसे सुनकर तीर्थंकर कुमार ने कहा कि अज्ञानियों का तप संसार का ही कारण होता है। कुमार के इस कथन को सुनकर जन्मान्तर के बैर से तापस का हृदय क्रोधरूप अग्नि से उद्दीप्त हो उठा। वह बोला कि हे कुमार! मैं अज्ञानी कैसे हूँ? तब कुमार ने हाथी के ऊपर से उतर कर और उसके पास जाकर उससे फिर से कहा कि यदि तुम ज्ञानवान् हो तो यह बतलाओ कि इस जलती हुई लकड़ी के भीतर

क्या है? इस पर तापस ने कहा कि इसके भीतर कुछ भी नहीं है। तब पार्श्व कुमार ने उससे उस लकड़ी को फाड़ने (चीरने) के लिए कहा। तदनुसार तापस ने उस लकड़ी को फाड़ (चीर) भी डाला। उसके भीतर अधजला होकर मरणोन्मुख हुआ एक सर्पयुगल स्थित था। तब पार्श्व तीर्थंकर कुमार ने उक्त युगल के लिए पंचनमस्कार पदों को दिया। उसके प्रभाव से वे दोनों धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। फिर वह तापस जन्मान्तर के वैर से क्रोधयुक्त होकर पुनः उसी प्रकार से तप करने में लग गया, ऐसा कहा गया।

उन दोनों में विरोध कैसे हुआ, ऐसा भव्य के द्वारा पूछे जाने पर स्मरण के अनुसार कहता हूँ- इस भरत क्षेत्र के भीतर सुरम्य देश में पोदनपुर नाम का नगर है। वहाँ अरविन्द नामक राजा राज्य करता था। इसकी पत्नी का नाम लक्ष्मीमती था। उक्त राजा का मंत्री विश्वभूति नाम का एक ब्राह्मण था। इसकी पत्नी का नाम अनुन्धरी था। इनके कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र थे। इनमें बड़ा पुत्र अयोग्य तथा दूसरा योग्य था। छोटे पुत्र के योग्य होने से ही पिता ने उसका विवाह वसुन्धरी नाम की एक कन्या के साथ करा दिया। विश्वभूति ने एक दिन अपने शिर के ऊपर श्वेत बाल को देखा। इससे उसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उसने मरुभूति को राजा के लिए समर्पित करके उसे अपने पद (मन्त्री) के ऊपर प्रतिष्ठित कराया और स्वयं जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। मरुभूति अपने सद्व्यवहार के कारण राजा का अतिशय प्रिय हो गया। एक समय राजा ने वज्रवीर्य राजा के ऊपर चढ़ाई की। इधर कमठ निरंकुश होता हुआ, राजसिंहासन के ऊपर बैठ गया। वह अपने को राजा मानकर अयोग्य आचरण करने लगा। एक दिन वह अपने अनुज की पत्नी वसुन्धरी को देखकर कामबाण से पीड़ित होता हुआ वन में लतागृह के भीतर स्थित हुआ। कमठ का एक कलहंस नाम का मित्र था। उसने उसकी इस दुरवस्था को देखकर उसका कारण पूछा। तब कमठ ने उससे अपने मन की बात कह दी। तब उसके मनोगत भाव को जानकर कलहंस वसुन्धरी के पास गया और उससे बोला कि हे वसुन्धरी वन में कमठ का महान् अनिष्ट हो रहा है। यह सुनकर और अनिष्ट के रहस्य को न जानकर वसुन्धरी वहाँ चली गई। तब कमठ

ने उसे अपने वचनों की चतुराई से भीतर बुलाकर उसके साथ विषयसेवन किया। इधर राजा अरविन्द वज्रवीर्य को जीतकर जब वापिस आया तब उसे कमठ के उक्त असदाचरण का समाचार ज्ञात हुआ। साथ ही मरुभूति को भी उसके उस निन्द्य आचरण का पता लग गया। तब राजा ने मरुभूति से पूछा कि कमठ इस प्रकार के अन्याय में प्रवृत्त हो रहा है, उसके सम्बन्ध में क्या किया जाय? इस पर मरुभूति ने भ्रातृमोह के वशीभूत होकर उत्तर दिया कि हे देव! कमठ क्या कभी ऐसा कर सकता है? दुष्ट के वचन को ग्रहण न करें। यह सुनकर राजा बोला कि कमठ का अपराध निश्चित है, मैं उसके लिए दण्ड दूंगा, इसके लिए तुम्हें खिन्न न होना चाहिए। इस प्रकार से सम्बोधित करके राजा ने मरुभूति को घर भेज दिया और फिर कमठ के अपराध को निश्चित करके उसे गर्दभारोहरण आदि कराया तथा अपने राज्य से निर्वासित कर दिया। तब कमठ भूताचल पर्वत के ऊपर गया और वहाँ तापस होकर शिलोद्धरण (शिला को उठाकर) तप के करने में प्रवृत्त हो गया। उस समय मरुभूति उसको दण्डित किये जाने के कारण अतिशय दुःखी हुआ। उसे जब कमठ का समाचार मिला तब उसने राजा से प्रार्थना की कि हे देव! कमठ तपश्चरण कर रहा है, मैं जाता हूँ और उससे मिलकर वापिस आता हूँ। तब राजा ने उससे पूछा कि वह किस प्रकार का तप कर रहा है? उत्तर में मरुभूति ने कहा कि वह भौतिक रूप (भूति को लगाकर किया जाने वाला) तप को कर रहा है। तब तुम उसके पास मत जाओ, इस प्रकार राजा के रोकने पर भी मरुभूति उसके पास अकेला चला गया। वहाँ कमठ को देखकर मरुभूति ने कहा कि हे पूज्य! मेरे रोकने पर भी राजा ने जो कुछ किया है उस सबके लिए क्षमा कीजिये। यह कहता हुआ वह उसके चरणों में गिर गया। फिर भी कमठ ने यह कहते हुए कि वह सब तूने ही किया है, उसके मस्तक पर शिला को पटककर उसे मार डाला। वह इस प्रकार से मरकर कूर्च नामक सल्लकी वन में वज्रघोष नाम का विशाल हाथी हुआ। उधर जब कमठ ने शिला पटककर अपने भाई को मार डाला तब दूसरे तापसों ने उसे आश्रम से निकाल दिया। फिर वह भीलों के साथ मिलकर चोरी करने लगा। तब ग्रामीण जनों ने उसे मार डाला। वह इस प्रकार से मरकर

उसी वन में कुक्कुट सर्प हुआ। उधर मरुभूति जब वापिस नहीं आया तब राजा अरविन्द ने किसी समय अवधिज्ञानी मुनिराज से पूछा कि मंत्री मरुभूति क्यों नहीं आया। उत्तर में मुनिराज ने जो उसके मरने का वृत्तान्त कहा उसे सुनकर राजा नगर में वापिस आ गया। तत्पश्चात् उसने कुछ समय और भी राज्य किया एक समय वह देखते-देखते ही नष्ट हुए मेघ को देखकर दीक्षित हो गया। वह समस्त श्रुत का पारगामी हुआ। किसी समय वह पूर्वोक्त कूर्चक वन में वेगवती नदी के किनारे एक शिला के ऊपर ध्यानस्थ बैठा था। उस नदी के किनारे पर सुगुप्त और गुप्त नाम के दो व्यापारियों के स्वामी पड़ाव डालकर स्थित थे। वे दोनों जब मुनिराज के समीप में धर्मश्रवण कर रहे थे तब वह हाथी उनके शिविर को नष्ट करके मुनीन्द्र के सम्मुख आया। उनको देखकर उसे जातिस्मरण हो गया। तब उसने उन्हें नमस्कार किया। फिर उसने मुनिराज के द्वारा दिये गये श्रावक के समस्त व्रतों को धारण किया। इन व्रतों का पालन करते हुए कायक्लेश के कारण उसका शरीर कृश हो गया था। एक दिन वह पानी पीकर बहुत-से हाथियों के चले जाने पर उनके द्वारा विलोडित (प्रासुक) पानी को पीने के लिए वेगवती नदी के भीतर प्रविष्ट हुआ। वहाँ वह कीचड़ में फँस गया। इसी बीच में वह कुक्कुट सर्प वहाँ आया और उसे देखकर काट लिया। तब वह मरकर सहस्रार स्वर्ग के अन्तर्गत स्वयंप्रभ विमान में शशिप्रभ नाम का महर्द्धिक देव हुआ। वह कुक्कुट सर्प परम्परा से धूमप्रभा पृथिवी (पाँचवें नरक) में गया।

वह देव स्वर्ग से च्युत होकर यहीं पर पुष्कलावती देश के अन्तर्गत विजयार्ध पर्वतस्थ त्रिलोकोत्तम पुर के स्वामी विद्युन्मति और विद्युन्माला के सहस्ररश्मि नाम का पुत्र हुआ। उसने कुमार अवस्था में ही समाधिगुप्त मुनिराज के निकट दीक्षा ले ली थी। वह आगम का ज्ञाता होकर किसी समय हिमालय पर्वत के ऊपर ध्यान में स्थित था। उधर वह कुक्कुट सर्प का जीव धूमप्रभा पृथ्वी से निकलकर उसी पर्वत के ऊपर अजगर हुआ था। उससे भक्षित होकर वे मुनिराज अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर जम्बूद्वीप अपर विदेह में पद्मा देश के अन्तर्गत अश्वपुर के अधीश्वर वज्रवीर्य और विजया के वज्रनाभ नाम का पुत्र हुआ। वह

क्रमशः राज्य पद पर प्रतिष्ठित होकर चक्रवर्ती हुआ। पश्चात् समयानुसार उसने क्षेमंकर मुनिराज के समीप में दीक्षा धारण कर ली। इधर तमःप्रभा पृथ्वी से निकल कर वह अजगर का जीव वन में कुरंग नामक भील हुआ था। उसने शिकार के निमित्त घूमते हुए उन ध्यानस्थ वज्रनाभ मुनिराज को विद्ध किया- वाण से आहत किया। इस प्रकार समाधि से मरण को प्राप्त होकर वे मुनिराज मंध्यम ग्रैवेयक के अन्तर्गत सुभद्र विमान में उत्पन्न हुए। और वह भील सातवीं पृथ्वी में जाकर नारकी हुआ। अहमिन्द्र देव ग्रैवेयक विमान से च्युत होकर अयोध्यापुरी में वज्रबाहु और प्रभंकरी के आनन्द नाम का पुत्र हुआ। वह महामण्डलेश्वर की लक्ष्मी को भोगकर सागरदत्त मुनिराज के पास में दीक्षित हो गया। उसने दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तन करके तीर्थंकर प्रकृति को बाँध लिया। वह एक दिन क्षीरवन के भीतर प्रतिमायोग को धारण करके स्थित था। उधर वह भूतपूर्व भील का जीव नरक से निकलकर उसी वन में सिंह हुआ था। उसने उन मुनिराज को मार डाला। इस प्रकार से शरीर को छोड़कर वे मुनिराज लान्तव स्वर्ग में इन्द्र हुए। और वह सिंह मरकर धूमप्रभा पृथ्वी में नारकी हुआ। लान्तवेन्द्र गर्भावतरण कल्याणमहोत्सवपूर्वक वैशाख कृष्णा द्वितीया के दिन ब्रह्मदत्ता के गर्भ में स्थित हुआ। उसने पौष कृष्णा एकादशी के दिन पार्श्वनाथ तीर्थंकर के रूप में जन्म लिया। पार्श्वनाथ के शरीर का वर्ण प्रियंगु पुष्प के समान श्याम और ऊँचाई उनकी नौ हाथ थी। उनकी आयु सौ वर्ष की थी। तीस वर्ष प्रमाण कुमार काल के बीत जाने पर पिता उसके विवाह के लिए पाँच सौ कन्याओं को लाये। उन कन्याओं को देखकर वे पौष कृष्णा एकादशी के दिन वैराग्य को प्राप्त हुए। तब वे विमला नाम की पालकी पर चढ़कर नगर के बाहर गये। उन्होंने अश्व वन में पहुँचकर एक हजार राजाओं के साथ तीन उपवासपूर्वक दीक्षा ग्रहण कर ली। तीन उपवास के पश्चात् वे आहार के निमित्त किसी राजा के भवन में प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने खीर का आहार लेकर पारणा की। एक समय चातुर्मासिक तप को करके वे भगवान् उसी वन में देवदारु वृक्ष के नीचे एक शिला के ऊपर ध्यानस्थ होते हुए विराजमान थे। उधर वह सिंह का जीव नरक से निकलकर परिभ्रमण करता हुआ महीपालपुर के राजा

नृपाल का पुत्र और ब्रह्मदत्ता (भगवान् की माता) का भाई हुआ था। उसका नाम महीपाल था। यह जब राजा के पद पर स्थित था तब उसकी प्रिय पत्नी का वियोग हो गया। इस इष्टवियोग को न सह सकने के कारण वह तापस हो गया था। इसी ने उस सर्पयुगल को पंचाग्नि तप करते हुए दग्ध किया था। वह मरकर संवर नाम का ज्योतिषी देव हुआ था। उसने जब भगवान् पार्श्वनाथ को वहाँ ध्यानस्थ देखा तब पूर्व वैर का स्मरण करके उनके ऊपर भयानक उपसर्ग किया। उस समय आसन के कम्पित होने से धरणेन्द्र और पद्मावती वहाँ आ पहुँचे। तब धरणेन्द्र ने मुनिराज के ऊपर अपने फण को मण्डप के समान कर लिया और पद्मावती ने उस फणरूप मण्डप के ऊपर छत्र को धारण किया। इस प्रकार से वे मुनीन्द्र संवर देव के द्वारा किये गये उस उपसर्ग को जीतकर चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन केवलज्ञान को प्राप्त हुए। पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के समवशरण की विभूति को देखकर पाँच सौ तापस जैन धर्म में दीक्षित हो गये। स्वयं उस संवर ज्योतिषी ने सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर लिया था। तथा बहुत से क्षत्रिय (राजा) श्रावक और मुनि हो गये। पिता अश्वसेन आदि ने भगवान् की पूजा करके वंदना की। पार्श्वनाथ जिनेन्द्र श्रीघर आदि दस (10) गणधरों, पाँच सौ साठ (560) पूर्वधरों, नौ हजार नौ सौ (9900) शिक्षकों, पाँच हजार चार सौ (5400) अवधिज्ञानियों, एक हजार (1000) केवलियों, उतने (1000) ही विक्रियाऋद्धिधारकों, सात सौ पचास (750) मनःपर्ययज्ञानियों, छह सौ (600) वादियों, सुलोचना आदि पैंतीस हजार (35000) आर्यिकाओं, एक लाख (100000) श्रावकजनों, तीन लाख (300000) श्राविकाओं तथा असंख्यात करोड़ देव-देवियों व तिर्यंचों के साथ चार मास कम सत्तर वर्ष तक विहार किया। तत्पश्चात् सम्मेद शिखर पर चढ़कर एक मास प्रमाण आयु के शेष रह जाने पर उन्होंने योगनिरोध किया और फिर शुक्लध्यान का आश्रय लेकर श्रावणशुक्ला सप्तमी के दिन मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार से जब क्रूर स्वभाव वाले सर्प और सर्पिणी ने भी उस पंचनमस्कार मंत्र के माहात्म्य से देवगति को प्राप्त कर लिया तब भला सम्यग्दृष्टि जीव का क्या पूछना है? वह तो स्वर्ग-मोक्ष को प्राप्त करेगा ही।।14।।

15. भूतपूर्व हस्तिनी सीता कथा

प्रपङ्कमग्ना करिणी सुदुःखिता वियच्चरासादितपञ्चसत्पदा।
भवान्तरे सा भवति स्म जानकी ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः॥15॥

जो हथिनी अतिशय गहरे कीचड़ में फँसकर अत्यन्त दुखित थी वह विद्याधर द्वारा दिये गये पंचनमस्कार मंत्र के पदों के प्रभाव से भवान्तर में राजा जनक की पुत्री सीता हुई। इसीलिए हम उन पंचनमस्कार पदों में अधिष्ठित होते हैं।।15।।

15. इसकी कथा इस प्रकार है- इस भरतक्षेत्र के अन्तर्गत यक्षपुर में श्रीकान्त नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम मनोहरी था। इसी नगर में एक सागरदत्त नाम का वैश्य था। उसकी पत्नी का नाम रत्नप्रभा था। इन दोनों के गुणवती नाम की एक पुत्री थी। उसी नगर में नयदत्त नाम का एक दूसरा भी वैश्य रहता था। इसकी पत्नी का नाम नन्दना था। इनके धनदत्त और वसुदत्त नाम के दो पुत्र थे। वह गुणवती इस धनदत्त के लिये दी जाने वाली थी। परन्तु राजा ने आज्ञा दी कि वह मेरे लिए ही दी जाय। एक दिन राजा जब श्रीकान्त वन में क्रीड़ार्थ गया था, वसुदत्त ने उसे मार डाला। इधर श्रीकान्त के सेवकों ने वसुदत्त को भी मार डाला। वे दोनों मरकर हिरण हुए। तब वह धनदत्त देशान्तर को चला गया। इससे वह गुणवती आर्त्त ध्यान से मर कर हिरणी हुई। उसके निमित्त से वे दोनों हिरण परस्पर में लड़कर मरे और वन के शूकर हुए। हरिणी मर कर शूकरी हुई। वे दोनों इसी प्रकार से फिर भी मरण को प्राप्त होकर हाथी हुए और वह शूकरी हथिनी हुई। फिर भी उसी प्रकार से वे दोनों मरकर क्रमशः भैंसा, बंदर, कुरवक (सारस?) और मेंढा इत्यादि पर्यायों को प्राप्त हुए। वह हथिनी भी उस-उस काल में उन्हीं की जाति की स्त्री हुई। फिर वे दोनों उसी प्रकार से मरण को प्राप्त हुए। एक समय वह गुणवती का जीव गंगा के किनारे हथिनी हुआ। वह हथिनी कीचड़ में फंसकर मरणासन्न हो गई। उस समय उसे सुरंग नाम के विद्याधर ने पंच नमस्कार मंत्र

दिया। उसके प्रभाव से वह मृणालपुर के राजा शम्भु के मंत्री श्रीभूति की पत्नी सरस्वती के वेदवती नाम की पुत्री हुई। किसी समय एक मुनिराज चर्या के लिए आये। वेदवती ने उनकी निन्दा की। तब माता पिता ने उसे इस निन्द्य कार्य से रोका। कुछ दिनों के पश्चात् उसे गले का रोग उत्पन्न हुआ। उसे जन-समुदाय ने मुनि निन्दा का फल प्रगट किया। तब उसने व्रतों को ग्रहण कर लिया। राजा शम्भु ने उसे श्रीभूति से अपने लिए मांगा। परन्तु श्रीभूति ने मिथ्यादृष्टि होने के कारण उसके लिए अपनी कन्या नहीं दी। इससे क्रुद्ध होकर राजा ने उसे मार डाला। वह मरकर स्वर्ग को प्राप्त हुआ। इधर वेदवती ने राजा से कहा कि तुमने चूंकि मेरे पिता को मार डाला है, इसीलिए मैं जन्मान्तर में तुम्हारे विनाश का कारण बनूँगी। इस प्रकार से खिन्न होकर उसने तप को स्वीकार कर लिया। उसके प्रभाव से वह स्वर्ग को प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वह इसी भरत क्षेत्र के अन्तर्गत दारूण ग्राम में ब्राह्मण सोमशर्मा और ज्वाला के सरसा नामकी पुत्री हुई। उसका विवाह अतिविभूति के साथ कर दिया गया था। परन्तु वह एक जार (व्यभिचारी) पुरुष के साथ देशान्तर को चली गई। मार्ग में उसने मुनिराज को देखकर उनकी निन्दा की। इस पाप से उसे तिर्यंचगति में परिभ्रमण करना पड़ा। किसी समय वह चन्द्रपुर के स्वामी चन्द्रध्वज और मनस्विनी के चित्रोत्सवा नाम की पुत्री हुई। वह मंत्री के पुत्र कपिल के साथ देशान्तर में चली गई। फिर उसको भी छोड़ करके वह विदग्धपुर के राजा कुण्डलमण्डित की प्रिया हो गई। तत्पश्चात् पूर्वजन्म के संस्कार से उसने श्रावक के व्रतों को ग्रहण कर लिया। अन्त में वह सीता हुई। उसके स्वयंवर आदि का वृत्तान्त पद्मचरित्र से जानना चाहिए। इस प्रकार जब अज्ञान हथिनी भी पंचनमस्कार मंत्र के प्रभाव से उक्त वैभव को प्राप्त हुई है तब फिर दूसरा कौन उसके प्रभाव से वैभवशाली न होगा? सब भी उसके प्रभाव से यथेष्ट वैभव को प्राप्त कर सकते हैं।।15।।

16. दृढ़सूर्य चोर कथा

सुदुःखभाराक्रमितश्च तस्करो जलाशयोच्चारितपञ्चसत्पदः।
तथापि देवोऽजनि भूरिसौख्यक स्ततो वयं पञ्चपदेष्वधिष्ठिताः॥16॥

जो दृढ़सूर्य चोर शूली के दुःसह दुख से अतिशय व्याकुल होकर यद्यपि जलपान की आशा से ही पंच नमस्कार मंत्र के पदों का उच्चारण कर रहा था, फिर भी वह उसके प्रभाव से देव पर्याय को प्राप्त करके अतिशय सुख का भोक्ता हुआ। इसीलिए हम उन पंचनमस्कार मंत्र के पदों में अधिष्ठित होते हैं।।16।।

16. इसकी कथा इस प्रकार है- उज्जयिनी नगरी में राजा धनपाल राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम धनमती था। किसी दिन वसन्तसेना वेश्या ने वसन्तोत्सव के अवसर पर उस रानी के दिव्य हार को देखकर यह विचार किया कि इसके बिना जीना व्यर्थ है। इस प्रकार से दुखी होकर वह घर वापिस पहुँची और शय्या के ऊपर पड़ गई। रात्रि में जब दृढ़सूर्य चोर उसके पास आया तब उसने उसे खिन्न देखकर पूछा कि हे प्रिये! तुम क्या मुझसे रूष्ट हो गई हो? तब उसने कहा कि मैं तुमसे रूष्ट नही हुई हूँ। किन्तु मैं रानी के दिव्य हार को देखकर उसकी प्राप्ति के लिए व्याकुल हो उठी हूँ। यदि तुम उस हार को लाकर मुझे देते हो तो मैं जीवित रह सकती हूँ, अन्यथा नहीं। यह सुनकर दृढ़सूर्य उसे आश्वासन देकर उस हार को चुराने के लिए गया। वह उस हार को चुराकर वापिस आ ही रहा था कि हार के प्रकाश में उसे यमपाल कोतवाल ने देखकर पकड़ लिया। तत्पश्चात् वह राजा की आज्ञानुसार शूली पर चढ़ा दिया गया। वह मरने वाला ही था कि उसे प्रभात समय में वहाँ से चैत्यालय को जाते हुए धनदत्त सेठ दिखा। तब उसने धनदत्त से कहा कि हे दयालु! मैं प्यास से अतिशय पीड़ित हूँ। कृपाकर मुझे जल दीजिए। उसकी उस मरणासन्न अवस्था को देखकर सेठ ने उसके हित की इच्छा से कहा कि मेरे गुरू ने मुझे बारह वर्षो में आज ही एक महामंत्र दिया है। यदि मैं जल लेने के लिए जाता हूँ तो उसे भूल जाऊँगा। हाँ, यदि तुम मेरे वापिस आने तक उसका

उच्चारण करते रहो और तब मुझे कह दो तो मैं जल लेने के लिये जाता हूँ। तब चोर ने कहा कि मैं तब तक उसका उच्चारण करता रहूँगा। तत्पश्चात् सेठ उसे पंचनमस्कार मंत्र के पदों को कहकर चला गया। इध र दृढ़सूर्य उक्त मंत्र के पदों का उच्चारण करते हुए मरण को प्राप्त होकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। उस समय चोर के पास धनदत्त सेठ को कुछ कहते हुए देखकर गुप्तचरों ने राजा से निवेदन किया कि हे देव! धनदत्त सेठ के घर में दृढ़सूर्य चोर के द्वारा चुराया हुआ द्रव्य विद्यमान है। इसीलिए उसने राजपुरूषों को सेठ के पकड़ लाने और उसके घर पर पहरा देने की आज्ञा दी। तब उपर्युक्त देव आकर सेठ के घर की रक्षा करने के लिए दण्डधारी पुरूष (पहरेदार) के वेष को धारण करके उसके घर के द्वार पर स्थित हो गया। उसने राजा के द्वारा भेजे गये उन राजपुरूषों को सेठ के घर के भीतर जाने से रोक दिया। जब वे बलपूर्वक सेठ के घर के भीतर जाने को उद्यत हुए तब उसने उन्हें माया से दण्ड के द्वारा आहत किया। इस वृत्तान्त को सुनकर राजा ने जिन अन्य बहुत से राजपुरूषों को वहाँ भेजा उन्हें भी उसने उसी प्रकार से मार डाला। तब क्रुद्ध होकर राजा स्वयं ही वहाँ बहुत-सी सेना लेकर आ पहुँचा। तब देव ने उसकी समस्त सेना को भी उसी प्रकार से मार गिराया। जब राजा भागने लगा तब देव ने उससे कहा कि यदि तुम सेठ की शरण में जाते हो तो मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ, अन्यथा नहीं। तब राजा जिनमन्दिर में सेठ के पास गया ओर बोला कि हे सेठ! मेरी रक्षा कीजिए। तब सेठ ने उस वेषधारी देव से पूछा कि तुम कौन हो और यह उपद्रव तुमने किस लिए किया? इस पर सेठ को प्रणाम करके देव ने कहा कि मैं वही दृढ़सूर्य चोर हूँ जिसे कि आपने मरते समय पंचनमस्कार मंत्र दिया। मैं आपके प्रसाद से सौधर्म स्वर्ग में महा ऋद्धि का धारक देव हुआ हूँ। मैंने यह सब आपकी रक्षा के निमित्त किया है। इस प्रकार वह चोर भी जब अन्यमनस्क हो करके भी उस मन्त्रोच्चारण के प्रभाव से स्वर्गसुख भोक्ता हुआ है तब अन्य जन विशुद्धिपूर्वक उसका उच्चारण करने से क्यों न स्वर्गादि के सुख को प्राप्त करेंगे? अर्थात् अवश्य प्राप्त करेंगे।।16।।

17. सुभग गोपालवर सुदर्शन सेठ कथा

किमद्भुतं यद्भवतीह मानवः पदैः समस्तैर्गुणसौख्यभाजनम्।
विवेकशून्यः सुभगाख्यगोपकः सुदर्शनोऽभूत्प्रथमाद्धि सत्पदात्॥17॥

यदि मनुष्य यहाँ पंचनमस्कार मंत्र सम्बन्धी समस्त पदों के उच्चारण से गुण एवं सुख का भाजन होता है तो इसमें क्या आश्चर्य है? देखो, जो सुभग नाम का ग्वाला विवेक से रहित था वह भी उक्त मंत्र के केवल एक प्रथम पद (णमो अरिहंताणं) के ही उच्चारण से सुदर्शन सेठ हुआ है।।17।।

17. उसकी कथा इस प्रकार है- इसी भरत क्षेत्र के भीतर अंग देश के अन्तर्गत एक चम्पापुर नगर है। वहाँ धात्रीवाहन नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम अभयमती था। इसी पुर में एक वृषभदास नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम जिनमती था। सेठ के यहाँ एक सुभग नाम का ग्वाला था। एक दिन वह ग्वाला वन से घर के लिए वापिस आ रहा थां वहाँ उसे वन में चौराहे पर एक दिगम्बर मुनि दिखायी दिये। उस समय सूर्य अस्त हो चुका था और समय शीत का था। ऐसे समय में भी वे मुनि ध्यान में स्थित थे। उन्हें देखकर उस ग्वाले ने विचार किया कि ये ऐसे शीतकाल में रात्रि के समय कैसे जीवित रह सकेंगे? यही विचार करता हुआ वह घर गया और वहाँ से लकड़ियों व आग को लेकर मुनिराज के पास फिर से आया। उसने अग्नि को जलाकर उनकी शीतबाधा को दूर किया और स्वयं रात्रि में उन्हीं के पास रहा। प्रातःकाल होने पर जब सूर्य का उदय हुआ तब उन मुनि महाराज ने अपने दोनों हाथों को उठाकर उस आसन्न भव्य की ओर दृष्टिपात किया। उन्होंने उसे निकटभव्य जानकर यह उपदेश दिया कि तुम गमनादि कार्यों में प्रथमतः 'णमो अरिहंताणं' इस मंत्र को बोला करो। तत्पश्चात् वे स्वयं भी 'णमो अरिहंताणं' कहते हुए आकाश मार्ग से चले गये। इस प्रकार से मुनिराज को जाते हुए देखकर उस ग्वाले की उक्त मंत्र वाक्य के ऊपर दृढ़ श्रद्धा हो गई। तब से वह भोजनादि समस्त कार्यों में उक्त मंत्र वाक्य के उच्चारणपूर्वक ही प्रवृत्त

होने लगा। उसकी ऐसी प्रवृत्ति को देखकर एक दिन सेठ ने पूछा कि तू समस्त कार्यों के प्रारम्भ में 'णमो अरिहंताण' क्यों कहता है? तब उसने सेठ से उस पूर्व वृत्तान्त को कह दिया। तब सेठ ने उसकी बहुत प्रशंसा की। वह उसके लिए उत्तम ग्रास आदि (भोजनादि) देने लगा।

एक दिन वन में किसी ने उस ग्वाले से कहा कि तेरी भैंसे गंगा के उस पार चली गई हैं। यह सुनकर वह भैंसों को वापिस ले आने के विचार से गंगा में कूद पड़ा। वहाँ उसका पेट एक पैनी लकड़ी से विध गया। वहाँ उसने 'णमो अरिहंताणं' मंत्र का उच्चारण करते हुए यह निदान किया कि मैं इस मंत्र के प्रभाव से सेठ का पुत्र हो जाऊँ। तदनुसार वह मरकर जिनमती के गर्भ में स्थित हुआ। उस समय जिनमती ने स्वप्न में सुदर्शनमेरू, कल्पवृक्ष, देवभवन, समुद्र और अग्नि को देखा। जब उसने पति से इन स्वप्नों के विषय में कहा तब सेठ ने कहा कि चलो जिनमन्दिर चलकर उनका फल मुनिराज से पूछें। तब वे दोनों जिनमन्दिर गये। वहाँ उन्होंने जिन भगवान् की पूजा और स्तुति करके सुगुप्त मुनिराज की वन्दना की। तत्पश्चात् सेठ ने मुनिराज से उक्त स्वप्नों का फल पूछा। उत्तर में मुनिराज ने कहा कि मेरू के देखने से धीर, कल्पवृक्ष के देखने से सम्पत्तिशाली होकर दानी, देवभवन के दर्शन से देवों के द्वारा वंदनीय, समुद्र के दर्शन से गुणरूप रत्नों की खानि, तथा अग्नि के देखने से कर्मरूप ईंधन को जलाने वाला; ऐसा इस जिनमती के पुत्र होगा। यह सुनकर वे दोनों सन्तुष्ट होकर अपने घर आये और सुखपूर्वक स्थित हुए। तत्पश्चात् पौष शुक्ला चतुर्थी के दिन जिनमती के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। वह पुरोहित पुत्र कपिल के साथ उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होने लगा।

उपर्युक्त नगर में एक सागरदत्त नाम का दूसरा वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम सागरसेना था। उसने वृषभदास सेठ से कहा कि यदि मेरे पुत्री होगी तो मैं उसे सुदर्शन के लिए प्रदान करूँगा। तत्पश्चात् सागरदत्त और सागरसेना के एक मनोरमा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। वह सुन्दर कन्या भी उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगी। एक दिन शास्त्र व शस्त्र विद्या में विशारद युवक सुदर्शन अपनी अत्यधिक सुन्दरता से लोगों के मन को मोहित करता हुआ मित्रादिकों के साथ राजमार्ग से

कहीं जा रहा था। उस समय मनोरमा वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर सखीजनों आदि के साथ जिनमन्दिर को जा रही थी। उसे देखकर सुदर्शन आसक्त हो गया। तब वह लौटकर घर वापिस चला गया और शय्या के ऊपर पड़ गया। उसकी इस अवस्था को देखकर मातापिता ने इसका कारण पूछा परन्तु उसने उसका कुछ उत्तर नहीं दिया। तब उन्होंने कपिल भट्ट से पूछा। उसने इसका कारण मनोरमा का देखना बतलाया। यह सुनकर वृषभदास सेठ मनोरमा को मांगने के लिए सागरदत्त सेठ के घर जाने को उद्यत हो गया। इतने में सागरदत्त सेठ स्वयं ही वृषभदास के घर आ पहुँचा। उसके आने का कारण यह था कि जबसे मनोरमा ने सुदर्शन को देखा था तभी से उसका शरीर सुदर्शन के वियोग से सन्तप्त हो रहा था। वह भी घर वापिस जाकर शय्या पर लेट गई थी। उसकी इस दुरवस्था के कारण को जान करके ही सागरदत्त वहाँ पहुँचा था। उसे अपने घर आया हुआ देखकर सुदर्शन के पिता ने पूछा कि आपका शुभागमन कैसे हुआ? उत्तर में उसने कहा कि आप मेरी पुत्री के साथ अपने पुत्र का विवाह कर दें, यह निवेदन करने के लिए मैं आपके यहाँ आया हूँ। यह सुनकर वृषभदास ने उससे कहा कि यह कार्य तो आपने मेरे अनुकूल ही किया है। तत्पश्चात् उसने श्रीधर नामक ज्योतिषी से विवाह के मुहूर्त को पूछा। उसने विवाह का मुहूर्त बतला दिया। तदनुसार वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन उन दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया। वे दोनों परस्पर में अनुरक्त होकर सुख का अनुभव करने लगे। कुछ समय के पश्चात् उन्हें सुकान्त नामक पुत्र की भी प्राप्ति हुई। एक दिन अनेक देशों में विहार करते हुए समाधिगुप्त नामक महर्षि संघ के साथ जाकर चम्पापुर के बाहर उद्यान में स्थित हुए। ऋषिनिवेदक से इस शुभ समाचार को ज्ञात करके राजा आदि उनकी वंदना करने के लिए गये। उन सबने मुनिराज की वंदना करके उनसें धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् वृषभदास सेठ ने विरक्त होकर अपने पुत्र सुदर्शन को राजा के लिए समर्पित किया और स्वयं जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। जिनमती ने भी पति के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। वे दोनों आयु के अन्त में समाधि के साथ मरकर स्वर्ग को प्राप्त हुए। इधर सुदर्शन ने सुकान्त को अनेक विद्याओं में सुशिक्षित किया। वह अपने सद्व्यवहार

से समस्त जनता का प्रिय बन गया था। इस प्रकार से उसका समय सुखपूर्वक बीत रहा था।

इधर कपिल ब्राह्मण की पत्नी कपिला का चित्त सुदर्शन के अनुपम रूप-लावण्य को सुनकर उसके विषय में आसक्त हो गया था। एक समय कपिल कहीं बाहर गया था। उस समय सुदर्शन उसके घर के पास से कहीं जा रहा था। कपिला ने उसे देखकर जब यह ज्ञात किया कि यह सुदर्शन है तब उसने अपनी सखी से कहा कि किसी भी उपाय से उसे यहाँ ले आओ। तदनुसार वह सुदर्शन के पास जाकर बोली कि हे सुभग! आपके मित्र का महान् अनिष्ट हो रहा है और आप उसकी बात भी नहीं पूछते हैं। तब सुदर्शन ने कहा कि मुझे यह ज्ञान नहीं है, अन्यथा मैं उसे देखने के लिए अवश्य आता। तत्पश्चात् वह उसके घर गया। वहाँ पहुँचकर उसने पूछा कि मेरा मित्र कहाँ है? सखी ने कहा कि वह ऊपर है। आप अकेले ही उसके पास चले जाइए। तब वह मित्रादिकों को नीचे ही बैठाकर स्वयं अकेला ऊपर गया। वहाँ कपिला पलंग के ऊपर श्रेष्ठ गादी पर पड़ी हुई थी। उसकी कुटिलता का ज्ञान सुदर्शन को नहीं था। इसीलिए उसने उस गादी के ऊपर बैठते हुए पूछा कि हे मित्र! तुम्हारा क्या अनिष्ट हो रहा है? तब कपिला ने उसे हाथ को खींचकर अपने स्तनों के ऊपर रखते हुए कहा कि मैं तुम्हारे संयोग के बिना मर रही हूँ। तुम दयालु हो, अतः मुझे बचाओ। यह सुनकर सुदर्शन ने उससे कहा कि मैं केवल बाहर देखने में ही सुन्दर दिखता हूँ, परन्तु पुरुषार्थ से रहित (नपुंसक) हूँ। अतएव तुम्हारे साथ रमण करने के योग्य नहीं हूँ। यह सुनकर सुदर्शन की ओर से विरक्त होते हुए उसने उसे छोड़ दिया। तब वह अपने घर आकर सुखपूर्वक स्थित हो गया।

एक बार वसन्तोत्सव के समय राजा आदि नगर के बाहर उद्यान में गये। साथ में रानी अभयमती भी समस्त अन्तःपुर से वेष्टित होकर अपनी सखी कपिला के साथ पालकी में (अथवा रथ में) बैठकर गई। जब वह जा रही थी तब उसे मार्ग में अपने सुकान्त पुत्र को गोद में लेकर रथ से जाती हुई मनोरमा दिखी। उसने पूछा कि यह सुन्दर पुत्रवाली किसकी सुपुत्री है? इसका जीवन सफल है। तब किसी स्त्री ने कहा कि यह सुदर्शन सेठ की प्राणवल्लभा मनोरमा है और वह उसका

पुत्र सुकान्त है। यह सुनकर अभयमती बोली कि यह धन्य है जो ऐसे उत्तम पुत्र की माता है। तब कपिला बोली कि 'मुझसे तो किसी ने कहा कि सुदर्शन नपुंसक है, उसके पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ है? उत्तर में अभयमती ने कहा कि इस प्रकार का पुण्यशाली पुरुष कैसे नपुंसक हो सकता है? किसी ने दुष्ट अभिप्राय से वैसा कहा होगा। तब उसने उससे अपना पूर्व का यथार्थ वृत्तान्त कह दिया। यह सुनकर अभयमती ने कहा कि तुम्हें उसने धोखा दिया है। इस पर कपिला ने कहा कि मैं मूर्ख ब्राह्मणी ठगायी गयी हूँ और तुम सर्वोत्कृष्ट हो, तुम्हारे सौभाग्य को मैं तभी सफल समझूँगी जब कि तुम उसके साथ भोग, भोग सको, अन्यथा मैं उसे विफल ही समझूँगी। तब अभयमती ने कहा कि मैं यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि या तो सुदर्शन के साथ विषय सुख का अनुभव ही करूँगी, अन्यथा प्राण दे दूँगी। यह प्रतिज्ञा करके वह उद्यान में पहुँची और वहाँ जल-क्रीड़ा करने के पश्चात् महल में आकर शय्या के ऊपर पड़ गई। तब उसकी पण्डिता धाय ने पूछा कि हे पुत्री! तू सचिन्त क्यों है? इस पर उसने अपनी उस प्रतिज्ञा का समाचार पण्डिता से कह दिया। उसे सुनकर पण्डिता ने कहा कि तूने अयोग्य विचार किया है। कारण यह कि सुदर्शन सेठ एक पत्नीव्रत का पालक है, वह अन्य स्त्री की बात भी नहीं करता है। दूसरी बात यह है कि तेरे भवन को वेष्टित करके सात कोट स्थित हैं, अतएव उसका यहाँ लाना भी दुःसाध्य है। इसके अतिरिक्त वैसा करना उचित भी नहीं है। यह सुनकर अभयमती ने कहा कि यदि सुदर्शन सेठ का संयोग नहीं हो सकता है तो मेरा मरण अनिवार्य है। जब पण्डिता ने उसके इस प्रकार के आग्रह को देखा तब वह उसे आश्वासन देकर कुम्हार के घर गई। वहाँ उसने कुम्हार से पुरुष के बराबर पुरुष की सात मूर्तियाँ बनवायी। तत्पश्चात् वह प्रतिपदा की रात को उनमें से एक मूर्ति को अपने कंधे पर रखकर अभयमती के भवन में जा रही थी। उसे द्वारपाल ने भीतर जाने से रोक दिया। तब पण्डिता ने उससे पूछा कि क्या मेरे लिए भी रानी के महल में जाना निषिद्ध है? तब उसने कहा कि हाँ, इतनी रात्रि में तेरा भी वहाँ जाना निषिद्ध है। इतने पर भी जब वह न रुकी और हठपूर्वक भीतर प्रविष्ट होने लगी तब उसने उसे बलपूर्वक रोकने का प्रयत्न किया।

इस पर वह वहाँ गिर गई और बोली कि आज रानी का उपवास था, उसे इस मिट्टी के कामदेव की पूजा करके रात्रिजागरण करना था। इसे तूने फोड़ डाला। अब प्रातःकाल में तुझे कुटुम्ब के साथ नष्ट कराऊँगी। यह सुनकर वह भयभीत होता हुआ उसके पैरों पर गिर गया और बोला कि मुझे क्षमा कर, आज से मैं तेरी चिन्ता नहीं करूँगा– तुझे महल के भीतर जाने से न रोकूँगा। तब वह घर चली गई। दिनानुसार (दूसरे, तीसरे आदि दिन) उसने इसी तरीके से अन्य द्वारपालों को भी अपने वश में कर लिया। इधर सुदर्शन सेठ अष्टमी का उपवास करके सूर्यास्त हो जाने पर रात्रि के समय श्मशान में प्रतिमा योग से स्थित (समाधिस्थ) था। उस समय रात में पण्डिता वहाँ गई और उससे बोली कि तुम धन्य हो जो अभयमती तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हुई है, तुम चलकर उसके साथ दिव्य भोगों का अनुभव करो। इस प्रकार से पण्डिता ने अनेक मधुर वचनों के द्वारा आकृष्ट किया, परन्तु वह जब निश्चल ही रहा तब उसने उसे उठाकर अपने कन्धे पर रख लिया और फिर महल में लाकर अभयमती के शयनागार में छोड़ दिया। तब अभयमती ने उसके समक्ष अनेक प्रकार की स्त्री सुलभ कामोद्दीपक चेष्टाएँ कीं, परन्तु वह उसके चित्त को विचलित करने में समर्थ नहीं हुई। अन्त में उद्विग्न होकर उसने पण्डिता से कहा कि इसे ले जाकर वहीं पर छोड़ आओ। पण्डिता ने जो बाहर दृष्टिपात किया तो प्रातःकाल हो चुका था। तब उसने कहा कि इस समय सबेरा हो चुका है, अब उसे ले जाना सम्भव नहीं है, क्या किया जाय? यह देखकर अभयमती किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। अन्त में उसने उसे शयनागार में ही कायोत्सर्ग से रखकर अपने शरीर को नखों से नोंच डाला। फिर वह चिल्लाने लगी कि इसने मुझ शीलवती के शरीर को क्षत-विक्षत कर डाला है। तब किसी ने जाकर राजा से कह दिया कि सुदर्शन ने ऐसा अकार्य किया है तब राजा ने सेवकों को आज्ञा दी कि इसे श्मशान में ले जाकर मार डालो। तदनुसार वे उसके बालों को खींचकर उसे श्मशान ले गये। फिर वहाँ बैठा करके उन्होंने उसके शिर को काटने के लिए जिस तलवार का वार किया वह उसके गले में जाकर हार बन गई। इस प्रकार से और भी जितने प्रहार किये गये वे सब ही उसके व्रत के प्रभाव से पुष्पादिकों के स्वरूप से परिणत

होते गये। तब कोई यक्ष अपने आसन के कम्पित होने से उसके उपसर्ग को ज्ञात करके वहाँ आ पहुँचा। उसने उन राजपुरूषों को कीलित कर दिया है। यह समाचार सुनकर राजा ने समझा कि सुदर्शन ने ही उन्हें मंत्र के द्वारा कीलित कर दिया है। इससे उसे बहुत क्रोध आया। तब उसने दूसरे कितने ही सेवकों को भेजा। किन्तु उन्हें भी उसने कीलित कर दिया। तत्पश्चात् राजा स्वयं ही बहुत-सी सेना के साथ निकल पड़ा। उधर मायावी यक्ष भी चतुरंग सेना को निर्मित करके व्यूह और प्रतिव्यूह के क्रम से रणभूमि में आ डटा। फिर क्या था? दोनों ही सेनाओं में आश्चर्यजनक घोर युद्ध होने लगा। इस प्रकार बहुत समय बीत जाने पर भी जब दोनों सेनाओं का चक्र पूर्ववत् ही चलता रहा- दोनों की स्थिति समान ही बनी रही- तब उन दोनों प्रमुखों के हाथी एक-दूसरे के अभिमुख स्थित हुए। उनमें से यक्ष ने राजा से कहा कि मैं अतिशय क्रोधी देव हूँ, मेरे हाथ से तू व्यर्थ प्राण न दे, सुदर्शन की चिन्ता को छोड़कर तू सुखपूर्वक राज्य कर- उसे दण्ड देने का विचार छोड़ दे। यह सुनकर राजा बोला कि यदि तू देव है तो इससे क्या हो गया, क्या देव राजाओं के दास नहीं होते हैं? तू मेरे साथ युद्ध कर, मैं तुझे अपने बाहुबल को दिखलाता हूँ। तब उन दोनों में घोर युद्ध हुआ। उसमें राजा ने शत्रु के हाथी को बाणों की वर्षा से परिपूर्ण करके गिरा दिया। तब यक्ष दूसरे हाथी पर चढ़ा और उसके प्रताप को देखकर आनन्द पूर्वक युद्ध करने लगा। उसने भी राजा के हाथी को गिरा दिया। तब राजा दूसरे हाथी के ऊपर चढ़कर युद्ध करने लगा। तब यक्ष ने उसके छत्र और ध्वजा को नष्ट करके हाथी को भी मार गिराया। तब राजा ने रथ पर चढ़कर युद्ध प्रारम्भ किया। यह देखकर शत्रु ने भी उसी प्रकार से युद्ध किया। इस प्रकार दोनों ने विद्यामय बाणों से युद्ध करके तीनों लोकों को आश्चर्य चकित कर दिया। बहुत समय बीतने पर राजा ने यक्ष के रथ को तोड़ डाला। तब वह भूमि में स्थित हुआ। राजा ने उसे मार डाला। तब वे दो हो गये। इस क्रम से उत्तरोत्तर वे दूने-दूने ही होते गये। इस प्रकार उनसे समस्त रणभूमि ही व्याप्त हो गई। अब तो राजा भयभीत होकर भागने में उद्यत हो गया। तब वह यक्ष भी उसके पीछे लग गया। वह बोला कि यदि तू सेठ की शरण में जाता है तो तेरी

प्राण रक्षा हो सकती है, अन्यथा नहीं। तब वह हे सेठ! मुझे बचाओ मुझे बचाओ, यह कहता हुआ सुदर्शन सेठ की शरण में गया। उस समय सेठ ने हाथों को उठाकर यक्ष को रोकते हुए उससे पूछा कि तुम कौन हो? इसके उत्तर में यक्ष ने सेठ को नमस्कार करके सब वृत्तान्त कह दिया। तत्पश्चात् यक्ष ने राजा से रानी के दुराचरण की सब यथार्थ घटना कह दी। फिर वह राजा के सैन्य को जीवित करके और सुदर्शन सेठ की पूजा करके उसके आगे पुष्पों की वर्षा आदि को करता हुआ स्वर्गलोक को वापिस चला गया। इधर रानी ने जब इस अतिशय को देखा तब उसने वृक्ष से लटक कर अपने प्राण दे दिये। इस प्रकार से मरकर वह पाटलीपुत्र (पटना) नगर में व्यन्तरी उत्पन्न हुई। वह पण्डिता धाय भी भयभीत होकर भाग गई और उसी पाटलीपुत्र नगर में एक देवदत्ता नाम की वेश्या के घर जा पहुँची। वहाँ उसने देवदत्ता से पूर्वोक्त सब वृत्तान्त कहा। उसको सुनकर देवदत्ता ने कपिला और अभयमती की हँसी उड़ाते हुये यह प्रतिज्ञा की कि यदि मैं उस सुदर्शन मुनिराज को देखूँगी तो अवश्य ही उसके तप को नष्ट करूँगी।

इधर इस आश्चर्यजनक घटना को देखकर राजा सुदर्शन सेठ से बोला कि मैंने अज्ञानतावश जो आपके साथ यह दुर्व्यवहार किया है उस सब को क्षमा करके मेरे आधे राज्य को स्वीकार कीजिए। इसके उत्तर में सुदर्शन सेठ बोला कि हे राजन्! मैंने श्मशान से लाते समय ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि मैं इस उपद्रव से जीवित रहा तो पाणिपात्र से भोजन करूँगा- मुनि हो जाऊँगा। इसीलिए अब दीक्षा लेता हूँ। इस प्रकार राजा के रोकने पर भी उसने जिनालय में जाकर जिनेन्द्र की पूजा वंदना की। फिर उसने विमलवाहन नामक मुनीन्द्र की वंदना करके उनसे पूछा कि भगवन्! मनोरमा के ऊपर जो मेरा अतिशय प्रेम है उसका क्या कारण है? मुनिराज बोले- इसी भरत क्षेत्र के भीतर विन्ध्य देश के अन्तर्गत काशी-कोशल नाम का एक नगर है। उसमें भूपाल नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम वसुन्धरी था। इनके एक लोकपाल नाम का पुत्र था। एक दिन राजा भूपाल पुत्रादिकों के साथ सभाभवन में बैठा हुआ था। तब उसने सिंहद्वार के ऊपर चिल्लाती हुई प्रजा को देखकर मंत्री से इसका कारण पूछा। तदनुसार अनन्तबुद्धि मंत्री

बोला कि यहाँ से दक्षिण में एक विन्ध्य नाम का पर्वत है। वहाँ एक व्याघ्र नाम का भील रहता है। इसकी स्त्री का नाम कुरंगी है। वह प्रजा को पीड़ित किया करता है। इसीलिए वह चिल्ला रही है। तब राजा ने उसके ऊपर आक्रमण करने के लिए बहुत-सी सेना के साथ अनन्त नामक सेनापति को भेजा। उसे भील ने जीत लिया। तब राजा स्वयं ही जाने को उद्यत हुआ। राजा को जाते हुए देखकर लोकपाल ने उसे रोक दिया और वह स्वयं वहाँ चला गया। उसने उस भील को युद्ध में मार डाला। वह मरकर वत्स देश में किसी गोष्ठ (गायों के रहने का स्थान) के भीतर कुत्ता हुआ। एक दिन वह ग्वालिनी के साथ कौशाम्बी पुर में गया और वहाँ ही एक जिनालय के आश्रित रह गया। वहाँ पर वह समयानुसार मरण को प्राप्त होकर लोधी नाम की मनुष्य जाति में सिंह प्रिय और सिंहनी दम्पति का पुत्र हुआ। उसके माता पिता बाल्यावस्था में ही मर गये थे। तत्पश्चात् वह भी कुछ दिनों में मृत्यु को प्राप्त होकर इसी चम्पापुर में वृषभदास नामक सेठ के सुभग नाम का ग्वाला हुआ। उसने एक चारण मुनिराज के पास से 'णमो अरिहंताणं' इस मंत्र को प्राप्त किया। वह सब ही कार्यों के प्रारम्भ में प्रथमतः उक्त मंत्र का उच्चारण करने लगा। आयु के अन्त में वह गंगा नदी में मर कर, किये गये निदान के अनुसार तुम हुए हो। उधर वह कुरंगी (भील स्त्री) मर करके वाराणसी नगरी में भैंस हुई थी। फिर वहाँ भी वह मरकर चम्पापुर में साँवल और यशोमती नामक धोबी युगल के वत्सिनी नाम की पुत्री हुई। सौभाग्य से उसे आर्यिका की संगति प्राप्त हुई। इससे जो उसने महान् पुण्य उपार्जित किया उसके प्रभाव से वह मरकर तुम्हारी मनोरमा प्रिय पत्नी हुई है। इस प्रकार अपने पूर्व भवों के वृत्तान्त को सुनकर सुदर्शन सेठ ने मनोरमा को समझाया और तदनन्तर वह राजा आदिकों से क्षमा कराकर वहीं पर दीक्षित हो गया। सुदर्शन को प्राप्त हुए धर्म के फल को प्रत्यक्ष देख कर के राजा के मन में बहुत आश्चर्य हुआ। इसीलिए उसने भी अपने पुत्र को राजा तथा सुकान्त को सेठ बनाकर वहीं पर दीक्षा ले ली। राजा के अन्तःपुर ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् सबने वहीं पर पारणा की। वे सब गुरु के साथ विहार करते हुए संयम का परिपालन कर रहे थे।

सुदर्शन समस्त आगम का ज्ञाता होकर गुरु की आज्ञा से अकेला ही विहार करने लगा। वह अनेक तीर्थस्थानों की वंदना करता

हुआ पाटलीपुत्र नगर में पहुँचा। वहाँ वह आहार के लिए नगर में प्रविष्ट हुआ। पण्डिता ने उसे देखकर देवदत्ता से कहा कि यही वह सुदर्शन है। देवदत्ता ने अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके दासी के द्वारा मुनिराज का पडिगाहन कराया। मुनिराज को उनके कपट का ज्ञान नहीं था। इसलिए वे वहाँ स्थित हो गये। फिर उसने उन्हें भीतर ले जाकर शयनागार में बैठाया। तत्पश्चात् देवदत्ता ने उनसे कहा कि हे सुभग! तुम अभी तरुण हो, तुम्हें अभी इस तप से क्या लाभ है? मैंने बहुत-सा धन कमाया है। तुम उसको लेकर मेरे साथ भोगों का अनुभव करो। यह सुनकर मुनिराज ने कहा कि हे सुन्दरी! (अथवा हे मूर्खे!) यह शरीर अपवित्र, दुःखों का घर, त्रिदोष (वात, पित्त और कफ) से सहित, कीड़ों से परिपूर्ण और नश्वर है। इसलिए उसे भोगोपभोगजनित सुख का साधन बनाना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से वह परलोक के सुखमय बनाने में सहायक नहीं होता है, बल्कि वह उसे दुःखमय ही बनाता है। अतएव उस परलोक की सिद्धि (मोक्ष प्राप्ति) के लिए इस दुर्लभ मनुष्य-शरीर को तपश्चरण में प्रवृत्त करना सर्वथा योग्य है। इस प्रकार से वह परलोक की सिद्धि में अवश्य सहायक होता है। मुनिराज के इस सदुपदेश को देवदत्ता ने हृदयंगम नहीं किया। किन्तु इसके विपरीत उसने 'तुम तप को छोड़कर मेरे साथ विषय भोग करो' यह कहते हुए उन्हें उठाकर शय्या के ऊपर रख लिया। तब मुनिराज ने इस उपसर्ग के दूर होने पर ही मैं आहारादि में प्रवृत्त होऊँगा, इस प्रकार सन्यास को ग्रहण कर लिया। साथ ही उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा कर ली कि अब से मैं नगरादि में प्रवेश नहीं करूँगा। इस प्रकार देवदत्ता ने अनेक प्रकार के कामोद्दीपक स्त्री विकारों को करके मुनिराज के ऊपर तीन दिन उपसर्ग किया। फिर भी जब उनका चित्त चलायमान नहीं हुआ तब उसने उन्हें रात के समय श्मशान में कायोत्सर्ग से स्थित करा दिया। तब वे मुनिराज वहाँ कायोत्सर्ग से स्थित ही थे कि इतने में विमान से आकाश में जाती हुई उस व्यन्तरी ने अकस्मात् अपने विमान के रुक जाने से उनकी ओर देखा। देखते ही उसे यह ज्ञात हो गया कि यह वही सुदर्शन सेठ है। तब उसने उनसे कहा कि हे सुदर्शन! तेरे कारण आर्तध्यान से मरकर वह अभयमती मैं (व्यन्तरी) हुई हूँ। उस समय तो किसी देव ने तेरी रक्षा की थी, अब देखती हूँ कि तेरी रक्षा कौन करता है? इस

प्रकार कहते हुए उसने मुनिराज के ऊपर अनेक प्रकार से घोर उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय इस उपसर्ग को भी उसी यक्ष ने निवारित किया। तब वह उसी यक्ष के साथ युद्ध करने लगी। अन्त में वह सातवें दिन पीठ दिखाकर भाग गई। इधर उस उपसर्ग के जीतने वाले मुनिराज को केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तब देवों ने गन्धकुटीरूप समवसरणादि की विभूति का निर्माण किया। वे श्रीवर्धमान जिनेन्द्र के तीर्थ में पाँचवें अन्तःकृत्केवली हुए हैं। इस अतिशय को देखकर वह व्यन्तरी सम्यग्दृष्टि हो गई। पण्डिता और देवदत्ता ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली। सुदर्शन मुनिराज के केवलज्ञान की वार्ता को सुनकर मनोरमा ने भी सुकान्त को सम्बोधित करते हुए वहाँ जाकर दीक्षा धारण कर ली। अन्य भी कितने ही भव्य जीवों ने सुदर्शन केवली के निकट दीक्षा ले ली। फिर सुदर्शन केवली ने भव्य जीवों के पुण्योदय से प्रेरित होकर वहाँ से विहार किया। अन्त में वे पौष शुक्ला पंचमी के दिन मोक्षपद को प्राप्त हुए। राजा धात्रिवाहन आदिकों में से कितने ही मुक्ति को प्राप्त हुए और कितने ही सौधर्म कल्प को आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि तक गये। आर्यिकाओं में से कुछ तो सौधर्म स्वर्ग से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त जाकर देव हो गईं ओर कुछ देवियाँ हुईं। इस प्रकार जब ग्वाले ने भी उक्त मंत्रवाक्य के प्रभाव से ऐसी अपूर्व सम्पत्ति को प्राप्त कर लिया है तब अन्य विवेकी मनुष्य क्या वैसी विभूति न प्राप्त करेंगे? अर्थात् उन्हें तो सब ही प्रकार की इष्टसिद्धि प्राप्त होने वाली है।।17।।

जो भव्य जीव मोक्षपद को प्रदान करने वाले इस उत्तम अष्टक (आठ कथाओं के प्रकरण) को पढ़ता है वह सौधर्मादि कल्पों के निर्मल अभीष्ट सुख को भोगता है। तत्पश्चात् वह वहाँ से च्युत होकर उत्तम कुल में मनुष्य पर्याय को प्राप्त होता हुआ उत्तम चक्रवर्ती के वैभव को भोगता है और फिर अन्त में अविनश्वर व अनुपम मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।।2।।

इस प्रकार श्री केशवनन्दी दिव्य मुनि के शिष्य श्री रामचन्द्र मुमुक्षु द्वारा विरचित पुण्यास्रव कथाकोश नामक ग्रन्थ में पंचनमस्कार मंत्र के फल का वर्णन करने वाला अष्टक समाप्त हुआ।।2।।

18. भूतपूर्व हरिण-वालिमुनि कथा

श्री सौभाग्यपदं विशुद्धिगुणाकं दुःखार्णवोत्तरकं
सार्वज्ञ बुधगोचरं सुसुखदं प्राप्यामलं भाषितम्।
कान्तारे गुणवर्जितोऽपि हरिणो वालीह जातस्ततो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले॥18॥

सर्वज्ञ के द्वारा प्ररूपित वस्तुस्वरूप लक्ष्मी व सौभाग्य का स्थानभूत, विशुद्धि गुण से संयुक्त, दुखरूप समुद्र से पार उतारने वाला तथा विद्वानों का विषय होकर निर्मल व उत्तम सुख को प्रदान करने वाला है। उसको सुनकर एक गुणहीन जंगली हिरण भी यहाँ बाली हुआ है। इसलिए मैं लोक में उस सर्वज्ञकथित तत्त्व की प्राप्ति से जिनदेव का भक्त होकर उत्तम चारित्र को धारण करता हुआ धन्य होता हूँ।।18।।

18. इसकी कथा इस प्रकार है- इसी आर्यखण्ड के भीतर किष्किन्धापुर में वानर वंश में उत्पन्न हुआ विद्याधरों का मुख्य राजा बालिदेव राज्य करता था। एक दिन उसने किसी महामुनिराज का दर्शन करके उनसे धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् उसने उक्त मुनिराज के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि मैं दिगम्बर मुनि और जैन श्रावक को छोड़कर अन्य किसी के लिए भी नमस्कार नहीं करूँगा। वह इस प्रतिज्ञा के साथ सुखपूर्वक राज्य कर रहा था। इधर लंका में रावण को जब यह ज्ञात हुआ कि बालि मुझे नमस्कार नहीं करना चाहता है तथा उसने इसके लिए प्रतिज्ञा ले रक्खी है, तब उसने बालि के पास भेंट के साथ एक दूत को भेजा। दूत ने जाकर बालिदेव से निवेदन किया कि जगद्विजयी रावण ने जो आपके लिए आदेश दिया है उसे सुनिए- हम दोनों में परस्पर जो वंशपरम्परा से स्नेहपूर्ण व्यवहार चला आ रहा है उसका तुम्हें पालन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मैंने तुम्हारे पिता सूर्य (सूर्यरज)

से अतिशय पराक्रमी शत्रु यम को भगाकर उसे राज्य दिया था। उस उपकार के लिए कृतज्ञ होकर तुम अपनी बहिन श्रीमाला को मेरे लिए दो और मुझे नमस्कार करके सुखपूर्वक राज्य करो। यह सुनकर बालिदेव ने कहा कि तुम्हारे स्वामी ने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है। किन्तु वह स्वयं व्रतहीन है, अतएव उसके लिए इस प्रकार नमस्कार करने का आदेश देना योग्य नहीं है। मैं नमस्कार के अतिरिक्त अन्य सब कुछ करने को उद्यत हूँ। यह सुनकर दूत बोला- आपको रावण के लिए नमस्कार करना ही चाहिए, अन्यथा आपका अनिष्ट होना अनिवार्य है। तब बालि ने कहा कि जो कुछ भी होना हो जाए, तुम जाओ; यह कहकर उसने दूत को वापिस कर दिया। दूत से इस सब समाचार को सुनकर रावण समस्त सेना के साथ आया और किष्किन्धापुर के बाहर ठहर गया। उधर बालि मंत्रियों की सलाह को न मानकर अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए निकल पड़ा। दोनों ओर की सेनाओं के एक दूसरे के अभिमुख होने पर उनके मंत्रियों ने विचार किया कि इन दोनों में एक तो प्रतिनारायण है और दूसरा चरमशरीरी है, अतएव इनमें से युद्ध में किसी का भी मरण सम्भव नहीं है; परन्तु सेना का नाश अवश्य होगा। इसीलिए उन दोनों को ही परस्पर में युद्ध करना चाहिए। इस बात को उन दोनों ने भी स्वीकार कर लिया। तदनुसार उन दोनों के बीच घोर युद्ध हुआ। इस प्रकार बहुत समय बीतने पर बालि ने रावण को बाँध लिया और तत्पश्चात् उसे छोड़ भी दिया। फिर बालि ने उससे क्षमा-याचना करके अपने भाई सुग्रीव को राज्य देकर उसे रावण के लिए समर्पित कर दिया और स्वयं दीक्षित हो गया।

तत्पश्चात् वह समस्त आगम का पारगामी होकर एक विहारी हो गया। एक दिन वह कैलाश पर्वत के ऊपर प्रतिमायोग को धारण करके समाधिस्थ था। उस समय रावण रत्नावली नाम की कन्या के साथ विवाह करने के लिए विमान से जा रहा था। उसका विमान बालि मुनि के ऊपर आकर रुक गया। तब विमान रुकने के कारण को ज्ञात करने के लिए वह नीचे पृथ्वी पर उतरा। उसे वहाँ बालि मुनिराज दिखायी दिये। उसने समझा कि इसने ही क्रोध से मेरे विमान को रोक दिया है। इससे उसे बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। तब वह उसे पर्वत के साथ उठाकर समुद्र

में फेंक देने के विचार से पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट हुआ। इस प्रकार रावण अपनी शक्ति से और विद्या के बल पर उस पर्वत के उठाने में उद्यत हो गया। उस समय वालि मुनिराज को कायबल ऋद्धि प्राप्त हो चुकी थी। पर्वत के उठाने से उसके ऊपर स्थित जिनभवन नष्ट हो सकते हैं, इस विचार से उन्होंने अपने बायें पैर के अँगूठे की शक्ति से पर्वत को नीचे दबाया। उसके भार से दबकर रावण वहाँ से निकलने के लिए असमर्थ हो गया। तब वह रुदन करने लगा। उसके आक्रन्दन को सुनकर विमान में स्थित मन्दोदरी आदि अन्तःपुर की स्त्रियों ने आकर मुनिराज से पति भिक्षा माँगी। तब बालि मुनीन्द्र ने अपने अँगूठे को शिथिल कर दिया। इस प्रकार वह रावण बाहर निकल सका। मुनिराज के तप के प्रभाव से देवों के आसन कम्पित हुए। तब उन सबने आकर पंचाश्चर्य पूर्वक मुनिराज को नमस्कार किया। रावण चूँकि कैलाश पर्वत के नीचे दबकर रोने लगा था, अतएव 'रौतीति रावणः' इस निरुक्ति के अनुसार शब्द करने के कारण उक्त देवों ने उसका रावण नाम प्रसिद्ध किया। तत्पश्चात् वे स्वर्गलोक को वापिस चले गये। फिर रावण भी अतिशय शल्य रहित होकर चला गया। उधर मुनिराज ने भी केवलज्ञान के उत्पन्न होने पर विहार करके मुक्ति को प्राप्त किया।

बालि किस पुण्य के प्रभाव से ऐसी अलौकिक विभूति को प्राप्त हुआ, इस प्रकार विभीषण ने सकलभूषण केवली से प्रश्न किया। इस पर उन्होंने वालिदेव के पुण्यातिशय को इस प्रकार बतलाया- इसी आर्यखण्ड के भीतर वृन्दावन में एक हरिण रहता था। वहाँ पर स्थित साधु जब आगम का पाठ करते थे तब वह हरिण उसे प्रतिदिन सुना करता था। इससे उत्पन्न हुए पुण्य के प्रभाव से वह आयु के अन्त में मरकर इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी ऐरावत क्षेत्र के भीतर अश्वत्थपुर में वैश्य विरति और शीलवती के मेघरत्न नाम का पुत्र हुआ। वह अणुव्रतों का पालन करके ईशान स्वर्ग को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर वह पूर्व विदेह के भीतर कोकिला ग्राम में वैश्य कान्तशोक और रत्नाकिनी के सुप्रभ नाम का पुत्र हुआ। तत्पश्चात् वह तप के प्रभाव से सर्वार्थसिद्धि विमान में अहमिन्द्र हुआ। वहाँ से च्युत होकर वह वालिदेव हुआ है। इस प्रकार परमागम के शब्दों के सुनने मात्र से जब

एक हिरण पशु भी ऐसी समृद्धि को प्राप्त हुआ है तब दूसरा विवेकी जीव क्या न होगा? वह तो सब प्रकार की ही समृद्धि को प्राप्त कर सकता है।।18।।

19. भूतपूर्व हंस-प्रभामण्डल कथा

पद्मावासतटे विशुद्धलतिके नानाद्रुमैः शोभिते
हंसो बोधविवर्जितोऽपि समुदं श्रुत्वा मुमुक्षूदितम्।
जातः पुण्यसुदेह को हि सुगुणः ख्यातः प्रभामण्डलो
धन्योऽहं जिनदेवः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले॥19॥

उत्तम लताओं से सहित वह अनेक वृक्षों से सुशोभित किसी तालाब के किनारे पर रहने वाला एक हंस अज्ञान होकर भी मुमुक्षु मुनि के द्वारा उच्चारित आगमवचन को सहर्ष सुनकर उत्तम शरीर से सुशोभित एवं श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न प्रसिद्ध प्रभामण्डल (भामण्डल) हुआ। इसीलिए जिनदेव का भक्त मैं इस पृथ्वी तल के ऊपर उक्त जिनवाणी की प्राप्ति से चारित्र को धारण करके कृतार्थ होता हूँ।।19।।

19. इसकी कथा इस प्रकार है- इसी आर्यखण्ड के भीतर मिथिला नाम की नगरी में राजा जनक राज्य करता था। रानी का नाम विदेही था। विदेही के गर्भ रहने पर उससे बालक और बालिका का एक युगल उत्पन्न हुआ। इनमें से कुमार को धूमप्रभ नाम का असुर मार डालने के विचार से उठा ले गया। मार्ग में जब वह उस बालक को ले जा रहा था तब उसे उसका मुख देखकर दया आ गई। इससे उसने उसके कानों में अपने कुण्डलों को पहिना करके पर्णलघु विद्या को समर्पित करते हुए उसे आज्ञा दी कि जहाँ पर यह वृद्धिंगत हो सके वहाँ पर ले जाकर इसे रख आओ। तदनुसार वह कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात में उसे आकाश मार्ग से ले जा रही थी। तब उसे कुण्डलों की कान्ति से इन्दुगति विद्याधर ने देख लिया। यह विद्याधर विजयार्ध पर्वत की दक्षिणश्रेणि में स्थित रथनूपुर का स्वामी था। बालक को देखकर उसने अपने दोनों हाथों को फैला दिया। तब देवी उसे उसके हाथों में छोड़कर चली गई। इन्दुगति ने उसे ले जाकर अपनी प्रिय पत्नी पुष्पावती को

देते हुए उससे कहा कि लो यह तुम्हारा पुत्र है। रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ है, ऐसी उसने सर्वत्र घोषणा भी करा दी। वह वहाँ प्रभामण्डल इस नाम से प्रसिद्ध होकर वृद्धिंगत हुआ। वह कालान्तर में समस्त कलाओं में कुशल होकर युवावस्था को प्राप्त हो गया।

इधर मिथिला में उसके माता-पिता उसके वियोग से अतिशय दुःखी हुए। उन्होंने विद्वानों से प्रबोधित होकर जिस किसी प्रकार से उस शोक को छोड़ा। फिर वे पुत्री का सीता यह नाम रखकर सुखपूर्वक स्थित हुए। वह पुत्री भी क्रमशः वृद्धि को प्राप्ति हुई। एक समय की बात है कि तरंगङतम नाम का एक भील राजा जनक के देश में आकर प्रजा को पीड़ित करने लगा था। तब जनक ने उसके ऊपर आक्रमण करने के विचार से अपने मित्र अयोध्यापुर के स्वामी राजा दशरथ के पास पत्र भेजा। पत्र के अभिप्राय को जानकर राजा दशरथ जनक की सहायतार्थ वहाँ जाने को उद्यत हो गया। इसके लिए उसने प्रयाणभेरी करा दी। भेरी के शब्द को सुनकर दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण पिता को रोककर स्वयं गये व जनक से मिले। उनके पहुँचने के पूर्व ही जनक ने उक्त भील के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया था। इस युद्ध में भील ने जनक के भाई कनक को बाँध लिया था। इस बात को सुनकर राम ने भील के साथ युद्ध करके उसे बाँध लिया और राजा जनक का सेवक बना दिया। राम ने कनक को भी बन्धनमुक्त करा दिया। राम के प्रताप को देखकर राजा जनक को बहुत सन्तोष हुआ। तब उसने मैं तुम्हारे साथ सीता का विवाह करूँगा' कहकर उन दोनों को अयोध्या वापिस भेज दिया।

एक दिन नारद सीता के रूप को देखने के लिए आये थे। उनको विलासिनियों (द्वारपाल स्त्रियों) ने भीतर जाने से रोक दिया। इससे क्रुद्ध होकर वे कैलाश पर्वत के ऊपर चले गये। वहाँ उन्होंने चित्रपट पर सीता के रूप को अंकित किया। उसको लेकर वे रथनूपुर-चक्रवालपुर में गये। वहाँ जाकर वे उद्यान के भीतर प्रभामण्डल के क्रीड़ागृह के समीप में एक वृक्ष की शाखा के सहारे छुपकर स्थित हो गये। प्रभामण्डल ने जैसे ही उस चित्र को देखा वैसे ही वह मूर्छित हो गया। तब इन्दुगति ने वहाँ आकर पूछा कि इस चित्र को यहाँ कौन लाया है? यह सुनकर नारद ने उसे 'तुम्हारा कल्याण हो' ऐसा आशीर्वाद देकर कहा कि इसे मैं लाया

हूँ। यह बाला युवराज के योग्य है। यह सब कहकर नारद वापिस चले गये। तत्पश्चात् इन्दुगति उस कन्या की प्राप्ति के विषय में विचार करने लगा। तब चपलगति नामक सेवक ने कहा कि आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं राजा जनक को यहाँ ले आता हूँ। इस प्रकार से आज्ञा पाकर वह घोड़े के रूप में वहाँ चला गया। उसे जनक ने बाँधकर रख लिया। उस समय एक भील ने आकर जनक से निवेदन किया कि अमुक स्थान में हाथी स्थित है। तब राजा उसे पकड़ने के लिये गया। वह हाथी के भय से उपर्युक्त घोड़े के ऊपर सवार हुआ। घोड़ा भी उसे लेकर आकाश में उड़ गया। उसने जनक को सिद्धकूट के ऊपर छोड़कर उसके ले आने की वार्ता अपने स्वामी से कह दी। तब वह विद्याधरों का स्वामी चन्द्रगति भी जनक को अपने घर पर ले आया। वहाँ उसने जनक का यथायोग्य अतिथि-सत्कार करके तत्पश्चात् उससे सीता की याचना की। उत्तर में राजा जनक ने कहा कि वह राम के लिए दी जा चुकी है। यह सुनकर चन्द्रगति बोला कि वह तो भूमिगोचारी है, उससे क्या अभीष्ट सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार चन्द्रगति के द्वारा की गई भूमिगोचारियों की निन्दा को सुनकर जनक ने कहा- विद्याधर कौन से महान् हैं? उनमें और आकाश में संचार करने वाले पक्षियों में कोई विशेषता नहीं है। क्या आपको यह ज्ञात नहीं है कि तीर्थंकर आदि सब शलाकापुरुष भूमि गोचरी ही होते हैं? इस पर विद्याधरों के स्वामी चन्द्रगति ने कहा कि अधिक प्रशंसा करने से कुछ लाभ नहीं है, यहाँ पर जो ये वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष हैं उन्हें यदि वह राम चढ़ा देता है तो उसके लिये सीता को दे देना। इस बात को जनक ने स्वीकार कर लिया। तब चन्द्रगति का महत्तर (सेवक) चन्द्रवर्धन उन दोनों धनुषों को लेकर जनक के साथ मिथिलापुर आ गया। इस वृत्तान्त को सुनकर विदेही आदि को को बहुत दुख हुआ। स्वयंवर भूमि में उन दोनों धनुषों के घटाटोप को देखकर क्षत्रियों का समूह भयभीत हुआ। परन्तु इस स्वयंवर में आये हुए उन राजाओं के समूह में राम ने वज्रावर्त धनुष को तथा लक्ष्मण ने दूसरे सागरावर्त धनुष को चढ़ा दिया। उनकी असाधारण शक्ति को देखकर चन्द्रवर्धन को बहुत सन्तोष हुआ। तब वह मैं लक्ष्मण के लिये अपनी आठ पुत्रियाँ दूँगा, यह कहकर विजयार्ध पर वापिस चला गया। राम

आदि भी अपने नगर को वापिस चले गये।

तत्पश्चात् जब प्रभामण्डल को दोनों धनुषों के जाने एवं राम-सीता के विवाह का समाचार ज्ञात हुआ तब वह एक हजार अक्षौहिणी प्रमाण सेना के साथ युद्ध के लिये चल पड़ा। इस प्रकार युद्धार्थ आते हुए उसे मार्ग में विदग्ध नगर को देखकर जातिस्मरण हो गया। तब उसने वहाँ से वापिस लौटकर यह प्रगट कर दिया कि जिसके विषय में मुझे अनुराग हुआ था वह मेरी बहिन है। यह सब मेरी अज्ञानता के कारण हुआ है। इस घटना से इन्दुगति को वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब उसने प्रभामण्डल के लिये राज्य देकर सर्वभूतहितशरण्य भट्टारक के समीप में दीक्षा ग्रहण कर ली। सर्वभूतहितशरण्य भट्टारक विहार करते हुए बहुत से संघ के साथ अयोध्यापुरी के उद्यान में पहुँचे। तब राजा दशरथ ने परिवार के साथ जाकर उनकी वंदना की। तत्पश्चात् दशरथ ने उनके संघ में इन्दुगति को देखकर मुनिराज से उसके दीक्षित होने का कारण पूछा। उन्होंने उसकी दीक्षा का कारण प्रभामण्डल और सीता का सम्बन्ध बतलाया। इस बीच में उस प्रभामण्डल ने मुनिराज के वचन से राजा दशरथ, राम और लक्ष्मण को नमस्कार करके पास बैठी हुई सीता को प्रणाम किया।

तत्पश्चात् प्रभामण्डल ने मुनिराज से इन्दुगति और पुष्पवती के प्रति अपने अनुराग तथा सीता के चित्र को देखकर उसके प्रति आसक्त होने का भी कारण पूछा। मुनिराज बोले- दारूण ग्राम में ब्राह्मण विमुचि और मनस्विनी के एक अतिभूति (विभूति) नाम का पुत्र था। उसी नगर में एक ज्वाला नाम की एक विधवा स्त्री थी। इसके एक सरसा नाम की पुत्री थी। उसके साथ अतिभूति ने अपना विवाह किया था। एक दिन पिता और पुत्र दोनों भिक्षा के निमित्त गये थे। इस बीच में सरसा कय नामक जार के साथ निकल गई। उन दोनों ने मार्ग में किन्हीं मुनिराज की निन्दा की। उससे उत्पन्न पाप के कारण वे दोनों तिर्यंचगति में घूमे। फिर वह सरसा कहीं चन्द्रपुर के स्वामी चन्द्रध्वज और मनस्विनी के चित्रोत्सवा नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। वह कय जार भी उक्त राजा के मंत्री धूमकेशी और स्वाहा के कपिल नाम का पुत्र हुआ। वह भी चित्रोत्सवा को ले जाकर विदग्ध नगर में ठहर गया। इधर विभूति

(अतिभूति) दान को लेकर जब घर वापिस आया तब वह वहाँ स्त्री को न पाकर शोकाकुल हुआ। तत्पश्चात् वह जो पत्नी की अवस्था हुई वही मेरी भी अवस्था क्यों न हो, यह सोचकर घर से निकल गया। वह आर्तध्यान के साथ मरकर तिर्यंचगति में परिभ्रमण करता हुआ एक बार तारा नामक तालाब के ऊपर हंस हुआ। फिर वह मुनिराज के वचनों को सुनकर किन्नर हुआ और तत्पश्चात् वहाँ से च्युत होकर उक्त नगर (विदग्ध) के स्वामी प्रकाश सिंह और प्रियमती का कुण्डलमण्डित नाम का पुत्र होकर राजा के पद पर स्थित हुआ। उधर निर्धन कपिल एक दिन लकड़ियाँ लाने के लिये जंगल में गया था। इधर कुण्डलमण्डित भ्रमण के लिये बाहर निकला था। मार्ग में जाते हुए वह चित्रोत्सवा को देखकर उस पर मोहित हो गया। इसीलिये वह उसे अपने घर पर ले गया। उधर जब कपिल वापिस आया तब उसने लकड़ियों के बोझ को रखकर चित्रोत्सवा को देखा। परन्तु उसे वह वहाँ नहीं दिखी। तब वह उसके लिये अनेक प्रकार से विलाप करने लगा। इतने में किसी एक मनुष्य ने उससे कहा कि वह आर्यिकाओं के साथ गई है। तब वह उसे खोजने के लिये पृथ्वी मण्डल पर घूमा, परन्तु वह उसे प्राप्त नहीं हुई। जब उसे यह ज्ञात हुआ कि चित्रोत्सवा को राजा अपने घर ले गया है तब वह दीनतापूर्ण आक्रन्दन करता हुआ वहाँ पहुँचा। किन्तु उसे वहाँ से निकाल दिया गया। तब वह मुनि हो गया। किन्तु उसका आर्तध्यान नहीं छूटा। इस प्रकार वह आर्तध्यान के साथ मरकर धूमप्रभ असुर हुआ। उसके भय से कुण्डलमण्डित और चित्रोत्सवा दोनों भागकर वन में पहुँचे। वहाँ उन दोनों ने मुनिराज के समीप में श्रावक के व्रतों को ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् कुछ समय तक राज्य करके वे मरण को प्राप्त होते हुए प्रभामण्डल और सीता हुए हैं। तुम्हारी सीता विषयक आसक्ति का कारण यह रहा है। विमुचि आदि पुत्र-पुत्री के स्नेह से देशान्तर को चले गये। उन सबने संवर नगर के उद्यान में जाकर मुनिराज की वंदना की और उनसे दीक्षा ले ली। इनमें से विमुचि मरकर देव और मनस्विनी तथा ज्वाला मरकर देवियाँ हुईं। फिर सौधर्म स्वर्ग से च्युत होकर वह देव इन्द्रगति, देवी पर्याय को प्राप्त हुई मनस्विनी पुष्पवती, तथा ज्वाला विदेही हुई। इस प्रकार मुनिराज से पारस्परिक

स्नेह के कारण को सुनकर सब ही महाविभूति के साथ नगर में वापिस गये। उधर पवनवेग विद्याधर से प्रभामण्डल के वृत्तान्त को जानकर उसे देखने के लिये जनक भी वहाँ आकाश मार्ग से पहुँचा। तब दशरथ आदि बड़ी विभूति के साथ उसे नगर के भीतर ले आये। उन सबने जनक का खूब अतिथि-सत्कार किया। तत्पश्चात् प्रभामण्डल बाल-क्रीड़ा आदि अनेक विनोदों को दिखला करके पिता आदि के साथ अपने नगर को गया। वह कनक को वहाँ का राज्य देकर जनक के साथ रथनूपुर-चक्रवालपुर में जाकर स्थित हुआ। वह सर्व गुणों से सम्पन्न होकर विद्याधरों का चक्रवर्ती हुआ। इस प्रकार मुनिराज के वचनों को सुनकर जब हंस भी ऐसी समृद्धि को प्राप्त हुआ। तब उसे सुनकर मनुष्य क्या न होगा? वह तो मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है।।19।।

20. यममुनि कथा

संसारे खलु कर्मदुःखबहुले नानाशरीरात्मके
प्रख्यातोज्ज्वलकीर्तिको यममुनिर्घोरोपसर्गस्य जित्।
श्लोकैः खण्डकनाकैरपि विदां किं कथ्यते देहिनां
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले॥20॥

अनेक जन्म-मरण रूप यह संसार कर्मजनित बहुत दुःखों से व्याप्त है। इस भूमण्डल पर जब यम मुनि कुछ खण्डक श्लोकों से ही घोर उपसर्ग के विजेता होकर निर्मल कीर्ति के प्रसारक हुए हैं तब भला अन्य विद्वान मनुष्यों के विषय में क्या कहा जाय? मैं पृथ्वी तल पर उस जिनवाणी की प्राप्ति से जिनदेव का भक्त होकर सम्यक्चरित्र को धारण करता हुआ कृतार्थ होता हूँ।।20।।

20. इसकी कथा इस प्रकार है- ओष्ट्र (उष्ट्र) देश के अन्तर्गत धर्मनगर में यम नाम का राजा राज्य करता था। वह समस्त शास्त्रों का ज्ञाता था। उसकी पत्नी का नाम धनमती था। इनके गर्दभ नाम का पुत्र तथा कोणिका नाम की पुत्री थी। उसके पाँच सौ पुत्र और भी थे जो अन्य रानियों से उत्पन्न हुए थे। उक्त राजा के दीर्घ नाम का मंत्री था। किसी ज्योतिषी ने राजा को यह सूचना दी कि जो कोई

इस कोणिका के साथ विवाह करेगा वह समस्त पृथ्वी का स्वामी होगा। इसीलिये उसने कोणिका को तलगृह के भीतर गुप्तरूप से रख रक्खा था। उसने परिचर्या करने वाली सब स्त्रियों को वैसी सूचना भी कर दी थी। इसीलिये वे कभी किसी से कोणिका की बात को नहीं कहती थीं। एक दिन वहाँ पाँच सौ मुनियों के साथ सुधर्म नामक मुनिराज आये। उनकी वंदना के निमित्त जाते हुए जनसमूह को देखकर यम राजा के हृदय में अभिमान का प्रादुर्भाव हुआ। मुनियों की निन्दा करता हुआ उनके समीप में गया। मुनियों के ज्ञान की निन्दा करने के कारण उसकी बुद्धि उसी समय नष्ट हो गई। तब अभिमान से रहित हुए उसने मुनियों को प्रणाम करके उसने धर्मश्रवण किया। तत्पश्चात् वह गर्दभ पुत्र को राज्य देकर अन्य पाँच सौ पुत्रों के साथ मुनि हो गया। उसके वे सब पुत्र आगम के पारगामी हो गये। परन्तु इन मुनिराज को पंचनमस्कार मन्त्र मात्र भी नहीं आता था। इसके लिये गुरु ने उनकी निन्दा की। तब वे लज्जित होता हुए गुरु से पूछकर तीर्थों की वंदना करने के लिये अकेले चले गये। मार्ग में उसने एक जौ के खेत में गधों के रथ से जाते हुए एक मनुष्य को देखा। उसके गधे जौ के खाने के लिये रथ को ले जाते थे और फिर छोड़ देते थे। उनको ऐसा करते हुए देखकर यम मुनिराज ने यह खण्डश्लोक रचा-

कड्ढसि पुण णिक्खेवसि रे गद्दहा जव पत्थेसि खादिदुं।।1।।

अर्थात् हे गर्दभो! तुम रथ को खींचते हो और फिर रुक जाते हो, इससे ज्ञात होता है कि तुम जौ के खाने की प्रार्थना करते हो।

दूसरे समय मार्ग में जाते हुए उनने लोगों के खेलते हुए पुत्रों को देखा। उनकी गिल्ली एक छेद में जा पड़ी थी। वह उन्हें नहीं दिख रही थी। इसलिये वे इधर उधर दौड़ रहे थे। यम मुनिराज ने उसको देखकर यह खण्डश्लोक बनाया-

'अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे एत्थम्मि निबुड्डिया छिद्दे अच्छइ कोणिआ।।2।।'

अर्थात् हे मूर्ख बालको! तुम अन्यत्र क्यों खोज रहे हो, तुम्हारी गिल्ली इस छेद के भीतर स्थित है।

तत्पश्चात् एक बार उसने एक भयभीत मेंढक को जहाँ पर सर्प

छुपकर बैठा हुआ था। उस कमलिनी पत्र की ओर जाते हुए देखकर यह खण्डश्लोक बनाया-

अम्हादो नत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुज्झ।।3।।

अर्थात् तुम्हें हमसे भय नहीं है, किन्तु दीर्घ से -लंबे सर्प से -भय दिखता है।

इन तीन श्लोकों के द्वारा स्वाध्याय एवं वन्दना आदि क्रम को करने वाले वह यम मुनिराज विहार करते हुए धर्म नगर के उद्यान में आकर कायोत्सर्ग से स्थित हुए। उसे सुनकर दीर्घ मंत्री और राजकुमार गर्दभ को उनसे भय हुआ। इसीलिये वे दोनों रात्रि में उनको मारने के लिये गये। दीर्घ मंत्री उनके पीछे स्थित होकर उन्हें मारने के लिये बार-बार तलवार को खींच रहा था। परन्तु व्रती के वध से भयभीत होकर वह उसकी हत्या नहीं कर रहा था। उधर गर्दभ की भी वही अवस्था हो रही थी। इस समय मुनिराज ने स्वाध्याय को करते हुए उक्त खण्डश्लोक में प्रथम खण्डश्लोक को पढ़ा। उसे सुनकर और उससे यह अभिप्राय निकालकर कि 'हे गर्दभ क्यों बार-बार तलवार खींचता है और रखता है' गर्दभ ने दीर्घ से कहा कि मुनिराज ने हम दोनों को पहिचान लिया है। तत्पश्चात् मुनिराज ने दूसरे खण्डश्लोक को पढ़ा। उसे सुनकर और उससे यह भाव निकालकर कि 'अन्यत्र क्या देखते हो, कोणिका से कुछ कहने के लिये आये हैं। फिर उनने तीसरे खण्डश्लोक को पढ़ा उसे सुनकर और उसका यह अभिप्राय निकालकर कि 'तुझे हमसे भय नहीं, किन्तु दीर्घ मंत्री से भय है' गर्दभ ने सोचा कि यह दुष्ट दीर्घ मुझे मारना चाहता है। मुनिराज स्नेहवश मुझे प्रबुद्ध करने के लिये आये हैं। इससे वे दोनों ही मुनिराज को नमस्कार के और उनसे धर्मश्रवण करके श्रावक हो गये। यम मुनिराज भी अत्यन्त विरक्त हो जाने से विशिष्ट चारित्र के साथ यथार्थ मुनिस्वरूप को प्राप्त होकर सात ऋद्धियों के धारक हुए। अन्त में उन्होंने मोक्ष पद को भी प्राप्त किया। इस प्रकार के श्रुत से भी जब यम मुनिराज सात ऋद्धियों के धारक होकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं तब दूसरा विशिष्ट श्रुत का धारक क्या वैसा न होगा? अर्थात् वह तो अनेकानेक ऋद्धियों का धारक होकर मुक्त होगा ही।।20।।

21–22. सूर्यमित्र द्विज व चाण्डालपुत्री कथा

मायाकर्णनधीरपीह वचने श्रीसूर्यमित्रो द्विजो।
जैनेन्द्रे गुणवर्धने च समदो भूपेन्द्रवन्द्यः सदा।
जातः ख्यातगुणो विनष्टकलिलो देवः स्वयंभूर्यतो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले॥21॥

निन्द्या दृष्टिविहीनपूतितनुका चाण्डालपुत्री च सा
संजातः सुकुमारकः सुविदितोऽवन्तीषु भोगोदयः।
यस्माद्भव्यसुवन्द्यदिव्यमुनिना संभाषितादागमात्
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले॥22॥

जो अभिमानी सूर्यमित्र ब्राह्मण यहाँ गुणों को वृद्धिंगत करने वाले जिनेन्द्र वचन (आगम) के सुनने में केवल मायाचार से ही प्रवृत्त हुआ था वह भी उसके प्रभाव से कर्म से रहित होकर प्रसिद्ध गुणों का धारक स्वयम्भू (सर्वज्ञ) हो गया। इसीलिये वह सदा राजाओं व इन्द्रों का भी वंदनीय हुआ। अतएव मैं जिन देव का भक्त होता हुआ उस आगम की प्राप्ति से सम्यक्चारित्र को धारण करके इस लोक में कृतार्थ होता हूँ।।21।।

जो निकृष्ट चाण्डाल की पुत्री दृष्टि से रहित (अन्धी) और दुर्गन्धमय शरीर से संयुक्त थी वह भी भव्यों के द्वारा अतिशय वंदनीय ऐसे दिव्य मुनिराज से प्ररूपित उस आगम के सुनने से उज्जयिनी नगरी के भीतर भोगों के भोक्ता सुप्रसिद्ध सुकुमाल के रूप में उत्पन्न हुई। अतएव मैं जिन देव का भक्त होकर उक्त आगम की प्राप्ति से सम्यक्चारित्र से विभूषित होकर इस पृथ्वी के ऊपर कृतार्थ होना चाहता हूँ।।22।।

इन दोनों वृत्तों की कथायें सुकुमालचरित्र में इस प्रकार प्राप्त होती हैं। तदनुसार उनकी यहाँ प्ररूपणा की जाती है– अंग देश के भीतर चम्पापुरी में चन्द्रवाहन राजा राज्य करता था। रानी का नाम लक्ष्मीमती

था। उक्त राजा के यहाँ एक नागशर्मा नाम का मिथ्यादृष्टि पुरोहित था जो अतिशय रौद्र परिणामों से सहित था। नागशर्मा की स्त्री का नाम त्रिवेदी था। इन दोनों के एक नागश्री नाम की पुत्री थी। एक दिन वह कन्या ब्राह्मण कन्याओं के साथ नागों की पूजा करने के लिए नगर के बाह्य भाग में स्थित एक नागमन्दिर को गई थी। वहाँ सूर्यमित्र आचार्य और अग्निभूति भट्टारक नाम के दो मुनिराज स्थित थे। उन्हें देखकर नागश्री ने निर्मल चित्त से उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उसने उनसे धर्म को सुनकर व्रतों को ग्रहण कर लिया। जब वह उनके पास से घर के लिये वापिस आने लगी तब सूर्यमित्र आचार्य ने कहा कि हे पुत्री! यदि तेरा पिता तुझसे इन व्रतों को छोड़ देने के लिये कहे तो तू इन व्रतों को हमें वापिस दे जाना। उत्तर में उसने कहा कि ठीक है, मैं ऐसा ही करूँगी। यह कहकर वह अपने घर को चली गई। नागश्री के आने के पूर्व ही नागशर्मा को ब्राह्मण-कन्याओं से वह समाचार मिल चुका था। इससे उसका क्रोध भड़क उठा। नागश्री के घर आने पर वह उससे बोला कि हे पुत्री! तूने यह अयोग्य कार्य किया है, ब्राह्मणों के लिये दिगम्बर धर्म का आचरण करना उचित नहीं है। इसलिये तू ग्रहण किये हुए उन व्रतों को छोड़ दे। नागश्री ने जब पिता का ऐसा आग्रह देखा तब वह उससे बोली कि हे तात! उस समय मुनिराज ने मुझसे कहा था कि यदि तेरा पिता इन व्रतों को छुड़ाने का आग्रह करे तो तू इन्हें हमारे लिये वापिस दे जाना इसलिये मैं जाकर उन्हें वापिस दे आती हूँ। ऐसा कहकर वह घर से निकल पड़ी। तब पिता भी उसके साथ में गया।

इसी समय मार्ग में कोतवाल एक युवा पुरुष को बाँधकर मारने के लिये ले जा रहा था। उसको देखकर नागश्री ने पिता से पूछा- हे तात! इसे किसलिये बाँध रक्खा है? उत्तर में नागशर्मा ने कहा कि मैं नहीं जानता हूँ, चलो कोतवाल से पूछें। यह कहकर उसने कोतवाल से पूछा कि इस पुरुष को किसलिये पकड़ा है? कोतवाल बोला- इसी चम्पा नगरी में एक देवदत्त नाम का वैश्य है जो अठारह करोड़ द्रव्य का स्वामी है। उसकी पत्नी का नाम समुद्रदत्ता है। उन दोनों का यह वसुदत्त नाम का इकलौता पुत्र है। आज यह अक्षधूर्त नामक जुआरी के साथ जुआ खेलकर एक लाख दीनारों को हार गया था। अक्षधूर्त ने जब इससे अपने

जीते हुए धन को आग्रह के साथ माँगा तब क्रोधित होकर उसने उसे छुरी से मार डाला। यही कारण है जो यह बाँधकर मारने के लिये ले जाया जा रहा है। कोतवाल के इस उत्तर को सुनकर नागश्री ने पिता से कहा कि यदि हिंसा के कारण इस प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है तो उसी हिंसा के परित्याग का तो व्रत मैंने मुनिराज के समीप में ग्रहण किया है। फिर उसे कैसे छोड़ा जा सकता है? इस पर नागशर्मा ने कहा कि अच्छा इसे रहने दो, चलों दूसरे सब व्रतों को वापिस कर आवें।।1।।

आगे जाने पर नागश्री ने एक स्थान पर किसी ऐसे पुरुष को देखा जो ऊर्ध्वमुख स्थित होकर मुख के भीतर से गये हुए शूल से पीड़ित हो रहा था। उसे देखकर नागश्री ने पितासे पूछा कि यह इस प्रकार से दुख को क्यों प्राप्त हुआ है? नागशर्मा ने उत्तर दिया कि हे पुत्री! इस चन्द्रवाहन राजा के ऊपर आक्रमण करने के लिये वज्रवीर्य नामक राजा समस्त सेना के साथ आकर उसके देश की सीमा पर स्थित हो गया। तत्पश्चात् उसने चन्द्रवाहन के पास एक दूत को भेजा। दूत ने आकर राजा से निवेदन किया कि हे राजन्! मेरे स्वामी ने जो आपके लिये आदेश दिया है उसके ऊपर विचार कीजिये। उनका आदेश है कि तुम मेरी सेवा को स्वीकार करो, यदि यह स्वीकार नहीं है तो फिर युद्धभूमि में आकर स्थित होओ, और यदि यह भी स्वीकार नहीं है तो चम्पापुर को मेरे स्वाधीन करो। यह सुनकर चन्द्रवाहन ने कहा कि ठीक है, मैं रणभूमि में ही आकर स्थित होता हूँ। यह कहते हुए उसने उस दूत को वापिस कर दिया। तत्पश्चात् उसने अपने बल नामक सेनापति को बहुत-सी सेना के साथ वज्रवीर्य के ऊपर आक्रमण करने के लिये भेज दिया। उसके पहुँच जाने पर दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। उनमें युद्ध चल ही रहा था कि राजा का यह तक्षक नाम का अंगरक्षक भयभीत होकर रणभूमि से भाग आया। इसने राजा के पास आकर उससे कहा कि हे देव! वज्रवीर्य ने सेनापति को मारकर हाथी, घोड़े आदि सबको अपने अधिकार में ले लिया है। यह सुनकर राजा को बहुत खेद हुआ। उधर बल सेनापति ने युद्ध में शत्रु को बाँध लिया था वह उसको लेकर चन्द्रवाहन के पास आया। उसके आने के ठाट बाट

को देखकर राजा को सन्देह हुआ कि यह शत्रु ही आ रहा है। इसलिए उसने युद्ध के लिये तैयार होकर किले के द्वार को बन्द करा दिया। साथ ही वह किले के ऊपर सुभटों को स्थापित करके स्वयं हाथी के ऊपर चढ़कर स्थित हुआ। चन्द्रवाहन की वैसी उद्विग्नता को देखकर बल ने प्रगट होते हुए द्वारों को खुलवाया और राजा का दर्शन किया। राजा ने वज्रवीर्य को बन्धन मुक्त करके उसे वस्त्राभूषणादि देते हुए अपने देश में वापिस भेज दिया। तब वह सुखपूर्वक स्थित हुआ। इसके उपर्युक्त असत्यवचन का स्मरण करके राजा ने आज इसके लिये यह दण्ड घोषित किया है। यह सुनकर नागश्री ने पिता से कहा कि मैंने मुनिराज के समीप में असत्य वचन के त्याग का नियम लिया है, फिर उसे क्यों छोड़ूँ? इस पर पुरोहित बोला कि अच्छा इसे भी रहने दो, चलो शेष व्रतों को वापिस दे आवें।।2।।

वहाँ से आगे जाते हुए दूसरे स्थान में नागश्री ने शूली के ऊपर चढ़ाये गये एक पुरूष को देखकर अपने पिता से पूछा कि इसे यह दण्ड क्यों दिया गया है? नागशर्मा बोला कि मुझे ज्ञात नहीं है, चलकर चण्डकर्मा से पूछता हूँ। तदनुसार उसके पूछने पर चण्डकर्मा बोला- इसी नगर में एक वसुदत्त नाम का राजसेठ रहता है। उसकी पत्नी का नाम वसुमती है। इनके वसुदत्ता नाम की एक पुत्री है। वह अतिशय सुन्दर व युवती है। उसे एक दिन सर्प ने काट लिया था। तब उसे मृत जानकर जलाने के लिये श्मशान में ले गये। वहाँ उसे चिता के ऊपर रखा ही था कि इतने में अनेक देशों में परिभ्रमण करता हुआ गरूड़नाभि नाम का एक वणिक् पुत्र आया। वह गारूड़ी विद्या में निपुण था। उसे जब यह ज्ञात हुआ कि इसे सर्प ने काट लिया है तब वह बोला कि यदि तुम इसं मेरे लिये देते हो तो मैं इसे जीवित कर देता हूँ। तब तद्विषयक जानकारी प्राप्त करके सेठ ने उससे कहा कि ठीक है, मैं इस पुत्री को तुम्हारे लिये दे दूँगा, तुम इसे जीवित कर दो। यह सुनकर गरूड़नाभि ने कहा कि मैं इसे प्रातःकाल में विष से रहित कर दूँगा, रात्रि में यहाँ पर ही इसके रक्षण का प्रयत्न कीजिये। तब सेठ ने एक एक कपड़े में एक एक हजार दीनारें बाँधकर उनकी चार पोटली बनाईं। फिर उन चारों ही पोटलियों को एक कपड़े में बाँधकर उसने पुत्री के विमान के पास

रख दिया। तत्पश्चात् उसने चार सुभटों को बुलाकर उनसे कहा कि हे वीरों! तुम रात्रि में यहाँ इस पुत्री की रक्षा करो, मैं तुम लोगों में से प्रत्येक को एक एक हजार दीनार दूँगा। सेठ के कथनानुसार वे चारों उसकी रक्षा करते हुए वहाँ स्थित रहे और शेष सब अपने अपने घर को चले गये। दूसरे दिन गरूड़नाभि ने उसे विष से रहित करके उठा दिया। तब सेठ ने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार उस पुत्री को गरूड़नाभि को प्रदान कर दिया। उधर उन चार सुवर्ण की पोटलियों में से तीन ही वहाँ स्थित थीं यह देखकर सेठ ने कहा जिसने उस पोटली को लिया है उसे तो वह मिल ही गई है, दूसरे तीन इन पोटलियों को ले लो। इसपर उन चारों ने कहा कि हमने उस पोटली को नहीं लिया है। तब सेठ ने राजा से कहा कि मेरी एक हजार दीनारें चोरी गई हैं। राजा ने इस चोरी की वार्ता को ज्ञात करके चण्डकीर्ति नाम के कोतवाल को बुलाया और उससे कहा कि जाओ शीघ्र ही उस चोर का पता लगाकर मेरे पास लाओ, अन्यथा तुम्हारा सिर काट लिया जावेगा। इस राजाज्ञा को सुनकर कोतवाल ने कहा कि हे राजन्! यदि मैं पाँच दिन के भीतर उस चोर को खोजकर न ला सकूँ तो आप जो जाने मुझे दण्ड दें। तब 'ठीक है' कहकर राजा ने उसकी यह बात स्वीकार कर ली। चण्डकीर्ति भी चिन्तातुर होकर उन चारों के साथ अपने घर को गया, उस कोतवाल के एक सुमति नाम की अतिशय चतुर पुत्री थी। उसने पिता को सचिन्त देखकर उससे चिन्ता का कारण पूछा। तब उसने उससे पूर्वोक्त घटना कह दी। उसे सुनकर उसने पिता से कहा कि आप चिन्ता को छोड़ दें, मैं उस चोर का पता लगाकर आपके स्वाधीन करती हूँ। कोतवाल ने उन चारों को भोजन आदि दिया और उनसे कहा कि तुम्हें पाँच दिन यहीं पर रहना पड़ेगा, उसने उन्हें एक कोठे में चारपाई आदि भी दे दी। फिर वह अन्य सेवकों के साथ चोरी के रहस्य की जानकारी प्राप्त करने में उद्यत हो गयी। इधर उस दिन उस सुमति ने उनमें से प्रत्येक को बुलाया और उसे देखकर गादी पर बैठाया। इस प्रकार से वह सभी को बैठाकर उनसे बोली मैं तुम चारों में से किसी एक के ऊपर अत्यन्त आसक्त हुई हूँ। किन्तु मेरे मन में एक सन्देह है, उसे दूर करो। वह यह कि तुम चारों के वहाँ रहते हुए भी चोर ने वहाँ स्थित द्रव्य का

अपहरण कैसे किया और तब तुम लोग क्या कर रहे थे? यह मुझे बतलाओं इस पर उनमें से एक बोला कि हे सुमते! मैं इन सबको कहकर वेश्या के घर चला गया था और फिर वहाँ से रात के पिछले पहर में वहाँ मैं वापिस पहुँचा था। दूसरे ने कहा कि मैं भेड़ों के समूह में गया था और वहाँ से एक भेड़ को चुराकर लाया था। उसके पूर्व में क्या हुआ, यह मैं नहीं जानता हूँ। तीसरा बोला कि मैं उसके द्वारा लाई हुई भेड़ का मांस निकाल रहा था। उस समय वहाँ क्या हुआ, यह मुझे ज्ञात नहीं है। अन्त में चौथे ने कहा कि मैं उस मुर्दे की ओर ही देख रहा था, मुझे तब उस द्रव्य का ध्यान ही नहीं था। इसलिये उसे किसने लिया है? इसे मैं नहीं जानता हूँ। यह सब सुनकर सुमति ने कहा कि आप लोगों का कुछ दोष नहीं हैं मुझे इस समय आलस्य आ रहा है, अतएव किसी एक कथा को कहो। तब उन लोगों ने कहा कि हम नहीं जानते हैं, तुम ही कहो। तब वह कहने लगी–

पाटलीपुत्र में एक धनदत्त नाम का वैश्य था। उसके एक सुदामा नाम की पुत्री थी। वह एक दिन अपने भवन के पिछले भाग में स्थित सरोवर में पाँव धोने के लिये गई थी। वहाँ एक मगर के बच्चे ने उसके पाँव को पकड़ लिया था। तब उसने अतिशय डरकर अपने धनदेव नामक मामा के लड़के (या साले) की ओर देखते हुए उससे कहा कि हे धनदेव! मुझे मगर ने पकड़ लिया है, उससे छुड़ाओ। वह मजाक में बोला कि यदि तुम मेरा कहना मानो तो मैं तुम्हें उस मगर से छुड़ा देता हूँ। इस पर सुदामा ने उससे पूछा कि तुम्हारा वह कहना क्या है? इस उत्तर में उसने कहा कि तुम अपने विवाह के दिन लग्न के समय में वस्त्राभरणों के साथ मेरे पास आओ। सुदामा ने उसकी इस बात को स्वीकार कर लिया। तब उसने उसके धर्महस्त (प्रतिज्ञावचन) को ग्रहण करके उसे मगर से छुड़ाया। तत्पश्चात् जब उसके विवाह का समय आया तब वह अपने दिये हुए उपर्युक्त वचन से छुटकारा पाने के लिये रात्रि में धनदेव की दुकान की ओर चल दी। मार्ग में जाते हुए उससे किसी चोर ने आभूषण आदि माँगे। तब उसने उससे कहा कि इन आभूषणों के साथ मुझे कहीं पर जाना है। अतएव मैं तुम्हें इन्हें वापिस आते समय दूँगी। इस प्रकार से वह उसको भी धर्महस्त देकर आगे गई।

तब वह चोर कौतुक से छुपकर उसके पीछे लग गया। आगे जाने पर उसे राक्षस मिला। वह उससे बोला कि हे स्त्री! तू अपने इष्ट देवता का स्मरण कर, मैं तुझे खाता हूँ। वह बोली कि मैं अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कहीं जा रही हूँ, इसलिये मेरे वापिस आने पर तुम्हें जो अभीष्ट हो वह करना। इस प्रकार वह उसके लिये भी सत्यवचन देकर आगे गई। वह भी उसी प्रकार से उसके मार्ग में पीछे लग गया। तत्पश्चात् उसे कोई एक कोतवाल मिला। वह जब उसे पकड़ने लगा तब वह उसे भी उसी प्रकार वचन देकर आगे गई। वह भी उसी प्रकार से उसके पीछे लग गया। अन्त में वह इस क्रम से धनदेव की दुकान पर पहुँच गई। तब धनदेव ने उससे कहा कि तुम रात को अन्धकार में क्यों आई हो? पूर्व में तुम कन्या व मेरी साली थीं, अतएव मैंने मजाक में वैसा कह दिया था। अब तुम परस्त्री हो, अतः मेरे लिये बहिन के समान हो, अपने घर वापिस जाओ। इस पर अन्य (चोर आदि) तीनों ने भी 'सत्य भाषण करने वाली तुम हमारे लिये माता के समान हो' कहकर उसे घर वापिस भेज दिया। इस कथा को, कहकर सुमति ने उनसे पूछा कि इन चारों में उत्तम कौन है? तब उनमें से भेड़ के चोर ने चोर की, मांस ग्रहण करने वाले राक्षस की, रक्षा करने वाले ने कोतवाल की, तथा वेश्या के पति ने धनदेव की प्रशंसा की। इस प्रकार से सुमति ने उनके अभिप्राय को जानकर उन्हें शयनागार में भेज दिया और स्वयं भी सो गई। दूसरे दिन जिसने चोर की प्रशंसा की थी उसको बुलाकर सुमति ने अपनी गादी के ऊपर बैठाते हुए उससे कहा कि मैं तुम्हारे ऊपर आसक्त हूँ। परन्तु मेरे माता पिता मुझे किसी एक प्रियतम के साथ नहीं रहने देते हैं। इसलिये मेरी इच्छा है कि हम दोनों किसी दूसरे स्थान पर चलें। जब उसने इस बात को स्वीकार कर लिया तब सुमति ने, यह कहते हुए कि देशान्तर में जाने के लिये द्रव्य चाहिये। उसके आगे अपने द्रव्य की एक पोटली रख दी। फिर उसने कहा कि इतना द्रव्य तो मेरे पास है, तुम्हारे पास भी कुछ है या नहीं? उसने उत्तर दिया कि मेरा द्रव्य घर में है तथा इतना द्रव्य हाथ में भी है। यह कहते हुए उसने पोटली दिखलाई साथ ही उसने मैंने इसे किस प्रकार से ग्रहण की है, यह भी प्रगट कर दिया। तब उसने कहा कि ठीक है, प्रातःकाल

में चलेंगे। फिर उसने यह कहते हुए कि अब तुम अपने शयन-गृह में जाओ, उसकी उस पोटली को स्वयं ले लिया और उसे शयनगृह में भेज दिया। तत्पश्चात् उसने दोपहर में उस द्रव्य को पिता के हाथ में देकर उस चोर को दिखला दिया। तब कोतवाल ने उसे राजा के लिये समर्पित कर दिया। राजा ने इसे इस प्रकार का दण्ड सुनाया है। इस घटना को सुनकर नागश्री बोली कि यदि ऐसा है तो मैंने उस चोरी का परित्याग किया है, उसको भला किस प्रकार से छोड़ूँ? तब नागशर्मा ने कहा कि अच्छा इसे भी रहने दे, शेष दो कों चलकर वापिस कर आते हैं।।3।।

आगे जाने पर नागश्री ने एक ऐसी स्त्री को देखा कि जिसकी नाक कटी हुई थी तथा गला एक पुरुष के सिर सें बँधा हुआ था। उसे देखकर नागश्री ने पिता से पूछा कि इस स्त्री की यह दुर्दशा क्यों हुई है? वह बोला- इसी चम्पापुर में एक मत्स्य नाम का वैश्य रहता है। उसकी पत्नी का नाम जैनी है। इनके नन्द और सुनन्द नाम के दो पुत्र हैं। जैनी के भाई का नाम सूरसेन है। उसके मदालि नाम की पुत्री थी। उस समय नन्द किसी दूसरे द्वीप को जा रहा था। उसने वहाँ जाते समय मामा से कहा कि मैं दूसरे द्वीप को जा रहा हूँ। तुम अपनी पुत्री को मेरे लिए ही देना। यदि तुम उसे किसी दूसरे के लिए दोगे तो राजकीय नियम के अनुसार दण्ड भोगना पड़ेगा। इस पर सूरसेन ने उससे कुछ कालमर्यादा करने को कहा। तदनुसार वह बारह वर्ष की मर्यादा करके द्वीपान्तर को चला गया। तत्पश्चात् बारह वर्ष के बाद छह महीने और अधिक बीत गये, परन्तु वह वापिस नहीं आया। तब वह कन्या सुनन्द के लिये दे दी गई। वह विवाह के निमित्त दोनों के घर पर मण्डप आदि का निर्माण हो चुका था। अब विवाह-विधि सम्पन्न हाने में केवल पाँच दिन ही शेष रहे थे। इस बीच वह नन्द भी वापिस आ गया। नन्द को जब यह समाचार विदित हुआ तब उसने कहा कि यह कन्या चूँकि मेरे अनुज के लिए दी जा चुकी है, अतएव वह अब मेरे लिये पुत्री के समान है। इधर सुनन्द को जब यह ज्ञात हुआ कि मेरा बड़ा भाई इस कन्या के निमित्त मामा को आज्ञा देकर द्वीपान्तर को गया था तब उसने कहा कि उस अवस्था में वह मेरे लिए माता के समान है। इस प्रकार से जब उन दोनों ने ही उस कन्या के साथ विवाह करना

स्वीकार नहीं किया तब उसे अविवाहित अवस्था में अपने घर पर ही रहना पड़ा। उसके पड़ोस में एक नामचन्द्र नाम का वैश्य रहता था जो बारह करोड़ प्रमाण द्रव्य का स्वामी था। उसके बारह स्त्रियाँ थीं। वह इस कन्या के पास आता जाता था। जब उन दोनों के इस दुराचरण की वार्ता कोतवाल को ज्ञात हुई तब उसने इसकी जाँच-पड़ताल की। तत्पश्चात् अपराध के प्रमाणित हो जाने पर वे दोनों पकड़ लिये गये और इस प्रकार के दण्ड के भागी हुए हैं। इस प्रकार नागशर्मा के कहने पर नागश्री बोली कि हे तात! मैंने तो मुनिराज के पास यह व्रत ग्रहण किया है कि मैं दुर्बुद्धि से किसी भी परपुरुष का मुख न देखूँगी। फिर मैं उसे क्यों छोड़ूँ? इसपर नागशर्मा बोला कि अच्छा इसे भी रहने दे, जो एक और शेष है उसे वापिस करके आते हैं, चल।।4।।

तत्पश्चात् और आगे जाने पर मार्ग में उन्हें एक ऐसा पुरुष मिला जिसे पकड़कर कोतवाल मारने के लिए ले जा रहे थे। उसके विषय में ऊहापेह करते हुए पुत्री ने पिता से पूछा कि यह कौन है और किस कारण से इस अवस्था को प्राप्त हुआ है? नागशर्मा बोला- यह वीरपूर्ण नामक राजा का पुरुष है जो दूध का आहार करने वाला (ग्वाला) है। राजा के मुख्य घोड़े के निमित्त घास के लिए जो प्रदेश सुरक्षित था उसके भीतर एक बार किसी की गाय जा पहुँची थी। वीरपूर्ण ने लाकर उसे राजा को दिखलाया। तब राजा ने कहा कि इसे तुम्हीं ले लो। तदनुसार इसने उसको लेकर न्यायमार्ग का अतिक्रमण करते हुए यह नियम ही बना लिया कि 'देश में जो भी उत्तम पशुधन है उसको तुम ग्रहण करो' ऐसा राजाने मुझे वरदान दिया है। इस प्रकार से उसने सबके पशुधन को ग्रहण कर लिया। अन्त में जब उसने रानी की भैंसो को भी ले लिया तब रानी ने इसकी सूचना राजा को दी। इस पर राजा ने इसे मार डालने की आज्ञा दी है। इस घटना को सुनकर नागश्री ने कहा कि मैंने तो बहुत परिग्रह की इच्छा न रखने का नियम किया है। उसे मैं कैसे छोड़ूँ? इसके उत्तर में नागशर्मा ने कहा कि इसको भी रहने दे। चलो, उस मुनिराज की भर्त्सना (तिरस्कार) करके आते हैं।।5।।

इस प्रकार मुनिराज के पास जाकर और दूर ही खड़े रहकर नागशर्मा ने मुनिराज से कहा कि हे दिगम्बर! तुमने मेरी पुत्री के लिये

व्रत क्यों दिया है? इस प्रकार मुनिराज बोले कि हे विप्र! मैंने अपनी पुत्री के लिये व्रत दिया है, इससे भला तुम्हारी क्या हानि हुई है? यह सुनकर नागशर्मा ने कहा कि क्या यह तुम्हारी पुत्री है? मुनिराज ने उत्तर दिया कि हाँ, यह मेरी पुत्री है। वह पुत्री मुनिराज को नमस्कार करके उनके समीप में बैठ गई। तब ब्राह्मण ने जाकर इस वृत्तान्त को राजा से कहा। इससे उस समय सब को बहुत आश्चर्य हुआ। फिर राजा, पुरवासी जन तथा बहुत से अजैन जन भी मुनिराज की वन्दना करने व इस कौतुक को देखने के लिये मुनिराज के समीप में गये। वहाँ पहुँचकर राजा ने उपर्युक्त दोनों मुनियों के लिये नमस्कार किया। फिर उसने सूर्यमित्र मुनिराज से पूछा कि यह किसकी पुत्री है? मुनिराज ने उत्तर दिया कि यह मेरी पुत्री है। तब नागशर्मा ने कहाकि मेरी स्त्री ने उस नाग की पूजा करके इस पुत्री को प्राप्त किया है, यह सब ही जन भले प्रकार जानते हैं। फिर हे देव! यह इसकी पुत्री कैसे हो सकती है? इस पर मुनि बोले कि हे राजन्! यदि यह इसकी पुत्री है तो इसने उसे क्या कुछ व्याकरणादि को पढ़ाया है या नहीं? ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि नहीं। तो फिर यह तुम्हारी पुत्री कैसे है? यह मुनिराज ने नागशर्मा से यह प्रश्न किया। इसके उत्तर में उसने पूछा कि क्या तुमने उसे कुछ पढ़ाया है? इसके प्रत्युत्तर में मुनिराज ने कहा कि हाँ, मैंने उसे पढ़ाया है। इस पर राजा ने कहा कि हे मुनिराज! तो इसकी परीक्षा दिलाइये तब मुनिराज बोले कि ठीक है, मैं इसकी परीक्षा भी दिला देता हूँ। तत्पश्चात् मुनिराज ने उस कन्या के मस्तक पर अपने दाहिने हाथ को रखते हुए कहा कि हे वायुभूति! मुझ सूर्यमित्र ने राजगृह के भीतर जो कुछ तुझे पढ़ाया था उस सबकी परीक्षा दे। इस प्रकार मुनिराज के कहने पर विद्वान् पुरुषों ने जिस किसी भी स्थल (प्रकरण) में जो कुछ भी नागश्री से पूछा उस सब का उत्तर उसने कोमल, मधुर, स्पष्ट एवं अर्थपूर्ण वाणी में देकर उसकी परीक्षा दे दी। इससे सब लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ। फिर राजा बोला कि हे मुनीन्द्र! मेरे हृदय में बहुत कौतूहल हो रहा है। वह इसलिये कि हम लोगों ने नागश्री से परीक्षा दिलाने की प्रार्थना की थी, परन्तु परीक्षा दे रहा है वायुभूति। इस पर मुनिराज बोले कि वायुभूति और नागश्री एक ही हैं। वह इस प्रकार से-

वत्स देश के भीतर कौशाम्बी नगरी में अतिबल नाम का राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम मनोहरी था। उसका पुरोहित सोमशर्मा नाम का एक ब्राह्मण था। इसकी पत्नी का नाम काश्यपी था। इस पुरोहित के अग्निभूति और वायुभूति नाम के दो पुत्र थे। इनको सोमशर्मा ने पढ़ाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु वे पढ़ नहीं सके। जब उनका पिता मरा तब राजा को उनके विषय में कुछ परिचय प्राप्त नहीं था। इसीलये उसने अज्ञानता से इनके लिये पुरोहित का पद दे दिया। इस प्रकार से उनका सुखपूर्वक समय बीतने लगा। एक समय वहाँ अनेक वादियों के अभिमान को चूर करने वाला विजयजिह्व नाम का एक वादी आया। वह वादार्थी होकर अनेक देशों में घूमा था। वहाँ पहुँचकर उसने राज प्रासाद के द्वार पर एक वादसूचक पत्र लगा दिया। वाद का अधिकार पुरोहित को प्राप्त होने से अन्य किसी ने उसके पत्र (चैलेंज) को स्वीकार नहीं किया। तब अतिबल राजा ने उन दोनों के लिये उस पत्र को स्वीकार कर उक्त वादी के साथ विवाद करने की आज्ञा दी। इस पर उन दोनों ने उस पत्र को लेकर फाड़ डाला। तब राजा को ज्ञात हुआ कि ये दोनों ही मूर्ख हैं। इससे उसने उन दोनों से पुरोहित के पद को छीनकर उसे किसी सोमिल नामक उनके सगोत्री बन्धु को दे दिया। उन दोनों को इस घटना से बहुत दुःख हुआ। फिर वे शिक्षा प्राप्त करने के लिये देशान्तर जाने को उद्यत हुए। तब उनकी माता ने उनसे कहा कि यदि तुम दोनों का ऐसा दृढ़ निश्चय है तो तुम राजगृह नगर में जाओ। वहाँ सुबल नाम का राजा राज्य करता है। रानी का नाम सुप्रभा है। उक्त राजा के यहाँ जो अतिशय विद्वान सूर्यमित्र नाम का पुरोहित है, वह मेरा भाई है। तुम दोनों उसके पास जाओ। तदनुसार वे दोनों वहाँ जाकर अपने मामा से मिले। उन्होंने उससे अपने सब वृत्तान्त को कह दिया। तब मामा ने मन में विचार किया कि इन दोनों ने पिता के पास उत्तम भोजनादि को पाकर अध्ययन नहीं किया है। यदि मैं भी इन्हें सुरुचिपूर्ण भोजनादि देता हूँ तो फिर यहाँ भी उनका समय खेल-कूद में ही जावेगा और वे अध्ययन नहीं कर सकेंगे। बस, यही सोचकर उसने उन दोनों से कहा कि मेरे कोई बहिन ही नहीं है, फिर तुम भानजे कैसे हो सकते हो? यदि तुम भिक्षा से भोजन करके

अध्ययन करना चाहते हो तो पढ़ो, मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा। तब उन दोनों ने भिक्षा से ही भोजन करके उसके पास अध्ययन किया। इस प्रकार से वे समस्त शास्त्रों में पारंगत होकर जब घर वापिस जाने लगे तब सूर्यमित्र ने उन्हें यथायोग्य वस्त्रादि देकर कहा कि मैं वास्तव में तुम्हारा मामा हूँ। यह सुनकर अग्निभूति को बहुत हर्ष हुआ। परन्तु वायुभूति को इससे बहुत क्रोध हआ। तब उसने उससे कहा कि तुम मामा नहीं, चण्डाल हो, जो तुमने हमें भिक्षा के लिये घुमाया है। तत्पश्चात् वे वहाँ से अपने नगर में आये और अपने पद (पुरोहित) पर प्रतिष्ठित हो गये। अब वे राजा से सम्मानित होकर उत्तम विभूति के साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे थे।

इधर राजगृह में राजा सुबल ने स्नान के अवसर पर तेल से लिप्त हो जाने के भय से अपनी मुंदरी सूर्यमित्र के हाथ में दे दी। वह उसे अँगुली में पहिनकर अपने घर को चला गया। भोजन के पश्चात् जब वह राजभवन को जाने लगा तब वह अँगुली में उस मुद्रिका को न देखकर खेद को प्राप्त हुआ। वह स्वयं निमित्तज्ञ नहीं था, इसलिये उसने परमबोधि नाम के ज्योतिषी को बुलाकर उससे कहा कि 'मैंने जो कुछ सोचा है उसे बतलाइये। तत्पश्चात् उसने उसके आगे कुछ चिन्तन किया। ज्योतिषी ने कहा कि तुमने यह विचार किया है कि 'मैं राजा से अमुक नाम वाले हाथी को मागूँगा, वह मुझे प्राप्त होता है कि नहीं।' तुम उसको प्राप्त करोगे, याचना करो। फिर वह उस ज्योतिषी को वापिस भेजकर अपने भवन के ऊपर गया। वह वहाँ छत पर चिन्ताकुल बैठा ही था कि इतने में उसे नगर के बाहर उद्यान में जाते हुए सुधर्म नाम के दिगम्बर मुनिराज दिखायी दिये। तत्पश्चात् उसने विचार किया कि ये उस मुंदरी के सम्बन्ध में कुछ जानते होंगे। इसी विचार से वह सन्ध्या के समय छुपकर उनके निकट गया। मुनिराज़ उसको अति आसन्न भव्य जानकर बोले कि हे सुमित्र! तू राज़ा की मुंदरी को खोकर यहाँ आया है। तब वह 'हाँ, मैं इसी कारण आया हूँ' यह कहते हुए उनके चरणों में गिर गया। मुनिराज ने कहा कि तुम अपने भवन के पीछे स्थित उद्यानवर्ती तालाब में जब सूर्य के लिये अघ्य दे रहे थे तब वह अँगुली में से निकलकर कमलकर्णिका के भीतर जा पड़ी है। वह अभी भी वहीं पर पड़ी हुई है, उसे प्रातःकाल में उठा लेना। पश्चात् उसने

वहाँ से उसे उठा लिया और राजा को दे दिया। तत्पश्चात् वह किसी को कुछ न कहकर उस निमित्त ज्ञान को सीखने के लिये मुनिराज के समीप में गया। मुनिराज ने उससे कहा कि दिगम्बर को छोड़कर किसी दूसरे को वह निमित्त विद्या नहीं प्राप्त होती है। तब वह सब सोच-विचार करके दिगम्बर हो गया और बोला कि अब मुझे वह विद्या दे दीजिये। फिर मुनिराज बोले कि वह क्रियाकलाप पढ़ने के बिना नहीं आती है। इस क्रम से उन्होंने उसे चारों अनुयोगों को पढ़ाया। तब द्रव्यनुयोग के पढ़ते समय उसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। अब वह उत्कृष्ट तपस्वी हो गया था। वह अपने गुरु के साथ विहार करता हुआ चम्पापुर में आया। यहाँ उसे वासुपूज्य जिनेन्द्र की निर्वाण भूमि की प्रदक्षिणा करते समय अवधिज्ञान भी उत्पन्न हो गया। तत्पश्चात् गुरु उसके लिये अपना पद देकर एकल विहारी हो गये। उन्हें बनारस पहुँचने पर मुक्ति की प्राप्ति हुई।

सूर्यमित्र मुनिराज एक बार आहार के निमित्त कौशाम्बी पुरी के भीतर गये। तब अग्निभूति ने विधिवत् उनका पडिगाहन किया। जब वे आहार लेकर वापिस जाने लगे तब अग्निभूति ने उनसे वायुभूति को सम्बोधित करने के लिये प्रार्थना की। मुनिराज बोले कि वह अतिशय क्रूर है, इसलिये उसके पास जाना योग्य नहीं है। फिर भी वे उसके आग्रह को देखकर अग्निभूति के साथ वायुभूति के घर पर गये। उसे उन मुनिराज को देखते ही पूर्व घटना का स्मरण हो आया। तब उसने उनकी बहुत निन्दा की। उस समय अग्निभूति ने मुनिराज के साथ उद्यान में जाकर विचार किया कि यह मुनिनिन्दा मैंने करायी है। यह विचार करते हुए उसके हृदय में वैराग्यभाव का प्रादुर्भाव हुआ। इससे उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस वृत्तान्त को जानकर अग्निभूति की पत्नी देवर के पास गई और उससे बोली कि रे वायुभूति! तेरे द्वारा मुनिनिन्दा की जाने से मेरे पतिदेव ने तप को ग्रहण कर लिया है। जब तक कोई इस बात को नहीं जान पाता है तब तक हम दोनों उसके पास चलें और सम्बोधित करके उसे घर वापिस ले आवें। यह सुनकर वायुभूति को क्रोध आ गया। तब उसने उसके मुँह पर पाँव से ठोकर मार दी। इस अपमान से क्रोध के वश होकर उसने यह निदान किया कि मैं जन्मान्तर

में तेरे दोनों पाँवों को खाऊँगी। तत्पश्चात् सातवें दिन वायुभूति को उदम्बर (एक विशेष जाति का) कोढ़ हो गया। फिर वह मरकर वहीं पर गधी और तत्पश्चात् शूकरी हुआ। इसके पश्चात् वह मरण को प्राप्त होकर इस चम्पापुर में चण्डाल के बाड़े में कुत्ती हुआ। फिर से भी मरकर वह उसी बाड़े में चाण्डाल नील और कौशाम्बी की पुत्री हुआ जो जन्मान्ध और अतिशय दुर्गन्धित शरीर से संयुक्त थी। एक समय वहाँ पर वे सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि आये। उस दिन सूर्यमित्र मुनि ने उपवास किया था अकेले अग्निभूति मुनि चर्या के लिये नगर की ओर जा रहे थे। बीच में उन्हें जामुन के वृक्ष के नीचे बैठी हुई वह चाण्डालिनी दिखायी दी। उसे देखकर उन्हें दुख हुआ। इससे उनकी आँखों से आँसू निकल पड़े। तब वे आहार न लेकर वहाँ से वापिस चले आये। उन्होंने गुरू के पास आकर नमस्कार करते हुए उनसे पूछा कि उस चाण्डालिनी के देखने से मुझे दुख क्यों हुआ? उत्तर में गुरू ने उक्त चाण्डालिनी के वृत्तान्त का निरूपण करते हुए बतलाया कि वह भव्य है और आज ही उसका मरण भी होने वाला है। इस पर अग्निभूति ने उसे सम्बोधित करके पाँच अणुव्रतों और सल्लेखना को ग्रहण कराया।। इस बीच में इस (नागशर्मा) की पत्नी त्रिवेदी इन नागों की पूजा के लिये आ रही थी। उसके बाजों की ध्वनि को सुनकर इसने निदान किया कि मैं व्रत के प्रभाव से इसकी पुत्री होऊँगी। तदनुसार वह त्रिवेदी की पुत्री यह नागश्री हुई है। आज यह नागों की पूजा के लिये यहाँ आयी थी। हम दोनों वे ही सूर्यमित्र और अग्निभूति भट्टारक हैं। मुझे देखकर इसे पूर्व भव का स्मरण हो गया है। इससे उसने पहले किये हुए वेद के अभ्यास का स्मरण करके यहाँ उक्त प्रकार से परीक्षा दी है। इस प्रकार से वह वायुभूति ही यह नागश्री है। उपर्युक्त प्रकार से मुनि के द्वारा निरूपित इस वृत्तान्त को सुनकर नागशर्मा आदि ब्राह्मणों ने जैन धर्म की बहुत प्रशंसा की। उस समय उनमें से बहुतों मुनि ने दीक्षा धारण कर ली। उनके साथ नागश्री और त्रिवेदी आदि ब्राह्मणियों ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली। राजा चन्द्रवाहन अपने पुत्र लोकपाल को राज्य देकर बहुतों के साथ दीक्षित हो गया। उसके साथ अन्तःपुर ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

तत्पश्चात् सूर्यमित्र आचार्य संघ के साथ विहार करते हुए राजगृह में आकर उद्यान के भीतर विराजमान हुए। उस समय कौशाम्बी का राजा अतिबल भी अपने चाचा सुबल से मिलने के लिये वहाँ आकर स्थित हुआ। जब उन दोनों (सुबल और अतिबल) को वनपाल से सूर्यमित्र आचार्य के शुभागमन का समाचार ज्ञात हुआ तब वे दोनों उनकी वन्दना के लिये गये। उस समय सूर्यमित्र आचार्य को दीप्त ऋद्धि प्राप्त हो चुकी थी। उनको दीप्त ऋद्धि से संयुक्त देखकर राजा सुबल ने विचार किया कि जो सूर्यमित्र मेरे यहाँ पुरोहित था, वह तप के प्रभाव से इस प्रकार की ऋद्धि को प्राप्त हुआ है। इस प्रकार तप के फल को प्रत्यक्ष देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। तब उसने अतिबल के लिये राज्य देकर दीक्षा लेने का निश्चय किया। परन्तु जब अतिबल ने राज्य को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया तब उसने मीनध्वज नामक अपने पुत्र को राज्य देकर अतिबल आदि बहुत से राजाओं के साथ जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली। इनके साथ उनकी स्त्रियों ने भी आर्यिका दीक्षा ले ली। इस प्रकार से सूर्यमित्र आचार्य ने अनेक देशों में विहार करके धर्म का प्रचार किया। नागश्री ने बहुत समय तक तपश्चरण किया। अन्त में उसने एक मास का संन्यास लेकर शरीर को छोड़ दिया। तब वह अच्युत स्वर्ग के भीतर पद्मगुल्म विमान में पद्मनाभ नामक महर्द्धिक देव हुई। इस स्वर्ग में वह नागशर्मा भी देव उत्पन्न हुआ। त्रिवेदी का जीव मृत्यु के पश्चात् उस पद्मनाभ देव का अंगरक्षक देव हुआ। चन्द्रवाहन, सुबल और अतिबल राजाआरण स्वर्ग में अतिशय विभूति के धारक देव हुए। अन्य संयमी जन भी यथायोग्य गति को प्राप्त हुए। सूर्यमित्र और अग्निभूति को वाराणसी पहुँचने पर केवलज्ञान प्राप्त हुआ। वे दोनों अग्निमन्दिर पर्वत के ऊपर मोक्ष को प्राप्त हुए। तब उस पद्मनाभ देव ने आकर उनका निर्वाणोत्सव सम्पन्न किया। इस देव ने अच्युत स्वर्ग में स्थित रहकर बाईस सागरोपम काल तक वहाँ के सुख का उपभोग किया।

अवन्ति देश के भीतर उज्जयिनी पुरी में राजा वृषभांक राज्य करता था। इसी नगरी में एक सुरेन्द्रदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी पत्नी का नाम यशोभद्रा था। इसके कोई पुत्र नहीं था। इसलिए वह उदास रहती थी। एक समय उसने राजा के द्वारा करायी गई आनन्द

भेरी के शब्द को सुनकर पूछा कि यह भेरी का शब्द किसलिये कराया गया है? इसके उत्तर में उसकी सखी ने कहा कि उद्यान में सुमतिवर्धन नाम के मुनिराज आये हुए हैं। राजा उनकी वन्दना के लिये जायेगा। इसीलिए यह भेरी का शब्द कराया गया है। इस शुभ समाचार को सुनकर वह यशोभद्रा भी मुनिराज की वन्दना के लिये उस उद्यान में जा पहुँची। वन्दना करने के पश्चात् उसने उनसे पूछा कि हे नाथ! मेरे पुत्र होगा कि नहीं? मुनिराज बोले- पुत्र होगा, किन्तु उसके मुख को देखकर तुम्हारा पति दीक्षा ग्रहण कर लेगा। इसके अतिरिक्त मुनिराज के दर्शन पाकर वह पुत्र भी दीक्षित हो जावेगा। यह सुनकर उसे हर्ष और विषाद दोनों हुए। कुछ दिनों में यशोभद्रा के गर्भाधान हुआ। तत्पश्चात् उसने सेठ को पुत्र जन्म का समाचार न ज्ञात हो, इसके लिये तलघर के भीतर पुत्र को उत्पन्न किया। परन्तु उसके रुधिर आदि अपवित्र धातुओं से सने हुए वस्त्रों को धोती हुई दासी को देखकर किसी ब्राह्मण ने उसका अनुमान कर लिया। तब वह बाँस में बँधी हुई ध्वजा को हाथ में लेकर सेठ के पास गया और उसने इस पुत्र जन्म की वार्ता कह दी। सेठ ने पुत्र के मुख को देखकर उस ब्राह्मण को बहुत द्रव्य दिया। फिर उसने दीक्षा ले ली। यशोभद्रा ने पुत्र का नाम सुकुमार रखकर 'वह मुनि को न देख सके' इसके लिये सर्वतोभद्र नाम का अनेक रत्नों से खचित एक सुवर्णमय भवन बनवाया। इसके साथ उसने उसके चारों ओर रजतमय (चाँदी से निर्मित) अन्य भी बत्तीस भवन बनवाये। इस भवन में रहता हुआ वह सुकुमार दिन व रात आदिरूप काल के भेद को, राजा व प्रजा आदिरूप जाति भेद को तथा शीत और आतप आदि के दुःख को भी नहीं जानता था। वह ऋतु विमान में स्थित इन्द्र के समान इस सुन्दर भवन में वृद्धि को प्राप्त हुआ। जब सुकुमार युवावस्था को प्राप्त हुआ तब यशोभद्रा ने उसका विवाह चतुरिका, चित्रा, रेवती, मणिमाला, पद्मिनी, सुशीला, रोहिणी, सुलोचना और सुदामा आदि बत्तीस धनिक कन्याओं के साथ उस भवन के भीतर से कर दिया तथा भवन के बाहर जो विवाह-मण्डल बनवाया गया था वहाँ पर उसने समुचित विवाहोत्सव भी किया। यशोभद्रा ने सुकुमार की उन पत्नियों को एक एक रजतमय भवन दे दिया। इस प्रकार से वह सुकुमार

अतिशय विभूति के साथ वहाँ भोगों का अनुभव कर रहा था। उसके दीक्षा ले लेने के भय से माता ने अपने भवन में मुनिराज के प्रवेश को रोक दिया था।

एक दिन गाँव की सीमा में रहने वाले किसी व्यापारी ने आकर एक रत्नमय अमूल्य कम्बल राजा को दिखलाया। परन्तु राजा ने उसका मूल्य न दे सकने के कारण उस कम्बल को न लेकर व्यापारी को वापिस कर दिया। तब यशोभद्रा ने उसका समुचित मूल्य देकर उसे अपने पुत्र के लिये ले लिया। परन्तु सुकुमार ने उसे देखकर कहा कि यह कठोर है, मेरे योग्य नहीं है। तब यशोभद्रा ने उक्त रत्नकम्बल की अपनी बत्तीस पुत्र वधुओं के लिये पादुका (जूतियाँ) बनवा दीं। उनमें से सुदामा एक दिन उन पादुकाओं को पाँवों में पहनकर अपने भवन के ऊपर (छत पर) गई और वहाँ पश्चिम द्वार के मण्डप में कुछ समय बैठी रही। फिर वह उन पादुकाओं को वहीं भूलकर महल के भीतर चली गई। उनमें से एक पादुका को मांस समझकर गिद्ध ले गया। उसने राजभवन के शिखर पर बैठकर चोंच से उसे तोड़ा और क्रोधवश राजांगण में फेंक दिया। राजा ने उसे आश्चर्यपूर्वक देखकर पूछा कि यह क्या है? तब किसी ने उससे कहा कि यह सुकुमार की पत्नी की पादुका है। यह सुनकर राजा कौतूहल के साथ सुकुमार को देखने के लिये चल दिया। उसे यशोभद्रा ने बड़ी विभूति के साथ भवन के भीतर प्रविष्ट कराया। फिर वह उससे बोली कि हे देव! आपका शुभागमन कैसे हुआ है? उत्तर में राजा ने कहा कि मैं सुकुमार को देखने के लिये आया हूँ। तब यशोभद्रा ने उसे भवन के मध्यम खण्ड में बैठाया और फिर पुत्र को लाकर उसे दिखलाया। राजा ने उसे देखा और प्रसन्न होकर अपने आधे आसन पर बैठा लिया। तत्पश्चात् यशोभद्रा ने राजा से प्रार्थना की कि आप भोजन करके यहाँ से वापिस जावें। राजा ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। भोजन के पश्चात् राजा ने यशोभद्रा से पूछा कि कुमार को जो तीन व्याधियाँ हैं उनकी तुम उपेक्षा क्यों कर रही हो? उत्तर में यशोभद्रा ने पूछा कि इसे कौन-सी व्याधियाँ हैं? तब राजा ने कहा कि प्रथम तो यह है कि वह अपने आसन पर स्थिरता से नहीं बैठता है, दूसरे प्रकाश के समय इसकी आँखों से पानी बहने लगता

हैं, तीसरे भोजन में वह चावल के एक-एक कण को निगलता है। और थूकता है। यह सुनकर यशोभद्रा बोली कि ये व्याधियाँ नहीं हैं। किन्तु यह दिव्य शय्या (पलंग) के ऊपर दिव्य गादी पर सोता व बैठता है। आज जब यह आपके साथ बैठा था तब मंगल के निमित्त मस्तक पर फेंके हुए सरसों के दानों में से कुछ दाने सिंहासन के ऊपर गिर गये थे। उनकी कठोरता को न सह सकने के कारण वह आसन के ऊपर स्थिरता से नहीं बैठ सका था। इसके अतिरिक्त इसने अब तक रत्नों की प्रभा को छोड़कर अन्य दीपक आदि की प्रभा को कभी भी नहीं देखा है। परन्तु आज आपकी आरती उतारते समय दीपक की प्रभा को देखने से उसकी आँखों में से पानी निकल पड़ा। तीसरी बात यह है कि सूर्यास्त के समय शालि धान्य के चावलों को धोकर तालाब के भीतर कमल की कर्णिका में रख दिया जाता है, तब दूसरे दिन वह इनके भात को खाया करता है। आज चूँकि उतने चावलों का भात आप दोनों के लिये पूरा नहीं हो सकता था इसीलिये उनमें कुछ थोड़े से दूसरे चावल भी मिला दिये गये थे। इसी कारण उसने अरुचिपूर्वक उन चावलों को चुन-चुनकर खाया है। इसप्रकार यशोभद्रा के द्वारा निरूपित वस्तुस्थिति को जान करके राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। उस समय यशोभद्रा के द्वारा राजा के लिये जो वस्त्र और आभूषण भेंट किये गये थे उनसे राजा ने उसके पुत्र का सम्मान किया, अन्त में वह कुमार का 'अवन्तिसुकुमार' यह दूसरा नाम रखकर अपने राजभवन को वापिस चला गया। वह अवन्तिसुकुमार दिव्य भोगों का अनुभव करता हुआ क्रीड़ा में निरत हो गया।

एक दिन सुकुमार के मामा यशोभद्र नामक महामुनिराज को अवधिज्ञान से विदित हुआ कि अब सुकुमार की आयु बहुत ही थोड़ी शेष रही है। इसलिये वह सुकुमार को प्रबुद्ध करने के लिये वर्षायोग ग्रहण करने के दिन ही उसके भवन के निकटवर्ती उद्यान में स्थित जिनभवन में आये। तब वनपाल ने मुनिराज के आने का समाचार सुकुमार की माता को दिया। इससे उसने वहाँ जाकर मुनिराज की वंदना करते हुए उनसे कहा कि हे नाथ! मुझे पुत्र का मोह बहुत है। वह आपके शब्दों से सुनने से ही यदि तप को ग्रहण कर लेता है तो मेरा मरण निश्चित

है इसीलिये आप यहाँ से किसी दूसरे स्थान में चले जावें। इसके उत्तर में मुनिराज बोले कि, हे माता! आज वर्षा योग का दिन है, अतःएव अब यहाँ से अन्यत्र जाना सम्भव नहीं है। अब मुझे चातुर्मासिक प्रतिमायोग से यहीं पर रहना पड़ेगा। इस प्रकार वे मुनिराज प्रतिमायोग से वहीं पर स्थित हो गये। जब उनका चातुर्मास पूर्ण होने को आया तब उन्होंने कार्तिक की पूर्णिमा को रात्रि के अन्तिम पहर में वर्षायोग को समाप्त किया। इस समय उन्होंने जाना कि अब सुकुमार की निद्रा भंग हो चुकी है। तब उन्होंने उसको बुझाने के लिए त्रिलोकप्रज्ञप्ति का अनुक्रम से पाठ करना प्रारम्भ कर दिया। उसमें जब अच्युत स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में स्थित पद्मनाभ देव की विभूति का वर्णन आया तब उसे सुनकर सुकुमार को जातिस्मरण हो गया। इससे उसके वैराग्यभाव का प्रादुर्भाव हुआ। तब वह उस भवन से बाहर जाने को उद्यत हुआ। परन्तु उससे बाहर निकलने के लिये कोई उपाय नहीं दिखा। इससे वह व्याकुल हो उठा। इतने में उसे वस्त्रों की पेटी दीख पड़ी। उसमें से उसने वस्त्रों को निकाल कर उन्हें परस्पर में जोड़ दिया। फिर उसने उस वस्त्रमाला के एक छोर को खम्भे से बाँधा और दूसरे को नीचे जमीन तक लटका दिया। इस प्रकार वह उस वस्त्रमाला का अवलम्बन लेकर पुण्योदय से उस भवन के बाहर आ गया। तत्पश्चात् उसने मुनिराज के निकट जाकर उनकी वंदना करते हुए उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। मुनिराज बोले कि तुमने बहुत अच्छा विचार किया है, अब तुम्हारी केवल तीन दिन की ही आयु शेष रही है। तत्पश्चात् उसने निर्जन शिलातल के ऊपर संन्यास लेने का विचार किया और वहीं पर दीक्षित हो गया। पश्चात् प्रातःकाल होने पर उसने नगर के बाहर जाकर किसी मनोहर स्थान में प्रयोपगमन (स्व और परकृत सेवा-शुश्रूषा का परित्याग) संन्यास ले लिया। यशोभद्राचार्य भी उस जिनालय से जाकर किसी अन्य जिनालय में ठहर गये। इधर सुकुमार की स्त्रियों ने उसे न देखकर अपनी सासू से कहा। वह इस बात को सुनकर मूर्च्छित हो गई। तत्पश्चात् सचेत होकर जब इधर-उधर खोजा तब उसे वह वस्त्रमाला दिखायी दी। इससे उसे ज्ञात हुआ कि वह भवन के बाहर निकल गया है। फिर जब उसने चैत्यालय में जाकर देखा तो वहाँ वे मुनिराज भी नहीं दिखायी दिये। अब उसे निश्चय हो

गया कि कुमार को वे मुनिराज ही ले गये हैं। इसी विचार से राजा आदि भी महान् आग्रह से उसे खोजने के लिये गये। परन्तु वह उन्हें कहीं पर भी नहीं मिला। सुकुमार के जाने के दिन बन्धुजनों की तो बात ही क्या है, किन्तु उस नगर के पशुओं तक ने भी आहारादि को ग्रहण नहीं किया। उधर सुकुमार मुनि स्व व परकृत वैयावृत्ति से निरपेक्ष होकर एक पार्श्वभाग से स्थित हुए और भावनाओं का विचार करने लगे। उस समय वह सोमदत्ता (अग्निभूति की पत्नी) अनेक योनियों में परिभ्रमण करती हुई उस वन में श्रृगाली हुई थी। वन में जाते समय सुकुमार के कोमल पाँवों के फूट जाने से जो रुधिर की धारा वह निकली थी उसको चाटती हुई वह श्रृगाली वहाँ जा पहुँची। उसने वहाँ उन निश्चल सुकुमार मुनिराज को देखा। तब वह उनके दाहिने पैर को स्वयं खाने लगी और बाँयें पैर को उसके बच्चे खाने लगे। उस सबने पहिले दिन उनको घुटनों तक और दूसरे दिन जांघों तक खाया। तीसने दिन आधी रात के समय जब उन सबने पेट को फाड़कर आँतों को खींचना प्रारम्भ किया तब उत्कृष्ट समाधि के साथ शरीर को छोड़कर वे सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए। उस समय इन्द्रों के आसन कम्पित हुए। इससे जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि सुकुमार स्वामी घोर उपसर्ग को सहकर मरण को प्राप्त हुए हैं। तब वे जय जय शब्दों और वादित्रों आदि के शब्दों से समस्त दिशाओं को व्याप्त करते हुए वहाँ गये। वहाँ जाकर उन्होंने सुकुमार के शरीर की पूजा की। देवों के जय जय शब्द को सुनकर जब सुकुमार की माता को उसके दीक्षित होकर उत्तम गति को प्राप्त होने का समाचार ज्ञात हुआ तब उसने आर्त ध्यान को छोड़कर सुकुमार की उत्साहपूर्वक स्तुति की। प्रातःकाल हो जाने पर वह समस्त जन को बुलाकर राजा आदि के साथ उस स्थान पर गई। वहाँ जब उसने सुकुमार के शेष रहे आधे शरीर को देखा। तब वह मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर गई। उस समय उसके शोक का पारावार न था। सुकुमार की पत्नियों और बन्धुजनों को भी बहुत शोक हुआ। सुकुमार की सहनशीलता को देखकर राजा आदि को बहुत आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् उसने सन्तुष्ट होकर अपने आपको तथा अन्य जनता को भी संबोधित करते हुए कहा कि "ऐसा दुर्धर अनुष्ठान महापुरुषों के ही सम्भव है।" अन्त में वे सब

सुकुमार के शरीर की पूजा व अग्निसंस्कार करके जिस जिनालय में यशोभद्राचार्य विराजमान थे वहाँ गये। मुनिराज को देखकर यशोभद्रा ने आनन्दपूर्वक कुछ हँसते हुए प्रथमतः जिनेन्द्र की पूजा व वंदना की और तत्पश्चात् उन मुनिराज की भी पूजा व बंदना की। फिर उसने उनसे पूछा कि सुकुमार के ऊपर मेरे अतिशय स्नेह का क्या कारण है? इस प्रश्न को सुनकर यशोभद्र मुनिराज ने अच्युत स्वर्ग जाने तक की पूर्व की समस्त कथा कह दी। तत्पश्चात् वे बोले कि नाग शर्मा का जीव जो अच्युत स्वर्ग में देव हुआ था वह वहाँ से च्युत होकर राजसेठ इन्द्रदत्त और गुणवती का पुत्र सुरेन्द्रदत्त (यशोभद्रा का पति) हुआ है। चन्द्रवाहन राजा का जीव वहाँ से च्युत होकर वैश्य सर्वयश और यशोमती के मैं यशोभद्र नामक पुत्र हुआ हूँ। मैंने कुमार अवस्था में ही दीक्षा ले ले थी। मुझे अवधि और मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हो चुका है। त्रिवेदी का जीव स्वर्ग से च्युत होकर मेरी बहिन तुम हुई हो। पद्मनाभ देव वहाँ से च्युत होकर सुकुमार हुआ था। राजा सुबल का जीव आरण स्वर्ग से आकर वृष्रभांक राजा हुआ है। अतिबल का जीव वहाँ से च्युत होकर इस राजा का पुत्र कनकध्वज हुआ है। मुनिराज के द्वारा प्रतिपादित इस सब वृत्तान्त को सुनकर यशोभद्रा ने सुकुमार की चार गर्भवती पत्नियों को घर आदि सँभालकर शेष सब पुत्रवधुओं और बन्धुओं के साथ दीक्षा धारण कर ली। राजा ने छोटे पुत्र को राज्य देकर कनकध्वज आदि बहुत से राजपुत्रों के साथ दीक्षा ले ली। साथ ही उनकी स्त्रियों ने भी दीक्षा ले ली। उन सभी ने घोर तपश्चरण किया। उनमें से सुरेन्द्रदत्त, यशोभद्र, वृषभांक और कनकध्वज मोक्ष को प्राप्त हुए। शेष सब यथा योग्य सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि विमान तक पहुँचे। यशोभद्रा अच्युत स्वर्ग में तथा शेष स्त्रियाँ सौधर्म से लेकर यथा योग्य अच्युत स्वर्ग तक देव व देवियाँ हुई। इस प्रकार मायाचार से भी जब सूर्यमित्र आगम को सुनकर सर्वज्ञ तथा वह चाण्डाली सुकुमार हुई है तब क्या अन्य भव्य जीव सुरूचिपूर्वक उसके चिन्तन से लोक के स्वामी नहीं होंगे? अर्थात् अवश्य होंगे।।21-22।।

23. विद्युद्वेग चोर (भीमकेवली) कथा

लाक्षावासनिवासकोऽपि मलिनश्चौरः सदा रौद्रधी
श्चाण्डालादमलागमस्य वचनं श्रुत्वा ततः शर्मदम्।
सर्वज्ञो भवति स्म देवमहितो भीमाह्वयः सौख्यदो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले॥23॥

लाख के घर में स्थित होकर निरन्तर क्रूर परिणाम रखने वाला जो निकृष्ट चोर चाण्डाल से निर्मल एवं सुखदायक आगम के वचन को सुनकर भीम नामक केवली हुआ, जिसकी देवों ने आकर पूजा की। इसीलिए जिन भगवान् में भक्ति रखने वाला मैं उस आगम की प्राप्ति से निर्मल चारित्र को धारण करता हुआ पृथ्वी तल पर कृतार्थ होता हूँ।।23।।

23. इसकी कथा इस प्रकार है- सौधर्म कल्प के भीतर कनकप्रभ विमान में स्थित कनकप्रभ नाम का देव कनकमाला देवी और सब देवों के साथ नन्दीश्वर द्वीप में गया। वहाँ उसने जिन-पूजा की। तत्पश्चात् अन्य सब देवों के स्वर्ग लोक चले जाने पर वह स्वयं जम्बूद्वीप सम्बन्धी पूर्वविदेह के भीतर पुष्कलावती देश में स्थित पुण्डरीकिणी पुर के बाह्य भागस्थ कनक जिनालय की पूजा करने के लिये गया। यह जिनालय जगत्पाल नामक चक्रवर्ती के द्वारा निर्मित कराया गया था। वहाँ उसने शिवंकर उद्यान में स्थित बाहर हजार मुनियों के साथ सुव्रताचार्य और उस संघ के मध्य में स्थित भीमसाधु नामक ऋषि को भी देखा। उसने उसको अपने पूर्व जन्म का शत्रु जानकर उसकी निःशल्यता को ज्ञात करने के लिये कनकमाला के साथ मनुष्य का वेष धारण किया। फिर उसने आचार्य और संघ वन्दना करके भीमसाधु से धर्म के विषय में पूछा। तब भीम साधु ने कहा कि मैं मूर्ख हूँ, उसके सम्बन्ध में किसी दूसरे से पूछो। इस पर पुरुष वेषधारी देव बोला कि तो फिर तुम मुनि क्यों हुए हो? उसने उत्तर दिया कि अपने पूर्व भवों को जानकर मैं मुनि हुआ हूँ। यह सुनकर वह देव बोला कि तो उन पूर्व भवों को ही कहिये। इस पर उसने कहा कि उन्हें कहता हूँ, सुनो। इसी देश के भीतर मृणालपुर में सुकेतु नामक राजा राज्य करता था।

वहाँ एक श्रीदत्त नाम का वैश्य था। इसकी पत्नी का नाम विमला था। इन दोनों के एक रतिकान्ता नाम की पुत्री थी। विमला के एक भाई था, जिसका नाम रतिधर्मा था। रतिधर्मा की पत्नी का नाम कनकश्री था। उसके एक भवदेव नाम का पुत्र था। उसकी ग्रीवा लम्बी थी। इसलिये उसका दूसरा नाम उष्ट्रग्रीव भी प्रसिद्ध था। द्वीपान्तर को जाते हुए उसने अपने मामा से कहा कि रतिकान्ता को मेरे लिये देना। यदि तुम उसे किसी दूसरे के लिए दोगे तो राजाज्ञा के अनुसार दण्ड को भोगना पड़ेगा। इस प्रकार मामा से कहकर और उसके लिये बारह वर्ष की मर्यादा करके वह द्वीपान्तर को चला गया। उसकी वह बारह वर्ष की अवधि समाप्त हो गई, परन्तु वह वापिस नहीं आया। तब वह कन्या अशोक देव और जिनदत्ता के पुत्र सुकान्त के लिये दे दी गई। जब वह भवदेव वापस आया तब उसने सुकान्त को मार डालने के लिये कमाये हुए द्रव्य को देकर कुछ भृत्यों को नियुक्त किया। इस बात को जान करके वे दोनों (सुकान्त और रतिकान्ता) शोभानगर के राजा प्रजापाल के सेवक (सामान्त) शक्तिसेन नामक सहस्रभट की शरण में पहुँचे। उस समय वह सहस्रभट धन्नगा नाम की अटवी में पड़ाव डालकर स्थित था। उसके भय से वह भवदेव तब शान्त रहा। तत्पश्चात् भवदेव ने उस सहस्रभट के मर जाने पर उन्हें आग में जलाकर मार डाला। इधर ग्रामवासियों ने उसको भी उसी आग में फेंक दिया। इससे वह भी मर गया। सुकान्त और रतिकान्ता ये दोनों मरकर पुण्डरीकिणी नगरी में कुबेरकान्त नामक राजसेठ के घर पर कबूतर और कबूतरी हुऐ थे और वह भवदेव मर कर उसके समीप जम्बू ग्राम में बिलाव हुआ था। वे कबूतर और कबूतरी एक दिन उसके स्थान (जम्बू ग्राम) पर गये, वहाँ उन्हें उस बिलाव ने खा लिया। इस प्रकार से मरकर वह कबूतर तो हिरण्यवर्मा नाम का विद्याधरों का चक्रवर्ती हुआ और वह कबूतरी उसकी प्रभावती नाम की पटरानी हुई। कुछ समय के पश्चात् उन दोनों ने दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार हिरण्यवर्मा मुनिराज अपने गुरु के साथ पुण्डरीकिणी नगरी में आये। साथ ही वह प्रभावती भी अपनी प्रमुख आर्यिका के साथ वहाँ गई। ये दोनों संघ वहाँ जाकर शिवंकर उद्यान में स्थित हुए। इधर वह बिलाव मरकर, उस समय वहाँ विद्युद्वेग नाम का

कोतवाल का अनुचर हुआ था। उसकी स्त्री मुनिवन्दना के लिये जाते हुए राजा आदि के साथ गई। लोकपाल नामक राजा ने सुन्दर हिरण्यवर्मा मुनिराज को तरूण देखकर उसके गुरू गुणचन्द्र योगी से पूछा कि यह कौन है और किस कारण से दीक्षित हुआ है? उत्तर में मुनिराज बोले कि यह युगल पूर्वभव में कुबेरकान्त सेठ के घर पर कबूतर और कबूतरी हुआ था। उनको इनके जन्मान्तर के शत्रु बिलाव ने जम्बू ग्राम में खा लिया था। इस प्रकार से मरकर वे दोनों उत्तम दान की अनुमोदना के प्रभाव से विद्याधरों के स्वामी हुए। उन दोनों ने विमान नगरी को देखकर जातिस्मरण हो जाने से दीक्षा धारण कर ली। इस वृत्तान्त को सुनकर वे राजा आदि सभी मुनिराजों को नमस्कार करके नगर को वापिस आ गये। कोतवाल की स्त्री ने घर वापिस आकर उपर्युक्त वृत्तान्त को अपने पति से कहा। तब उसे भी जातिस्मरण हो गया। वह रात में उन मुनिराज और आर्यिका को उठाकर श्मशान में ले गया। वहाँ उसने उन दोनों को एक साथ बाँधकर चिता की अग्नि में फेंक दिया। इस प्रकार से मरण को प्राप्त होकर वे दोनों स्वर्ग को गये। कुछ दिनों के पश्चात् विद्युद्वेग भी राजकोष के चुराने के कारण पकड़ लिया गया। उसे चतुर्दशी के दिन मारने के लिये श्मशान में ले जाकर चण्ड नामक चाण्डाल को उसके वध करने की आज्ञा दी गई, परन्तु वह उसका वध करने को तैयार नहीं था। वह कहता था कि मैंने आज के दिन त्रसवध का त्याग किया है। तब राजा ने क्रोधित हो उसे लाख के घर में रखकर सेवकों को यह आज्ञा दी कि प्रातःकाल में इसे अग्नि से भस्म कर देना। ऐसी अवस्था में विद्युतद्वेग ने उस चाण्डाल से कहा कि हे चण्ड! तू मेरी हत्या करके सुखपूर्वक क्यों नहीं रहता है? इसके उत्तर में चाण्डाल ने कहा कि मैंने जैन धर्म की महिमा को देखकर, चतुर्दशी के दिन उपवास रखते हुए अहिंसाव्रत को ग्रहण किया है। इसीलिये मुझे मरना इष्ट है परन्तु मारना इष्ट नहीं है। चाण्डाल के इन वचनों को सुनकर चोर ने आत्मनिन्दा करते हुए विचार किया कि खेद की बात है मैं इस चाण्डाल से भी अधम हूँ, क्योंकि मैंने मुनिराज और आर्यिका का वध किया है। तत्पश्चात् उसने चाण्डाल से पूछा कि हे चण्ड! मुनि और आर्यिका का वध करने से मेरी क्या अवस्था होगी? चाण्डाल ने उत्तर दिया कि तुमने

महान् पाप किया है, इससे तुम सातवें नरक को छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकते हो। तुम सातवें नरक में जाकर वहाँ तेतीस सागरोपम काल तक महान् दुःख को भोगोगे। यह सुनकर वह चोर चाण्डाल के पाँवों में गिर गया और बोला कि मेरे इस दुःख को दूर करने का उपाय बतलाइए। तब उसने उसे धर्म का उपदेश दिया। इससे उसने सम्यग्दर्शन को ग्रहण कर लिया। उसके प्रभाव से उसने मुनिराज की हत्या करने के समय में जो सातवें नरक की आयु का बंध किया था। उसका अपकर्षण करके वह प्रथम पृथिवी में चौरासी लाख वर्ष की आयु का धारक नारकी हुआ। वह चाण्डाल मरकर स्वर्ग को गया। और वह नारकी उक्त पृथ्वी से निकल कर इसी पुण्डरीकिणी नगरी में वैश्य समुद्रदत्त और सागरदत्ता का भीम नाम का पुत्र हुआ। वह अक्षरादिज्ञान का शत्रु था- उसे अक्षर का भी बोध न था। वह वृद्धि को प्राप्त होकर किसी समय शिवंकर उद्यान में गया था वहाँ उसने सुव्रत मुनिराज को देखकर उनकी वंदना की। मुनिराज ने उसे धर्म का उपदेश दिया, जिसे सुनकर उसने अणुव्रतों को ग्रहण कर लिया। जब वह वहाँ से घर के लिए वापिस जाने लगा तब मुनिराज ने उससे कहा कि हे भीम! यदि तेरा पिता इन व्रतों को छुड़ाने का आग्रह करे तो तू इन्हें मेरे लिये वापिस दे जाना। तब वह इसे स्वीकार करके घर को वापिस चला गया। घर जाकर वह नाचने लगा। तब उसे नाचते हुए देखकर पिता ने पूछा कि रे भीम! तू किस लिये नाच रहा है? इसके उत्तर में भीम ने कहा कि मैंने आज अमूल्य जैन धर्म को प्राप्त किया है, इसीलिये हर्षित होकर मैं नाच रहा हूँ। इस बात को सुनकर पिता ने कहा कि रे भीम! तूने यह अयोग्य कार्य किया है। मेरे कुल में किसी ने भी जैन धर्म को धारण नहीं किया। इसीलिये तू या तो इन व्रतों को छोड़ दे या फिर मेरे घर से निकल जा। यह सुनकर भीम ने कहा कि तो मैं इन व्रतों को उन मुनिराज के लिये वापिस देकर आता हूँ। तब उसके सब ही कुटुम्बी जन मिलकर उन व्रतों को वापिस कराने के लिये चल दिये। मार्ग में भीम किसी पुरुष को शूली के ऊपर चढ़ा हुआ देखकर मूर्छित हो गया। उसे उस समय जातिस्मरण हो गया। तब उसने पिता आदिकों से अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त कह दिया। इससे उनकी जीव के अभाव विषयक भ्रान्ति नष्ट

हो गई। तब उन सबने तो अणुव्रतों को ग्रहण किया और भीम ने तप को। वह मूर्खशिरोमणि 'मैं ही हूँ'। इस सब वृत्तान्त को सुनकर मनुष्य वेषधारी उस देव ने कहा कि हे मुनीन्द्र! यदि उन दोनों को आप इस समय देखें तो क्या करेंगे? इस पर भीम ने कहा कि मैं उनसे क्षमा कराऊँगा। तब वह देव बोला कि तुम्हारे शत्रु वे दोनों हम ही हैं, तुम्हारे द्वारा अग्नि में जलाये जाने पर हम दोनों स्वर्ग में उत्पन्न हुए हैं। यह सुनकर अश्रुपात करते हुए मुनिराज बोले कि मैंने जो अज्ञानता के वश होकर तुम दोनों को कष्ट पहुँचाया है उसके लिये क्षमा करो। मैं भी उसका फल भोग चुका हूँ। तत्पश्चात् वे दोनों (दिव व देवी) मुनिराज के चरणों में गिर गये। तब निराकुल होकर भीम मुनिराज शुक्ल ध्यान में स्थित हो गये। इसी समय उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया। तब देवों ने आकर उनकी पूजा की। फिर उन्होंने विहार कर धर्मोपदेश किया। अन्त में वे सुरगिरि (मेरु पर्वत) से मोक्ष को प्राप्त हुए। इस प्रकार मुनिराज का घात करने वाला क्रूर वह चोर भी यदि चाण्डाल के उपदेश को सुनकर इस प्रकार की विभूति को प्राप्त हुआ है तब उस धर्मोपदेश में उपयोग को लगाने वाला भव्य जीव क्या तीनों लोकों का स्वामी न होगा? अर्थात् अवश्य होगा।।23।।

24. नन्दीश्वर देव (भूतपूर्व चाण्डाल) कथा

संजातो भुवि लोकनिन्दितकुले निन्द्यः सदा दुःखित
श्चण्डलोऽभवदच्युताख्यविदिते कल्पेऽमरो दिव्यधीः।
वैश्यापादितचारुधर्मवचनः ख्यातो विनीतापुरे
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तितो भूतले॥24॥

जो निन्द्य चाण्डाल इस पृथ्वी पर लोकानिन्दित नीच कुल में उत्पन्न होकर सदा ही दुखी रहता था वह विनीता नगरी में वैश्य के द्वारा दिये गये निर्मल धर्मोपदेश को सुनकर अच्युत स्वर्ग में दिव्य बुद्धि का धारी (अवधिज्ञानी) प्रसिद्ध देव हुआ था। इसीलिए जिनदेव की भक्ति करने वाला मैं उस धर्मोपदेश की प्राप्ति से निर्मल चारित्र का धारक होकर लोक में कृतार्थ होता हूँ।।24।।

24. उसकी कथा इस प्रकार है- इसी आर्यखण्ड के भीतर अयोध्या नगरी में पूर्णभद्र और मणिभद्र नाम के दो वैश्य थे जो एक ही माता के पुत्र थे। एक दिन वे जिनालय को जा रहे थे। मार्ग में उन्हें एक चाण्डाल और एक कुत्ती दिखायी दी। उन दोनों को देखकर उनके हृदय में मोह का प्रादुर्भाव हुआ। जिनालय में जाकर उन दोनों ने जिनेन्द्र भगवान की पूजा की। तत्पश्चात् उन्होंने मुनिराज को नमस्कार करके उनसे उपर्युक्त चाण्डाल और कुत्ती के ऊपर प्रेम उत्पन्न होने का कारण पूछा। मुनिराज बोले- इसी आर्यखण्ड के भीतर मगध देश के अन्तर्गत शालिग्राम में ब्राह्मण सोमदेव और अग्निज्वाला के अग्निभूति और वायुभूति नाम के दो पुत्र थे। एक दिन उन दोनों ने राजभवन के भीतर प्रवेश करते हुए लोकयात्रा को देखकर पूछा कि 'यह जनसमूह कहाँ जा रहे हैं?' तब किसी ने बताया कि "ये मुनिराज की वंदना को जा रहे हैं।" यह सुनकर उनके हृदय में अभिमान उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे कि क्या हमसे भी कोई अधिक वंदनीय है। इस प्रकार अभिमान के वशीभूत होकर वे दोनों उक्त मुनिराज के पास गये। मुनिराज ने जानते हुए भी उनसे पूछा कि तुम दोनों कहाँ से आये हो? उन्होंने उत्तर दिया कि हम शालिग्राम से आये हैं। यह सत्य है या असत्य, इसें आप ही जानें। फिर मुनिराज ने उनसे पूछा कि पूर्व जन्म की अपेक्षा तुम कहाँ से आये हो? इसके उत्तर में उन्होंनें कहा कि यह सब हम नहीं जानते हैं, आप ही बतलाइए। तब मुनिराज बोले कि अच्छा हम बतलाते हैं, सुनो। तुम दोनों पूर्व भव में इसी शालिग्राम की सीमा के अन्त में श्रृगाल हुए थे। उस समय एक प्रमादक नाम का किसान अपनी चाबुक आदि वहाँ एक वट वृक्ष के नीचे बिल के भीतर रखकर घर को चला गया था। उस समय वर्षा बहुत हुई। ऐसे समय में भूख से व्याकुल होकर उन दोनों ने वर्षा से भीगी हुई उस गीली चाबुक को खा लिया। इससे उन्हें शूल की बाधा उत्पन्न हुई। तब वे दोनों मरण को प्राप्त हुए व तुम दोनों उत्पन्न हुए हो। यह सुनकर उन दोनों को जातिस्मरण हो गया। वह प्रमादक भी मरकर अपने पुत्र का ही पुत्र हुआ है, जो जातिस्मरण हो जाने से मूक (गूंगा) होकर स्थित है। इस प्रकार मुनिराज के द्वारा निरूपण किये जाने पर समीपस्थ जनों ने जब उसे

बुलाकर पूछा, तब उसने यथार्थ स्वरूप कह दिया। इससे उन सबको बहुत आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् उस मूक ने स्पष्टभाषी होकर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। उसके साथ कुछ दूसरे भव्य जीवों ने भी दीक्षा ले ली। मुनिराज की इस आश्चर्यजनक शक्ति को देखकर मिथ्यात्व के वशीभूत हुए उन अग्निभूति और वायुभूति को बहुत क्रोध हुआ। इससे वे रात में मुनिराज का घात करने के लिए आये। परन्तु क्षेत्रपाल ने उन्हें वैसे ही कीलित कर दिया। प्रातःकाल होने पर जब सब लोगों ने उन्हें वैसा स्थित देखा तो सभी ने उन दोनों की बहुत निन्दा की। तत्पश्चात् माता-पिता ने उन दोनों को मुक्त कराया और राजा ने भी उन्हें जीवन दान दे दिया। फिर वे श्रावक के व्रत को ग्रहण करके समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त होते हुए सौधर्म स्वर्ग में देव हुए। वहाँ से च्युत होकर तुम दोनों अयोध्या में सेठ समुद्रदत्त और धारिणी के पुत्र हुए हो। तुम्हारे ब्राह्मण भव के वे माता-पिता अनेक योनियों में परिभ्रमण करके चाण्डाल और कुत्ती हुए हैं। इसीलिए उन्हें देखकर तुम दोनों को मोह उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार मोह के कारण को सुन करके पूर्णभद्र और मणिभद्र ने उन दोनों को जिनवचन रूप अमृत का पान कराकर प्रसन्न किया। इस धर्मोपदेश को सुनकर चाण्डाल और उस कुत्ती ने अणुव्रतों को धारण कर लिया। अन्त में समाधिपूर्वक एक मास में मरण को प्राप्त होकर वह चाण्डाल तो अच्युत स्वर्ग में नन्दीश्वर नामक महर्धिक देव हुआ और वह कुत्ती उसी नगर के भूपाल राजा की रूपवती पुत्री हुई। उसने स्वयंवर के समय में उक्त देव से सम्बोधित होकर दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर वह समाधिपूर्वक मरण को प्राप्त होकर स्वर्ग में देव उत्पन्न हुई। इस प्रकार वह चाण्डाल भी एक बार जिनवचन की भावना से जब देव हुआ है तब फिर अन्य कुलीन भव्य जीव का क्या कहना है? वह तो उत्तम ऋद्धि को प्राप्त होगा ही।।24।।

25. सहदेवीचर व्याघ्री कथा

आरण्ये मुनिघातिका च समदा व्याघ्री धरित्रीभया
कल्पावासमगादनूनविभवं श्रीदिव्यदेहोदयम्।
किं मन्ये मुनिभाषितादनुपमादन्यस्य भव्यस्य हो
धन्योऽहं जिनदेवकः सुचरणस्तत्प्राप्तो भूतले॥25॥

जिस व्याघ्री ने गर्वित होकर वन में मुनिराज का घात किया था तथा जो पृथ्वी को भी भय उत्पन्न कराने वाली थी वह जब मुनिराज के अनुपम उपदेश को सुनकर विपुल वैभव के साथ दिव्य शरीर को प्राप्त कराने वाले स्वर्ग को प्राप्त हुई है तब भला अन्य भव्य जीव के विषय में क्या कहा जाय? अर्थात् वह तो स्वर्ग-मोक्ष के सुख को प्राप्त होगा ही। इसी कारण जिन भगवान् की भक्ति करने वाला मैं उस धर्म की प्राप्ति से निर्मल चारित्र को धारण करता हुआ इस पृथ्वी तल के ऊपर कृतार्थ होता हूँ।।25।।

25. इसकी कथा इस प्रकार है- इस अयोध्यापुरी में कीर्तिधर नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम सहदेवी था। एक दिन राजा सभा-भवन में बैठा हुआ था। उस समय उसे सूर्य ग्रहण को देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। तब वह दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गया। परन्तु सन्तान के न होने से मन्त्रियों ने उससे कुछ दिन और रुक जाने की प्रार्थना की। तदनुसार उसने कुछ दिन तक और भी राज्य किया। इस बीच में कीर्तिधर की पत्नी सहदेवी के गर्भाधान हुआ। समयानुसार उसने राजा के दीक्षा ले लेने के भय से गुप्तरूप से पुत्र को तलघर में जन्म दिया। सहदेवी के रुधिरादियुक्त मलिन वस्त्रों को धोती हुई दासी से ज्ञात करके किसी ब्राह्मण ने बाँस में बँधी हुई ध्वजा को हाथ में ले जाकर राजा से पुत्र-जन्म का वृत्तान्त कह दिया। इसे सुनकर राजा ने उस पुत्र के लिए राज्य तथा ब्राह्मण के लिए द्रव्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली। बालक का नाम सुकोशल रखा गया। वह क्रमशः वृद्धिंगत होकर महामण्डलेश्वर हो गया। पुत्र भी मुनिराज के दर्शन होने पर दीक्षा ग्रहण कर लेगा, इस प्रकार मुनिसंघ के कहने पर माता के हृदय में जो भय का संचार हुआ था उससे सहदेवी ने नगर में मुनि के आगमन को रोक दिया था। एक दिन सुकोशल भोजन करने के

पश्चात् माता के साथ भवन के ऊपर बैठा हुआ दिशाओं का अवलोकन कर रहा था। इसी समय कीर्तिधर मुनिराज आहार के निमित्त उस नगर में प्रविष्ट हुए। परन्तु सुकोशल की माता ने उन्हें देखकर द्वारपाल के द्वारा हटवा दिया। तब सुकोशल ने जाते हुए उन मुनिराज के पृष्ठ भाग को देखकर पूछा कि यह कौन है? इसके उत्तर में माता ने कहा कि वह रंक (दरिद्र) है, उसे देखना योग्य नहीं है। इस बात को सुनकर सुकोशल की धाय वसन्तमाला रो पड़ी। तब सुकोशल ने उसे रोती देखकर उससे रोने का कारण पूछा। इस पर धाय ने कहा कि यह महातपस्वी तुम्हारा पिता है, जिसे कि तुम्हारी माता रंक कहती है यही सुनकर मैं रो रही हूँ। यह सब ज्ञात करके सुकोशल ने सोचा कि जो अवस्था उनकी है वही मेरी होगी, और दूसरी नहीं हो सकती। यही विचार करके वह अन्तःपुर आदि परिवार के साथ उद्यान में विराजमान उन मुनिराज के पास जा पहुँचा, वहाँ पहुँचकर उसने कहा कि हे मुनिराज! मुझे दीक्षा दीजिए, मुझे दीक्षा दीजिए। इधर सुकोशल की पत्नी चित्रमाला उसके दीक्षा-ग्रहण से पेट को ताड़ित करके रुदन कर रही थी। उसे इस प्रकार से रोती हुई देखकर कीर्तिधर मुनिराज बोले कि हे पुत्री! तू इस प्रकार से उदर को ताडित मत कर, ऐसा करने से उदरस्थ बालक को बाधा पहुँचेगी। यह सुनकर सुकोशल ने पूछा कि क्या इसके गर्भ में पुत्र है? मुनिराज ने उत्तर दिया कि हाँ, इसके गर्भ में पुत्र है। तब सुकोशल ने कहा कि हे प्रजाजनों! तुम 'हमारा कोई राजा नहीं है' यह विचार करके दुःखी मत होओ। चित्रमाला के गर्भ में जो पुत्र है वह तुम्हारा राजा है, यह कहकर उसने गर्भस्थ बालक को पट्ट बाँध करके दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् वह समस्त श्रुत का पारगामी होकर गुरु के साथ तप करने लगा। इसी बीच में वर्षाकाल के प्राप्त होने पर उसने एक पर्वत के ऊपर किसी वृक्ष के नीचे चातुर्मासिक प्रतिमायोग को धारण किया। तत्पश्चात् प्रतिज्ञा के समाप्त हो जाने पर सुकोशल मुनिराज जब तक मार्गशुद्धि की परीक्षा के लिए जाते हैं तब तक उनकी माता सहदेवी, जो उसके आर्तध्यान से मरकर उसी वन में व्याघ्री हुई थी, उस भूखी भयानक व्याघ्री को सम्मुख आती देखकर वे मुनिराज ध्यान में स्थित हो गये। तब उस व्याघ्री ने उनका भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। इसी समय उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ और वे अन्तर्मुहूर्त में

मुक्ति को प्राप्त हो गये। उस समय हे सुकोशल मुने! हे तिर्यचकृत उपद्रव को सहकर मोक्ष को सिद्ध करने वाले! आपकी जय हो, जय हो; इस प्रकार देवों के शब्दों से दिशाएँ मुखरित हो उठी थीं। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा निर्वाण के उपलक्ष में किये गये पूजामहोत्सव के समय में बजते हुए बाजों का जो गम्भीर शब्द हुआ था उससे भी सुकोशल मुनिराज के उपसर्ग को सहकर मुक्त होने के समाचार को ज्ञात करके कीर्तिधर मुनिराज उनके निर्वाण स्थान पर आये। वहाँ उन्होंने उनकी स्तुति करते हुए निर्वाणक्रिया को सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वे उस व्याघ्री को देखकर बोले कि हे सहदेवी! पहिले तू सुकोशल की कोख आदि को कुंकुम से लाल देखकर 'हा पुत्र! यह रुधिर कैसे निकला' कहकर मूर्च्छित हो जाती थी। उसी तूने उसके आर्तध्यान से मरकर इस व्याघ्री की अवस्था में उसे ही खा डाला है। मुनिराज के इन वचनों को सुनकर उस व्याघ्री को जातिस्मरण हो गया। तब वह पश्चात्ताप करती हुई अपने शिर को पत्थर पर पटकने लगी। उस समय मुनिराज ने उसे आगम के उपदेश से सम्बोधित किया। उसमें उपयोग लगाकर उसने सम्यग्दर्शनपूर्वक अणुव्रतों को ग्रहण कर लिया। अन्त में वह सन्यास के साथ शरीर को छोड़कर सौधर्म स्वर्ग में अतिशय भोगों का भोक्ता देव हुई इस प्रकार मुनिराज का घात करने वाली उस व्याघ्री को भी जब धर्मोपदेश में मन लगाने से इस प्रकार का फल प्राप्त हुआ है तब संयत जीव का क्या पूछना है? उसे तो उत्कृष्ट फल प्राप्त होगा ही।।25।।

जो भव्य जीव इस दिव्य धन्याष्टक (जिनागमश्रवण से प्राप्त फल के निरूपण करने वाले इस श्रेष्ठ आठ कथामय प्रकरण) को पढ़ता है वह निर्मल कीर्ति, सुन्दर शरीर, उत्तम गुणसमूह, प्रशस्त वर्णादि रूप भोगोपभोग, सौभाग्य, दीर्घ आयु, उत्तम इन्द्रियविषय, लोक में पूज्यता, समस्त पदार्थों का ज्ञान (सर्वज्ञता), कर्ममल के नाश से होने वाले निर्मल सुख और विशुद्ध आधिपत्य को प्राप्त करके अन्त में मोक्षसुख का अनुभव करता है।

इस प्रकार केशवनन्दी दिव्य मुनि के शिष्य रामचन्द्र मुमुक्षु द्वारा विरचित पुण्यास्रव नाम ग्रन्थ में श्रुतोपयोग के फल को बतलाने वाला यह अष्टक समाप्त हुआ।।3।।

उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर द्वारा रचित एवं सम्पादित ग्रंथावली

सुकुमाल चरित्र
चारुदत्त चरित्र
गौतम स्वामी चरित्र
महीपाल चरित्र
जैन व्रत कथा संग्रह
धन्य कुमार चरित्र
सुलोचना चरित्र
सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
जिन दत्त चरित्र
कुरल-काव्य
पुराण सार संग्रह - 1
पुराण सार संग्रह - 2
चेलना चरित्र
रयणसार
आहार दान
जिन श्रमण भारती
धर्म संस्कार भाग-1
सदार्चन सुमन
तनाव से मुक्ति
धम्म रसायणं
अराधना कथाकोश-1,2,3
तत्वार्थ सार
योगामृत
सार समुच्चय

महापुराण-1
महापुराण-2
चित्रसेन पद्मावती चरित्र
श्री राम चरित्र
अमरसेण चरिउ
नागकुमार चरित्र
सर्वोदयी नैतिक धर्म
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-1
पुण्यास्रव कथाकोष भाग-2
करकंड चरित्र

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

यदि यह शास्त्र आपको अच्छा लगे तो आप सभी को पढायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छापने योग्य समझें तो लागत मूल्य पर छपवाइये। ट्रस्ट -न्यास- फाउंडेशन आदि द्वारा छपवाना चाहते हो तो उनके नाम, चित्र, परिचय सहित छपवा सकते हैं।

प्रकाशक